VIDYA UNIVERSITY PRESS

TOUCH n PASS

सर्वश्रेष्ठ परीक्षा पथ-प्रदर्शक

B.A.
द्वितीय वर्ष
(डिप्लोमा कोर्स)
सेमेस्टर-III

अर्थशास्त्र

आर्थिक विचारों का इतिहास

SYLLABUS

UNIT-I

B.R. Ambedkar, Kautilya, Dada Bhai Naoroji, R.C. Dutt, R.M. Lohia, Gandhian Economics. Chaudhary Charan Singh (added)

UNIT-II

J.K. Mehta, A.K. Sen, J. Bhagwati, Pt. Deendayal Upadhyay.

UNIT-III

Early Period Economic thought of Plato and Aristotle - Doctrines of Just Cost and Just price.

UNIT-IV

Mercantilism : Main Characteristics; Thomas Munn - Physiocracy : Natural Order, Primacy of Agriculture, Social Classes, Tableau Economique, Taxation, Turgot - Economic ideas of Petty, Locke and Hume.

UNIT-V

Classical Period : Adam Smith - Division of Labour, Theory of Value, Capital Accumulation, Distribution, Views on Trade, David Ricardo, Distribution, Ideas on International Trade; Thomas R. Malthus, Theory of Gluts.

UNIT-VI

German Romantics and Socialists—Sismondi, Karl Marx—Dynamics of Social Change, Labour Theory of Value, Surplus Value, Profit, And Theory of Capitalist Crists; Economic Ideas of J.B. Say, J.S. Mill.

UNIT-VII

Marshall as a Great Synthesizer : Role of Time in Price Determination, Economic Methods, Ideas on Consumers Surplus, Elasticity, Representative Firm, Quasi-Rent, Pigon : Welfare Economics; Schumpeter.

UNIT-VIII

Marginalists : The Precursors of Marginalism, Cournot, Gossen—The Marginalist Revolution : Jevons, Walras and Menger - Bohm-Bawark, Wicksell and Fisher; Economic Ideas of Wicksteed and Weiser.

TOUCH n PASS

VIDYA®
UNIVERSITY PRESS

पंजीकृत कार्यालय
विद्या लोक, टी०पी० नगर, बागपत रोड,
मेरठ, उत्तर प्रदेश (NCR) 250 002
फोन : 0121-2513177, 2513277
www.vidyauniversitypress.com

© प्रकाशक

सम्पादन एवं लेखन
शोध एवं अनुसन्धान प्रकोष्ठ

मुद्रक
विद्या यूनिवर्सिटी प्रेस

TOUCH 'n' PASS

विषय-सूची

UNIT-I : कुछ प्रमुख भारतीय अर्थशास्त्री ...3
UNIT-II : प्लेटो और अरस्तू के आर्थिक विचार ...32
UNIT-III : वाणिज्यवाद ...39
UNIT-IV : प्रतिष्ठित काल के प्रमुख अर्थशास्त्री ...70
UNIT-V : जर्मन प्रकृतिवादी और समाजवादी ...103
UNIT-VI : मूल्य निर्धारण ...130
UNIT-VII : सीमान्तवादी ...146
मॉडल पेपर ...168

UNIT-I

कुछ प्रमुख भारतीय अर्थशास्त्री

Some Prominent Indian Economists

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. गाँधीजी के विचारों को प्रभावित करने वाले तत्त्वों को संक्षेप में लिखिए।
Write briefly the factors that influenced the thoughts of Gandhiji.

उत्तर गाँधीजी के विचारों पर विभिन्न विचारधाराओं, विचारकों एवं दर्शन का प्रभाव पड़ा। उन्होंने सरलता एवं समानता तथा त्याग सम्बन्धी विचार टालस्टाय (Tolstory) एवं थोरे (Thoreaw) से ग्रहण किये। गाँधी जी ने सत्ता का विकेन्द्रीकरण सम्बन्धी विचार क्रोप्टकिन (Kropothin) से लिया। उन्होंने रस्किन की पुस्तक 'Unto the Last' से भी काफी प्रेरणा ग्रहण की।
गाँधीजी के मन में धार्मिक वातावरण का भी बहुत प्रभाव पड़ा। धर्म पर विश्वास होने के कारण ही गाँधीजी के मन में परोपकार, अहिंसा, त्याग, समानता इत्यादि महान् गुणों का आविर्भाव हुआ। उन्होंने गीता तथा उपनिषदों से भी प्रेरणा ग्रहण की। इसके अतिरिक्त जैन धर्म से भी गाँधीजी ने बहुत कुछ ग्रहण किया। इस सम्बन्ध मे उन्होंने स्वयं अपनी आत्मकथा में जैन धर्म के प्रसिद्ध विद्वान पं० रायचन्द्र के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की है। गाँधीजी के विचारों में जो समझौतावादी प्रवृत्ति परिलक्षित होती है, वह उनके विचारों पर जैन धर्म के स्यादवाद दर्शन का स्पष्ट प्रभाव है। राजनीतिक क्षेत्र में उन्होंने गोखले से भी बहुत कुछ लिया।

प्र.2. कौटिल्य के आर्थिक विचार क्या हैं?
What are the economic thoughts of Kautilya?

उत्तर कौटिल्य ने धन की विस्तृत व्याख्या की है वह धन के अन्तर्गत मुद्रा, वस्तु, प्राप्त किये जाने वाले वित्त, सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति, बहुमूल्य धातुओं, विनिमय साध्य तथा हस्तान्तरण-योग्य वस्तुओं को सम्मिलित करते हैं। इन्होंने श्रम तथा वनों की उपज को भी धन माना।

प्र.3. चाणक्य का मूल नाम क्या था?
What was the real name of Chanakya?

उत्तर 'अर्थशास्त्र' के लेखक चाणक्य का मूल नाम विष्णुगुप्त था। 'चणक ऋषि' के पुत्र होने के कारण इनका नाम चाणक्य पड़ा। कुटिल गोत्रीय ब्राह्मण होने के कारण इन्हें कौटिल्य उपनाम से भी जाना जाता है।

प्र.4. अर्थशास्त्र को कौटिल्य ने कितने भागों में विभाजित किया है?
Into how many parts has Kautilya divided Arthashastra?

उत्तर कौटिल्य का अर्थशास्त्र पन्द्रह भागों और एक सौ अस्सी उपभागों में विभाजित है और इसमें छ: हजार के लगभग श्लोक हैं।

प्र.5. अर्थशास्त्र पुस्तक किसने लिखी?
Who wrote the book Arthashastra?

उत्तर अर्थशास्त्र, कौटिल्य या चाणक्य (चौथी शती ईसापूर्व) द्वारा रचित संस्कृत का एक ग्रन्थ है। इसमें राज्यव्यवस्था, कृषि, न्याय एवं राजनीति आदि के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया गया है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.6. दादाभाई नौरोजी के अनुसार गरीबी रेखा के निर्धारण का आधार क्या है?

What is the basis of determination of poverty line according to Dadabhai Naoroji?

उत्तर भारतीय संदर्भ में साल 1967-68 में दादाभाई नौरोजी ने सबसे पहले गरीबी का पैमाना तैयार किया था-यह आय थी—₹ 16 से ₹ 35 प्रति व्यक्ति, प्रति वर्ष। आजादी के बाद कई बड़े अर्थशास्त्रियों ने साल 1962 में ग्रामीण क्षेत्र के लिए ₹ 100 प्रति माह और शहरी क्षेत्र के लिए ₹ 125 मासिक को गरीबी का पैमाना बनाया।

प्र.7. दादाभाई नौरोजी ने राष्ट्रीय आय की गणना कब की थी?

When did Dadabhai Naoroji calculate the national income?

उत्तर भारत की राष्ट्रीय आय की गणना करने का पहला प्रयास दादा भाई नौरोजी ने 1867-68 में किया था, जिन्होंने प्रति व्यक्ति आय ₹ 20 होने का अनुमान लगाया था।

प्र.8. महात्मा गाँधी के आर्थिक विचार क्या थे?

What were the economic thoughts of Mahatma Gandhi?

उत्तर गाँधीजी अपने आर्थिक विचारों में वर्ग संघर्ष के स्थान पर वर्ग सहयोग की अवधारणा में विश्वास करते थे। उनका कहना था कि पूँजीपति और श्रमिकों के हित परस्पर विरोधी नहीं हो सकते। यदि इनमें पारस्परिक सहयोग एवं सामूहित प्रयत्न किए जाए तो अर्थव्यवस्था को उच्च शिखर पर पहुँचाया जा सकता है।

प्र.9. आर्थिक विचार से आप क्या समझते हैं?

What do you understand by economic thought?

उत्तर अर्थशास्त्र इस सिद्धांत को मानता है कि ज्ञान के चार आवश्यक क्षेत्र हैं—वेद, अन्विक्षकी (सांख्य, योग और लोकायत का दर्शन), सरकार का विज्ञान, और अर्थशास्त्र का विज्ञान (कृषि, मवेशी और व्यापार का वर्त)। इन चारों से ही अन्य सभी ज्ञान, धन और मानव समृद्धि प्राप्त होती है।

प्र.10. मेहता के राजस्व सम्बन्धी विचार लिखिए।

Write Mehta's views on revenue.

उत्तर प्रो० मेहता ने राजस्व तथा उसके सैद्धान्तिक अंगों को नयी दृष्टि से देखा। राजस्व के क्षेत्र सम्बन्ध में आपने कहा कि "राजस्व में केवल राज्य के मौद्रिक और साख सम्बन्धी साधनों को ही सम्मिलित करना चाहिए।"

सार्वजनिक आय को आपने चार भागों में विभाजित किया है—

(अ) कर, (ब) फीस, (स) महसूल तथा (द) पंचमेल आय, जैसे—जुर्माना, उपहार, विशेष कर आदि।

प्र.11. जे० के० मेहता का संक्षिप्त जीवन परिचय दीजिए।

Give a brief life sketch of J.K. Mehta.

उत्तर आपका जन्म बम्बई में 25 दिसम्बर सन् 1901 में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री खुशरो मनचर्जी मेहता और माता का नाम श्रीमती तहमीना के मेहता था। प्रारम्भ में प्रो० मेहता की शिक्षा राजनन्द ग्राम में हुई तथा हाईस्कूल पास करके वे म्योर सेण्ट्रल कॉलेज, इलाहाबाद में पढ़ने आये थे। बाद में प्रयाग विश्वविद्यालय से उन्होंने सन् 1925 में एस०ए० अर्थशास्त्र की परीक्षा पास की। सन् 1925-27 में वे वहीं शोध करने लगे। सन् 1927 से 1969 तक प्रो० मेहता प्रयाग विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के सफल अध्यापक रहे। इसी बीच जनवरी, 1930 में इनका विवाह हुआ था।

अपने अध्यापन क्रम में प्रो० मेहता सन् 1951 में अर्थशास्त्र विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय में अध्यक्ष हुए। वहीं अध्यक्ष पद से नवम्बर, 1963 में इन्होंने अवकाश लिया था। पुन: विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, दिल्ली के कहने पर 'यू०जी०सी० प्रोफेसर ऑफ इकोनॉमिक्स' सन् 1963 से सन् 1969 तक रहे। इसी बीच वे अध्ययन तथा ग्रन्थ लेखन एवं निबन्ध के साथ-साथ शोध विद्यार्थियों को शिक्षा भी देते रहे।

प्र.12. जे० के० मेहता द्वारा दी गई अर्थशास्त्र की परिभाषा लिखिए।

Write the definition of economics given by J.K. Mehta.

उत्तर मेहता ने अर्थशास्त्र को परिभाषित किया है, "एक विज्ञान के रूप में जो मानव व्यवहार को अभाव की समाप्ति के साधन के रूप में अध्ययन करता है।" मानव व्यवहार अर्थशास्त्र के विज्ञान का विषय हैं यह आमतौर पर मानव मन की असमानता की स्थिति का परिणाम है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.13. भारत के पहले अर्थशास्त्री कौन है?
Who is the first economist of India?

उत्तर भारत के पहले अर्थशास्त्री प्रोफेसर अमर्त्य सेन है। वर्ष 1998 में उन्हें अर्थशास्त्र में नोबेल पुरस्कार दिया गया था।

प्र.14. दीनदयाल उपाध्याय ने कौन-सी विचारधारा दी?
What ideology did Deendayal Upadhyay give?

उत्तर पण्डित दीनदयाल उपाध्याय (जन्म 25 सितम्बर, 1916—11 फरवरी, 1968) राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के चिन्तक और संगठनकर्ता थे। वे भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष भी रहे। उन्होंने भारत की सनातन विचारधारा को युगानुकूल रूप में प्रस्तुत करते हुए देश को एकात्म मानववाद नामक विचारधारा दी।

प्र.15. पंडित दीनदयाल उपाध्याय योजना क्या है?
What is Pandit Deendayal Upadhyay Yojana?

उत्तर दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल्य योजना (डीडीयू-जीकेवाई) गरीब ग्रामीण युवाओं को नौकरियों में नियमित रूप से न्यूनतम मजदूरी के बराबर या उससे ऊपर मासिक मजदूरी प्रदान करने का लक्ष्य रखता है। यह ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार के द्वारा ग्रामीण आजीविका को बढ़ावा देने के लिए की गई पहलों में से एक है।

प्र.16. पंडित दीनदयाल उपाध्याय रोजगार योजना कब शुरू हुई?
When was Pandit Deendayal Upadhyay Rozgar Yojana started?

उत्तर बेरोजगार युवाओं को स्वरोजगार की ओर प्रेरित करने के लिए 4 अगस्त, 2004 से दीनदयाल रोजगार योजना प्रारंभ की गयी।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन की विशेषताएँ लिखिए।
Write the features of the ancient indian economic thinking.

उत्तर

प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन की विशेषताएँ
(Features of The Ancient Indian Economic Thinking)

प्राचीन भारत में जो आर्थिक चिन्तन किया गया था उसकी कुछ अपनी विशेषताएँ हैं जो कि उसे पाश्चात्य देशों के आर्थिक चिन्तन से भिन्न बनाती हैं। ये विशेषताएँ उस समय के भारत का सामाजिक परिस्थितियों, आर्थिक प्रगतियों, राजनैतिक उथल-पुथल एवं बौद्धिक विकास के स्तर से प्रभावित हुई थी। प्राचीन भारत में जो आर्थिक चिन्तन हुआ उसकी मुख्य विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

1. **आर्थिक समस्याओं का स्वतन्त्र अध्ययन नहीं**—प्राचीन विचारधारा में धर्म, राजनीति और दर्शन का प्रमुख स्थान था तथा आर्थिक समस्याओं के स्वतन्त्र अध्ययन का कोई महत्त्व नहीं था।
2. **आर्थिक विचारों का स्वतन्त्र महत्त्व नहीं**—भारत में प्राचीन काल में लोगों का जीवन भौतिकवाद नहीं था। उनका दैनिक जीवन धार्मिक व नैतिक वातावरण से प्रभावित था। यही कारण है कि उस समय आर्थिक विचारों का स्वतन्त्र महत्त्व नहीं था।
3. **मानव को अधिक महत्त्व**—आधुनिक अर्थशास्त्र की भाँति प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन में समस्त गतिविधियों के केन्द्र में मानव था, न कि धन।
4. **आध्यात्मिकता की ओर झुकाव**—प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन में राज्य का स्वरूप, राजा के कार्य, व्यक्ति व राज्य का सम्बन्ध, राजा की शक्तियाँ आदि सभी प्रश्नों पर विचार करते समय आध्यात्मिक दृष्टिकोण ही प्रधान रहा।
5. **आर्थिक सिद्धान्त धर्म के अभिन्न अंग**—आर्थिक सिद्धान्तों का धर्म पर आधारित होना प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन की सबसे बड़ी विशेषता तथा विश्व की सबसे बड़ी देन रही है।
6. **राज्य की आवश्यकता और उपयोगिता**—प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तकों ने यह स्वीकार किया है कि व्यक्ति तथा समाज के लिए राज्य आवश्यक व उपयोगी है। यह विचारक मानते हैं कि राज्य (शासक) के अभाव में **त्रिवर्ग** अर्थात् जीवन के तीन लक्ष्यों—धर्म, अर्थ तथा काम की प्राप्ति सम्भव नहीं है।

TOUCH 'n' PASS

7. **दण्डनीति का महत्त्व**—प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन में मनुष्य के आचरण को नियन्त्रित करने, धन एवं अर्थ की रक्षा तथा शान्ति व्यवस्था की स्थापना के लिए दण्ड-शक्ति पर आध्यत्मिक बल दिया गया है।
8. **अन्य विशेषताएँ**—(क) प्राचीन भारतीय आर्थिक विचारों की एक अन्य विशेषता यह है कि क्रमबद्ध ज्ञान की विभिन्न शाखाओं की परस्पर निर्भरता को स्वीकार करता है।
(ख) अर्थशास्त्र व नीतिशास्त्र की परस्पर निर्भरता प्राचीन भारतीय चिन्तन की विशेषता रही है।

प्र.2. महात्मा गाँधी के आर्थिक विचारों की प्रासंगिकता का वर्णन कीजिए।
Describe the relevance of Mahatma Gandhi's economic ideas.

उत्तर

गाँधीजी के आर्थिक विचारों की प्रासंगिकता
(Relevance of Mahatma Gandhi's Economic Ideas)

भारत जैसे अर्द्धविकसित देशों के सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लिए गाँधीजी के निम्नलिखित आर्थिक विचार आज भी प्रासंगिक एवं महत्त्वपूर्ण हैं जैसा की निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट हो जाएगा—

1. **कृषि अर्थव्यवस्था**—गाँधीजी ने कृषि को महत्त्व दिया है और इसे भारत की आत्मा की संज्ञा दी है। उनका विश्वास था कि बिना कृषि को विकसित किये भारत जैसे अर्द्धविकसित देशों का विकास नहीं हो सकता। आज हम देखते हैं कि आर्थिक नियोजन के 55 वर्षों के उपरान्त भी यदि कृषि सफल नहीं होती तो भारत की अर्थव्यवस्था खराब हो जाती है। कृषकों की ऋणग्रस्तता को दूर करने के लिए महात्मा गाँधीजी ने ही **सहकारी साख व्यवस्था** को प्रोत्साहन देने का सुझाव दिया था।
2. **विकेन्द्रीकरण और लघु उद्योग**—विकेन्द्रीकरण के अन्तर्गत गाँधी जी ने छोटे-छोटे उद्योगों की स्थापना पर बल दिया, ताकि कच्चे माल को उसी स्थान पर पक्के माल में परिवर्तित किया जा सके। इससे ग्रामीणों को न केवल अपने उत्पादन का पूर्ण लाभ प्राप्त होगा वरन् वे अपने आस-पास के समुदायों की, यातायात के साधनों पर निर्भर न रहकर, सहायता भी कर सकेंगे। गाँधीजी की दृष्टि से यह न केवल तर्कपूर्ण एवं व्यावहारिक है वरन् बहुत आवश्यक है। गाँधीजी के मत से सहमत होते हुए **प्रो० कोल** कहते हैं कि "पूर्ण रोजगार के लिए नियोजन का यह आवश्यक भाग होगा कि प्रत्येक क्षेत्र में उद्योगों को विकेन्द्रित किया जा सके, ताकि विस्तृत रूप में वैकल्पिक रोजगार के साधन जुटाये जा सकें। इसी उद्देश्य से गाँधजी ने 'गाँवों की ओर वापसी' (Back to the Villages) का नारा दिया।
3. **ग्राम की आत्मनिर्भरता**—गाँधीजी ग्राम स्वराज्य की स्थापना करना चाहते थे। इसी दृष्टि से उन्होंने यह सुझाव दिया कि प्रत्येक ग्राम को आर्थिक दृष्टि से आत्म-निर्भर बनाया जाए।
4. **मशीनों का कम उपयोग**—गाँधीजी पर यह दोषारोपण किया जाता है कि उन्होंने तमाम आधुनिक मशीनों का विरोध किया परन्तु यदि ध्यान से देखा जाए तो हम पाते हैं कि उनकी आर्थिक व्यवस्था में मशीनों को स्थान है। उन्होंने मात्र विरोध के लिए मशीनों का विरोध नहीं किया। उनका मत था कि भारत जैसे अर्द्धविकसित देशों में एक ओर तो पूँजी का अभाव होता है तथा दूसरी ओर, श्रम का बाहुल्य होता है। अत: विशाल श्रम शक्ति को रोजगार देने के लिए यह आवश्यक है कि मशीनों का कम-से-कम प्रयोग हो तथा श्रम गहन उत्पादन तकनीक को अपनाया जाए।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गाँधीजी के विचारों में आवश्यकता एवं परिस्थितियों के अनुसार आवश्यक संशोधन करके विशेषकर अर्द्धविकसित देश अपनाकर न केवल अपना आर्थिक बल्कि सामाजिक, राजनैतिक एवं नैतिक विकास कर सकता है। भारतवर्ष में जहाँ हिंसा एवं स्वार्थ की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है, भ्रष्टाचार का बोलबाला है, मुद्रा रूपी राक्षस ने मनुष्यों की आत्मा पर अधिकार कर लिया है, आर्थिक शक्ति संकेन्द्रण बढ़ता जा रहा है, बेरोजगारी विस्फोटक हो रही है, महात्मा गाँधी के विचारों को अपनाकर एक आदर्श भारत का निर्माण किया जा सकता है जहाँ सुख और शांति की प्राप्ति की जा सकती है।

प्र.3. गाँधीजी के मशीन सम्बन्धी विचारों की व्याख्या कीजिए।
Explain Gandhiji's ideas related to machines.

उत्तर

गाँधीजी के मशीन सम्बन्धी विचार
(Gandhiji's Ideas Related to Machine)

गाँधीजी के मशीनों सम्बन्धी विचारों में समय एवं परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन हुए। 1920 तक गाँधीजी मशीनों के प्रयोग के पूर्ण विपक्ष में थे किन्तु 1924 में उनके विचारों में परिवर्तन हुआ।

TOUCH 'n PASS

प्रारम्भ में गाँधीजी ने मशीनों के प्रयोग का तीव्र विरोध किया एवं चरखे के प्रयोग पर बल दिया। वे मशीनों के प्रयोग को उस पैशाचिक सभ्यता से सम्बन्धित करते थे जो मानव मूल्यों को भुलाकर मानव जाति को पतित कर देती है। उन्होंने *'Hind Swaraj'* में लिखा कि "मशीनें आज की सभ्यता का प्रतीक हैं जो पाप का प्रतिनिधित्व करती है।" आगे वे कहते हैं कि "मशीनों के सम्बन्ध में, मैं एक भी अच्छी बात का स्मरण नहीं कर सकता। उनकी बुराई को बताने के लिए किताबें लिखी जा सकती है।" उनके अनुसार यह समझ लेना जरूरी है कि मशीनें बुरी होती है। मशीनों को एक वरदान समझने की अपेक्षा उन्हें एक बुराई मानना चाहिए जो अन्त में समाप्त हो जाएगी।

गाँधीजी ने जीवन के अन्तिम वर्षों में अपने मशीनों से सम्बन्धित विचारों में परिवर्तन किया। वे कहते हैं, "मेरा विरोध यन्त्रों के सम्बन्ध में फैले दीवानेपन से है, न कि यन्त्रों से।" परिश्रम का बचाव करने वाले यन्त्रों के सम्बन्ध में लोगों का जो दीवानापन है, उसी से मेरा विरोध है। आज यन्त्रों के कारण मुट्ठी भर आदमी लाखों की पीठ पर सवार होकर बैठे है और उन्हें सता रहे हैं क्योंकि यन्त्रों को चलाने के मूल में मनुष्य का लोभ है, धन तृष्णा है, जन-कल्याण की भावना नहीं है। यन्त्रों के इस दुरुपयोग के विरुद्ध मैं अपनी पूरी शक्ति से लड़ रहा हूँ।

गाँधीजी का कहना था कि यन्त्रों का भी स्थान है तथा यन्त्रों ने अपना स्थान प्राप्त कर लिया है। इसलिए हमें यन्त्रों का प्रयोग अधिक बुद्धिमानी तथा विवेक के साथ मर्यादित ढंग पर करना चाहिए। महात्मा जी ने यन्त्रों की मर्यादा पर विशेष बल दिया है। वे यन्त्रों के विरोधी नहीं बल्कि उसे मर्यादित करते हैं।

गाँधीजी के अनुसार इन यन्त्रों की निम्नलिखित विशेषताएँ होनी चाहिए—

1. ये यन्त्र क्षमताशील हों।
2. इन यन्त्रों को प्रत्येक व्यक्ति अपनी छोटी क्रयशक्ति से क्रय कर सके। इनका प्रयोग मालिक व मजदूर दोनों कर सकें।
3. इन यन्त्रों में एक यह विशेषता होगी कि अपने घर एवं परिवार के अन्दर ही उन्हें रखकर एक स्वास्थ्यवर्द्धक वातावरण में कोई व्यक्ति प्रयोग कर सकता है। इस प्रकार कम-से-कम खर्चीला, पारिवारिक वातावरण में यह यन्त्र प्रत्येक व्यक्ति को जीविका का साधन देता है।
4. ये यन्त्र ऐसे हों जिनमें काम तथा आनन्द दोनों साथ-साथ हों। अन्य उद्योगों के साथ-साथ व्यक्ति की अन्य आवश्यकताओं की तृप्ति के लिए प्रयोग में लाये जाएँगे। ऐसी स्थिति में दोनों साथ-साथ चलेंगे। एक कार्य के थकने के बाद व्यक्ति दूसरे कार्य को अवकाश, परिवर्तन या आनन्द के रूप में कर सकेगा। इस प्रकार से हर व्यक्ति का श्रम पूर्णतया प्रयोग में आ सकेगा तथा उत्पादन वृद्धि होगी।
5. ये यन्त्र ऐसे हों जिनसे मनुष्य का शरीर टेढ़ा-मेढ़ा न हो सके। मनुष्य के एक ही अवयव को अधिक श्रम के कारण आघात न पहुँचेगा। आज जो शारीरिकर तथा मानसिक असंगतियाँ आ जाती है, वे इन यन्त्रों द्वारा नहीं हो सकेंगी।
6. मनुष्य काम के साथ-साथ मनोरंजन व सांस्कृतिक विकास भी चाहता है। यह सांस्कृतिक विकास और उसके व्यक्तित्व का विकास काम पर निर्भर करता है। इसलिए इन यन्त्रों द्वारा काम के साथ-साथ मनुष्य का सांस्कृतिक विकास भी होगा।
7. मनुष्य जब परावलम्बी होता है, तब उसमें न तो स्वाभिमान होता है और न ही उसकी आर्थिक जरूरतों की तृप्ति होती है। अत: यह यन्त्र मनुष्य में स्वावलम्बन की प्रवृत्ति पैदा करेगा। समाज में जो वर्ग व शोषण की भावना, श्रम के प्रति अप्रतिष्ठा है, वह दूर होगी।
8. इन यन्त्रों से प्रत्येक व्यक्ति को काम व प्रतिष्ठा मिलती हैं साथ ही साथ दाम भी मिलता है। अर्थव्यवस्था स्वावलम्बन की नींव पर खड़ी होगी। इससे समाज में परम्परावलम्बी अर्थव्यवस्था आती है जिसके मूल में पारिवारिक वातावरण और स्वामित्व व पारिवारीकरण होता है। यही सर्वोदय द्वारा छोटे यन्त्रों को योगदान है।

   गाँधीजी यन्त्रोपयोग करी मर्यादा निश्चित करते थे। कुछ बड़ी-बड़ी एवं विशेष वस्तुओं का उत्पादन ही केन्द्रित एवं औद्योगीकरण के माध्यम से होना चाहिए। जैसे—बिजली, पानी की व्यवस्था, रेल, डाक, यातायात, जहाज एवं अन्य बड़ी-बड़ी चीजों का उत्पादन केन्द्रित ढंग से किया जा सकता है।

   नये-नये आविष्कारों के सम्बन्ध में गाँधीजी का विचार था, "मैं हर एक आविष्कार का स्वागत करूँगा जिससे सबका लाभ सिद्ध होता है लेनिक आविष्कार आविष्कार में फर्क है। मैं हजारों आदमियों को एक साथ ही मारने की सामर्थ्य रखने वाली जहरीली गैस का स्वागत तो नहीं कर सकता।"

TOUCH 'n' PASS

प्र.4. गाँधीजी के श्रम की प्रतिष्ठा सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
Explain Gandhiji's theory of dignity of labour.

उत्तर

श्रम की प्रतिष्ठा
(Gandhiji's Theory of Dignity of Labour)

गाँधीजी ने श्रम का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए 'रोटी का श्रम' (Bread Labour) सिद्धान्त प्रस्तुत किया। जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं को परिश्रम द्वारा ईमानदारी से अपनी जीविका का उपार्जन करना चाहिए। उनका विश्वास था कि इस सिद्धान्त से समानता स्थापित हो जाएगी और भुखमरी भी दूर हो जाएगी। इससे वर्ग-भेद भी समाप्त हो जाएगा तथा और गरीब के बीच का संघर्ष भी समाप्त हो जाएगा।

गाँधीजी ने श्रम अर्थशास्त्र को नयी भूमिका दी है। इस नयी भूमिका में जितने पिछले अर्थशास्त्रियों के विचार हैं, उन्हें जब हम कसते हैं तो यही निष्कर्ष निकलता है कि गाँधीजी ने श्रम विचार की अपूर्णता को पूर्णता में परिवर्तित कर दिया है।

एडम स्मिथ, रिकॉर्डो और बाद में मार्क्स आदि श्रम के मूल्य सिद्धान्त के प्रणेता रहे हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी वस्तु का मूल्य उसमें लगा श्रम है। इसलिए श्रम का प्रतिमूल्य उत्पादित वस्तु बन गयी। जिस प्रकार सम्पत्ति का प्रतिमूल्य होता है, उसी प्रकार श्रम का प्रतिमूल्य माना जाने लगा।

इसका सहज परिणाम यह हुआ कि श्रम सम्पत्ति की तरह जड़वत् व्यवहार में फँसकर तेजहीन हो गया। उसकी प्रतिष्ठा समाप्तप्रया हो गयी। ऐसा इसलिए हुआ कि श्रम के अन्दर जो नैतिकता मानवता की सुगन्ध प्रसारित होती, वह सम्पत्ति की तरह श्रम को भी समझ लेने में लुप्तप्रया हो जाती है। इसका सहज परिणाम यह हुआ कि श्रम के भीतर से चेतना के सभी गुण समाप्तप्राय हो गये और श्रम केवल सम्पत्ति के साम्य में महत्त्व तो ग्रहण कर सका परन्तु श्रमिक की महत्ता, श्रेष्ठता समाज ने ग्रहण ही नहीं की। यह सब इसलिए हुआ कि भौतिकवादी पश्चिम के अर्थशास्त्रियों ने श्रम के विचार को जड़तव स्वरूप में ग्रहण किया है।

गाँधीजी का आर्थिक दर्शन प्रतिमूल्य सिद्धान्त को नहीं मनाता। गाँधीजी के अनुसार श्रम का प्रतिमूल्य तो हो ही नहीं सकता। उदाहरण के लिए, माँ अपने बच्चे एवं परिवार के लिए श्रम करती है तो इसका कोई प्रतिमूल्य नहीं होता। जिस दिन माँ अपनी इस सेवा का प्रतिमूल्य लेने लगेगी, उसी दिन मानव सभ्यता एवं संस्कृति का नाश होना प्रारम्भ हो जाएगा। इसलिए अर्थशास्त्र में श्रम के प्रतिमूल्य को अस्वीकार कर दिया गया है।

प्रश्न उठता है कि श्रम का कोई प्रतिमूल्य नहीं है तो क्या श्रम आर्थिक या सांस्कृतिक मूल्य है। वास्तव में, श्रम एक सांस्कृतिक आवश्यकता है। पश्चिमी विद्वानों ने श्रम को आर्थिक आवश्यकता में रखकर विश्लेषण किया। अत: आज न तो श्रमिक के साथ न्याय हो सका और न ही उन्हें महत्त्व मिल सका। इसलिए हमें श्रम को सांस्कृतिक आवश्यकता मानकर उसी धरातल पर विचार करना होगा, तभी हमारी सभ्यता एवं संस्कृति वैज्ञानिक प्रगति के अनुकूल होगी। जहाँ से समस्त विश्व के श्रम अर्थशास्त्र का समापन होता है, वहीं से सर्वोदय श्रम अर्थशास्त्र का प्रारम्भ होता है।

मजदूरों की स्थिति में सुधार हेतु सुझाव (Suggestions for Improving Labour Conditions)

स्वदेशी आन्दोलन के साथ-साथ जब यह देखा गया कि औद्योगिक नगरों, जैसे—अहमदाबाद, कानपुर, कोलकाता, मुम्बई आदि में मजदूरों का अधिक शोषण होता है और इस प्रकार से मालिकों में संघर्ष भयानक रूप पकड़ लेता है। ऐसी स्थिति में इन समस्याओं के समाधान के लिए कुछ व्यावहारिक सुझाव दिये। गाँधीजी के शब्दों में, "पूँजी और श्रम में चल रहे संघर्ष में आमतौर पर यह कहा जा सकता है कि गलती अक्सर पूँजीपतियों से होती है, लेकिन जब मजदूरों को अपनी ताकत का पूरा भान हो जाएगा, तब मैं जानता हूँ कि वे लोग पूँजीपतियों से भी ज्यादा अत्याचार कर सकते हैं। यदि मजदूर मिल-मालिकों की बुद्धि हासिल कर लें तो मिल-मालिकों को मजदूरों की दी हुई शर्तों पर काम करना पड़ेगा—अगर वे वैसी बुद्धि प्राप्त कर लें तो मजदूर मजदूर ही न रहें और मालिक बन जाएँ। पूँजीपति केवल पूँजी की ताकत पर नहीं लड़ते, उनके पास बुद्धि और कौशल भी है।" ऐसी स्थिति में श्रमिकों की दशा में सुधार के लिए निम्नलिखित उपाय करने का सुझाव दिया—

1. श्रम का समय इतना ही होना चाहिए कि मजदूरों को आराम करने के लिए भी काफी समय बच जाए।
2. उन्हें अपने शिक्षण की सुविधाएँ मिलनी चाहिए।
3. उनके बच्चों की आवश्यक शिक्षा के लिए तथा वस्त्र और पर्याप्त दूध के लिए व्यवस्था की जानी चाहिए।
4. मजदूरों के लिए साफ-सुथरे घर होने चाहिए।
5. उन्हें इतना वेतन मिलना चाहिए कि वे बुढ़ापे में अपने निर्वाह के लिए काफी रकम बचा सकें।

TOUCH 'n PASS

प्र.5. गाँधीजी के आर्थिक विचारों पर प्रकाश डालिए तथा इनमें से किन्हीं दो आर्थिक विचारों का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।
Throw light on the economic thoughts of Gandhiji and mention briefly any two of these economic thoughts.

उत्तर

गाँधीजी के आर्थिक विचार
(Economic Thoughts of Gandhiji)

गाँधीजी के आर्थिक विचार निम्न प्रकार हैं—

1. अर्थशास्त्र के उद्देश्य एवं क्षेत्र,
2. गाँव का पुनर्निर्माण,
3. स्वदेशी का आर्थिक स्वरूप—
   (अ) विदेशी वस्तुओं का परित्याग,
   (ब) ग्राम उद्योग व कुटीर उद्योग का विकास,
   (स) खादी विकेन्द्रित उद्योगों की धुरी,
4. श्रम की प्रतिष्ठा,
5. मशीनों सम्बन्धी विचार,
6. न्यासधारिता का सिद्धान्त।

1. **अर्थशास्त्र के उद्देश्य एवं क्षेत्र** (Aims and Scope of Economics)—अर्थशास्त्र के उद्देश्य एवं क्षेत्र के सम्बन्ध में गाँधीजी के विचार संक्षेप में निम्नलिखित हैं—

(i) **अर्थशास्त्र का उद्देश्य जनता की सेवा करना**—उन्होंने लिखा है, "जो अर्थशास्त्र शक्तिशाली व्यक्तियों को गरीब का शोषण सिखता है, वह असत्य अर्थशास्त्र है। सच्चा अर्थशास्त्र सबके लाभ के लिए होता है और वह जीवन के लिए अनिवार्य है।" इसका अर्थ यह हुआ कि गाँधीजी की दृष्टि में अर्थशास्त्र एक नैतिक विज्ञान (Normative or Ethical Science) है।

(ii) **धन या अर्थ जीवन का साध्य नहीं, साधन है**—गाँधीजी ने धन को महत्त्वपूर्ण मानते हुए भी उसे साधन ही माना, ताकि इसका उपयोग करके मनुष्य अपने कार्य को भली-भाँति कर सके।

(iii) **धन के विषय में हमारा आदर्श भोग नहीं, त्याग होना चाहिए**—गाँधीजी का आदर्श था सादा जीवन उच्च विचार। उनका कहना था, जीने के लिए खाओ, खाने के लिए मत जियो। इसका अर्थ यह हुआ कि भोग आर्थिक क्रिया का उद्देश्य नहीं है। विलासिता का गाँधीजी के अर्थशास्त्र में कोई स्थान नहीं है। ऊँचे जीवन स्तर का आशय पाश्चात्य दृष्टिकोण से अर्थ बहुत-सी आवश्यकताओं से होता है किन्तु सर्वोदय में ऊँचा जीवन-स्तर ऊँचे आदर्शों तथा मूल्य से निर्मित होता है।

(iv) **आर्थिक स्वावलम्बन आवश्यक है**—आप आर्थिक स्वावलम्बन को आवश्यक मानते थे। राष्ट्र को नहीं, प्रत्येक गाँव को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना चाहिए तथा अपनी आवश्यकता की वस्तुओं का स्वयं निर्माण करना चाहिए।

2. **गाँव का पुनर्निर्माण** (Rejuvenation of Village)—गाँधीजी की योजना में गाँव के पुनर्निर्माण का सर्वप्रथम स्थान है। उनका कहना था कि "अगर गाँव नष्ट हो जाए तो हिन्दुस्तान नष्ट हो जाएगा। वह हिन्दुस्तान ही नहीं रह जाएगा। दुनिया में उसका मिशन ही खत्म हो जाएगा।"

गाँधीजी का विश्वास था कि बिना ग्राम निर्माण के भारत का विकास सम्भव नहीं है। अत: उनका मत था कि यदि हम अपने देश को विकसित करना चाहते हैं तो पहले हमें गाँवों की दशा सुधारने पर ध्यान देना होगा। वे योजना एवं विकास के कार्यक्रम को निचले स्तर अथवा गाँव से प्रारम्भ करना चाहते थे। उनके अनुसार योजना की इकाई गाँव एवं कार्य की इकाई परिवार होना चाहिए और गाँव की इकाई को सर्वाधिक शक्तिशाली बनाना चाहते थे। इसी आधार पर गाँव स्वराज की कल्पना उन्होंने की जिसे वे एक पूर्ण गणतन्त्र के रूप में देखना चाहते थे। उत्पादन की दृष्टि से भी वे गाँव को आत्म-निर्भर बनाने के पक्ष में थे। वे यह मानते थे कि आदर्श ग्राम बनाने का कार्य जीवन भर का हो सकता है—सही प्रजातन्त्र का हितैषी एवं ग्रामीण जीवन का प्रेमी गाँव को ही अपना विश्व मानकर उत्तम परिणामों को प्राप्त कर सकता है। गाँधीजी ने ग्रामीण प्रजातन्त्र की रूपरेखा भी प्रस्तुत की जो व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर आधारित है और व्यक्ति स्वयं अपनी सरकार का निर्माता है।

सर्वोदय योजना के अन्तर्गत गाँधीजी ने एक आदर्श ग्राम के लिए निम्न व्यवस्था को आवश्यक माना—

(i) गाँव को अपनी खाद्यान्न एवं वस्त्र इत्यादि की आवश्यकताओं के सम्बन्ध में आत्म-निर्भर होना चाहिए।

(ii) गाँव में सफाई की पूर्ण व्यवस्था होनी चाहिए।

(iii) जन स्वास्थ्य की रक्षा के लिए गाँव में अस्पताल की व्यवस्था होनी चाहिए जिसमें प्राकृतिक चिकित्सा को अपनाया जाना चाहिए।

TOUCH 'n PASS

(iv) गाँव में व्यक्तियों के आहार को संतुलित रखने के लिए वहाँ सब्जी, फल एवं दूध की पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए।
(v) गाँव में एक सार्वजनिक सभा-भवन, स्कूल और एक थियेटर भवन होना चाहिए।
(vi) गाँव में बुनियादी शिक्षा की अनिवार्य व्यवस्था होनी चाहिए। सुन्दर लिखावट के लिए उन्होंने ड्राइंग सीखने पर भी बल दिया।
(vii) प्रत्येक ग्राम में ग्राम रक्षकों की अनिवार्य व्यवस्था होनी चाहिए तथा उसे डाकू और जानवरों से सुरक्षित होना चाहिए।

प्र.6. कौटिल्य एवं वल्लुवर के विचारों की तुलना कीजिए।
Compare the ideas of Kautilya and Valluvar.

उत्तर

कौटिल्य एवं वल्लुवर के विचारों की तुलना
(Comparison of Ideas of Kautilya and Valluvar)

क्र०सं०	अन्तर का आधार	कौटिल्य	वल्लुवर
1.	करारोपण	कौटिल्य ने आय के संग्रह के लिए करों (Taxes) की एक बड़ी लिस्ट बताई है— वे अधिकाधिक कर संग्रह करने के लिए आवश्यकता पड़ने पर कठोर उपाय के पक्ष में थे।	वल्लुवर बहुत से कर लगाने के पक्ष में नहीं थे और यह भी कहा कि करारोपण में किसी प्रकार का उत्पीड़न नहीं होना चाहिए तथा करारोपण धर्म सम्वत् होना चाहिए।
2.	कृषि	कौटिल्य ने सरकार के आय के स्रोत को बढ़ाने में कृषि को अधिक महत्त्व नहीं दिया है।	वल्लुवर ने आय के संसाधनों में कृषि को प्राथमिक स्थान दिया है।
3.	आर्थिक समाज	कौटिल्य के अनुसार आर्थिक समाज जाति पर आधारित होना चाहिए।	वल्लुवर ने सामाजिक व्यवस्था में जाति को कोई महत्त्व नहीं दिया।
4.	नैतिक आधार	कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इस बात पर महत्त्व नहीं दिया गया है कि सामाजिक व्यवस्था नैतिक सिद्धांत पर आधारित होनी चाहिए।	वल्लुवर के अनुसार सामाजिक व्यवस्था का आधार नैतिकता ही होनी चाहिए।

प्र.7. दीनदयाल उपाध्याय की पुस्तकों का उल्लेख कीजिए।
Mention the books of Deendayal Upadhyay.

उत्तर

दीनदयाल उपाध्याय की पुस्तकें
(Books of Deendayal Upadhyay)

दीनदयाल उपाध्याय जनसंघ के राष्ट्रजीवन दर्शन के निर्माता माने जाते हैं। उनका उद्देश्य स्वतन्त्रता की पुनर्रचना के प्रयासों के लिए विशुद्ध भारतीय तत्त्व-दृष्टि प्रदान करना था। उन्होंने भारत की सनातन विचारधारा को युगानुकूल रूप में प्रस्तुत करते हुए एकात्म मानववाद की विचारधारा दी। उन्हें जनसंघ की आर्थिक नीति का रचनाकार माना जाता है। उनका विचार था कि आर्थिक विकास का मुख्य उद्देश्य सामान्य मानव का सुख है।

संस्कृतिनिष्ठा उपाध्याय के द्वारा निर्मित राजनैतिक जीवनदर्शन का पहला सूत्र है। उनके शब्दों में—"भारत में रहने वाला और इसके प्रति ममत्व की भावना रखने वाला मानव समूह एक जन हैं। उनकी जीवन प्रणाली, कला, साहित्य, दर्शन सब भारतीय संस्कृति है। इसलिए भारतीय राष्ट्रवाद का आधार यह संस्कृति है। इस संस्कृति में निष्ठा रहे तभी भारत एकात्म रहेगा।" 'वसुधैव कुटुम्बकम्' भारतीय सभ्यता से प्रचलित है। इसी के अनुसार भारत में सभी धर्मों को समान अधिकार प्राप्त हैं। संस्कृति से किसी व्यक्ति, वर्ग, राष्ट्र आदि की वे बातें, जो उसके मन, रुचि, आचार, विचार, कला-कौशल और सभ्यता की सूचक होती हैं, पर विचार होता है। दूसरे शब्दों में कहें तो यह जीवन जीने की शैली है।

उपाध्याय जी पत्रकार होने के साथ-साथ चिन्तक और लेखक भी थे। उनकी असामयिक मृत्यु से यह बात स्पष्ट है कि जिस धारा में वे भारतीय राजनीति को ले जाना चाहते थे वह धारा हिन्दुत्व की थी। इसका संकेत उन्होंने अपनी कुछ कृतियों में भी दे दिया था। इसीलिए कालीकट अधिवेशन के बाद मीडिया का ध्यान उनकी ओर गया। उनकी कुछ प्रमुख पुस्तकों के नाम नीचे दिये गये हैं—

1. दो योजनाएँ
2. राजनीतिक डायरी
3. राष्ट्र चिन्तन : यह पुस्तक दीनदयाल उपाध्याय द्वारा दिए गये भाषणों का संग्रह है।
4. भारतीय अर्थ नीति : विकास की एक दिशा
5. भारतीय अर्थनीति का अवमूल्यन

TOUCH 'n' PASS

6. सम्राट चन्द्रगुप्त
7. जगद्गुरु शंकराचार्य
8. एकात्म मानववाद (Integral Humanism)
9. राष्ट्र जीवन की दिशा

भारतीय अर्थनीति का स्वरूप क्या हो, इन विषयों को पण्डित दीनदयाल उपाध्याय ने 'भारतीय अर्थनीति विकास की दिशा' पुस्तक में रखा है।

प्र.8. प्रो० मेहता के आर्थिक विचारों का उल्लेख कीजिए।
Mention the economic thoughts of prof. Mehta.

उत्तर

प्रो० मेहता के आर्थिक विचार
(Economic Thoughts of Prof. Mehta)

प्रो० मेहता के आर्थिक विचारों का हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन कर सकते हैं—

1. व्यष्टिगत व समष्टिगत अर्थशास्त्र (Micro and Marco Economics)

प्रो० मेहता के अनुसार व्यष्टिगत अर्थशास्त्र में इस बाता का अध्ययन किया जाता है कि वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों का निर्धारण किस प्रकार होता है। दूसरी ओर समष्टिगत अर्थशास्त्र में इस बात का अध्ययन किया जाता है कि रोजगार के कुल उत्पादन तथा उत्पत्ति के विभिन्न साधनों का हिस्सा किस प्रकार निर्धारित होता है। इस प्रकार व्यष्टिगत अर्थशास्त्र हमें बताता है कि एक वस्तु की कीमत से उसके उत्पादन एवं उपभोग में किस प्रकार परिवर्तन होता है। इसी प्रकार समष्टिगत अर्थशास्त्र हमें बताता है कि रोजगार कुल उत्पादन तथा विभिन्न श्रेणियों के उत्पादन की आय में समय-समय पर किस प्रकार से परिवर्तित होता है। समष्टिगत अर्थशास्त्र सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में उतार-चढ़ाव की व्याख्या करता है।

2. बाजार सम्बन्धी विचार (Thoughts on Market)

प्रो० मेहता ने अपनी पुस्तक 'उन्नत अर्थशास्त्र के सिद्धान्त' में बाजार शब्द की परिभाषा इस प्रकार दी है, "बाजार एक स्थिति का परिचायक है जिसमें एक वस्तु की माँग ऐसे स्थान पर होती है जहाँ उसे विक्रय के लिए प्रस्तुत किया जाए।"

मेहता की इस परिभाषा के अनुसार एक क्रेता एवं एक विक्रेता भी बाजार का निर्माण करने के लिए पर्याप्त हो सकते हैं यदि उनमें क्रय-विक्रय करने की सामर्थ्य हो। मेहता के अनुसार बाजार शब्द को परिभाषित करते समय इसके साथ क्षेत्र तथा प्रतिस्पर्द्धा विशेषणों का जोड़ना आवश्यक नहीं है।

मेहता की बाजार की इस परिभाषा में एक कमी यह है कि वे केवल वस्तुओं के क्रेता और विक्रेताओं की बात करते हैं, सेवाओं के क्रेता और विक्रेताओं की नहीं।

3. साम्य पर विचार (Thoughts on Equilibrium)

प्रो० मेहता के अनुसार साम्य की कल्पना बिना समय की अपेक्षा के नहीं की जा सकती। साम्य सदा किसी समय अवधि में होता है। उन्होंने स्थैतिक साम्य (Static Equilibrium) उस साम्य को कहा है जो समय अवधि के बाहर भी बना रहा है। जो समय अवधि के बाहर भंग हो जाता है, वह प्रावैगिक साम्य (Dynamic Equilibrium) है।

जहाँ तक किसी देश की अर्थव्यवस्था के साम्य का प्रश्न है। यदि देश का विकास बन्द हो गया तो देश में स्थैतिक साम्य कहा जाएगा। यदि देश में विकास हो रहा है तो "देश में या तो असाम्य की अवस्था होगी या प्रवैगिक साम्य होगा।"

4. प्रतिनिधि फर्म (Representative Firm)

इसका विचार मूलत: मार्शल का था। उन्होंने कहा था कि पूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु का मूल्य प्रतिनिधि फर्म के द्वारा निर्धारित होता है। इस विचार पर पीगू ने भी अपना सिद्धान्त प्रस्तुत किया था। मार्शल ने प्रतिनिधि फर्म की कोई अच्छी परिभाषा नहीं दी।

प्रो० जे० के० मेहता ने प्रतिनिधि फर्म की धारणा को एक नया अर्थ दिया है। प्रो० मेहता ने इस सम्बन्ध में बताया है कि (i) प्रतिनिधि फर्म का विचार प्रावैगिक अवस्था में लागू होता है और (ii) यह मार्शल की प्रतिनिधि फर्म की भाँति सदैव साम्य में नहीं रहती है।

प्रो० मेहता के अनुसार, "प्रतिनिधि फर्म वह फर्म है जो उद्योग के साथ-साथ उसी प्रकार का विस्तार अथवा संकुचन करने की प्रवृत्ति दिखलाती है।"

TOUCH 'n' PASS

प्र.9. मेहता के लाभ और लगान के सम्बन्ध में विचार स्पष्ट कीजिए।
Clarify Mehta's views regarding profit and rent.

उत्तर

मेहता का लाभ का सिद्धान्त
(Mehta's Theory of Profit)

प्रो० मेहता के लाभ के सिद्धान्त को संक्षेप में निम्नलिखित रूप में क्रमबद्ध कर सकते हैं—

1. लाभ जोखिम का पुरस्कार है। प्रबन्ध के पुरस्कार से इसे अलग करना चाहिए, जबकि प्रबन्ध में निर्णय लिया जाता है, जोखिम में हानि का उत्तरदायित्व उठाया जाता है। लाभ को अनिश्चितता का पुरस्कार भी कहा जा सकता है।
2. जोखिम कई कारणों से उत्पन्न होती है। प्रथम तो भविष्य से, द्वितीय, भविष्य के भिन्न होने से, तृतीय, भविष्य का जानकारी न होने से और चतुर्थ, आदमी को इस बोध से कि जानकारी अपूर्ण है अर्थात् जोखिक प्रावैगिक (Dynamic) अवस्था में ही सम्भव है।
3. परन्तु लाभ कोई बचत (Surplus) नहीं है। यह मजदूरी के समान ही एक कार्य का भुगतान होता है और इसलिए सदा धनात्मक होगा।
4. इसकी कीमत जोखिम की माँग–पूर्ति से निर्धारित होती है। यह लागत का भाग होता है।
5. अब शेष रहा मूल्य और लागत का अन्तर, इसे आकस्मिक आय (Accidental Gain) अथवा आकस्मिक व्यय (Accidental Loss) कहना अधिक उपयुक्त है। असली लाभ से इसका कोई सम्बन्ध नहीं। इसे लगान (Rent) भी कहा जा सकता है।

संक्षेप में, जोखिम उठाने के लिए **मिल** इस प्रतिफल को 'लाभ' कहते हैं। इस प्रकार यह भी मजदूरी और ब्याज की भाँति ही एक आवश्यक और निश्चित आय है और उन्हीं की भाँति उत्पादन की लागत के अन्तर्गत है। 'लाभ' एक आवश्यक कार्य (जोखिम) के लिए मिला प्रतिफल है।

मेहता का लगान का सिद्धान्त (Mehta's Theory of Rent)

प्रो० मेहता ने लगान को भी नये ढंग से परिभाषित किया है। मेहता के अनुसार भूमि शब्द का अर्थ है कि उत्पादन में उपयोग की गई कोई भी वस्तु जहाँ तक वह किसी विशेष उपयोग के लिए विशिष्ट है, भूमि है, कोई अपनी महत्त्वपूर्ण देन नहीं है।
इस विशिष्टता के आधार पर उन्होंने भूमि और पूँजी में भेद किया है। पूँजी उस व्यवहार में आ जाती है जिसे आर्थिक व्यवहार कहा जा सकता है परन्तु भूमि नहीं आती। पूँजी के एक से अधिक उपयोग सम्भव है किन्तु भूमि का एक ही विशिष्ट उपयोग हो सकता है।
प्रो० मेहता के मतानुसार मनुष्य में भी भूमि का अंश है। इस हेतु उसे अतिरेक मिलता है। अत: योग्यता का लगान हो सकता है।
प्रो० मेहता ने लगान को परिभाषित करते हुए लिखा है, "लगान वह है जो प्राकृतिक, मौलिक और अनश्वर साधक को मिलता है।" यह भूमि एक विशिष्ट साधन है। उससे लागत के बिना ही आय मिलती है। यह लागत पर अतिरेक है। वस्तुत: लगान अवसर लगात पर अतिरेक है।

प्र.10. चौधरी चरण सिंह के प्रमुख विचारों पर प्रकाश डालिए।
Throw light on the main thoughts of Chaudhary Charan Singh.

उत्तर

चौधरी चरण सिंह के प्रमुख विचार
(Main Thoughts of Chaudhary Charan Singh)

चौधरी चरण सिंह के प्रमुख विचार निम्नलिखित हैं—

1. असली भारत गाँवों में रहता है।
2. अगर देश को उठाना है तो पुरुषार्थ करना होगा ... हम सब को पुरुषार्थ करना होगा। मैं भी अपने आपको उसमें शामिल करता हूँ ... मेरे सहयोगी मिनिस्टरों को, सबको शामिल करता हूँ ... हमको अनवरत् परिश्रम करना पड़ेगा ... तब जाके देश की तरक्की होगी।
3. राष्ट्र तभी संपन्न हो सकता है जब उसके ग्रामीण क्षेत्र का उन्नयन किया गया हो तथा ग्रामीण क्षेत्र की क्रय शक्ति अधिक हो।
4. किसानों की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं होगी तब तक देश की प्रगति संभव नहीं है।
5. किसानों की दशा सुधरेगी तो देश सुधरेगा।
6. किसानों की क्रय शक्ति नहीं बढ़ती तब तक औद्योगिक उत्पादों की खपत भी संभव नहीं है।

TOUCH 'n PASS

7. भ्रष्टाचार की कोई सीमा नहीं है जिस देश के लोग भ्रष्ट होंगे वो देश कभी, चाहे कोई भी लीडर आ जाए, चाहे कितना ही अच्छा प्रोग्राम चलाओ .... वो देश तरक्की नहीं कर सकता।
8. चौधरी का मतलब, जो हल की चऊँ को धरा पर चलाता है।
9. हरिजन लोग, आदिवासी लोग, भूमिहीन लोग, बेरोजगार लोग या जिनके पास कम रोजगार है और अपने देश के 50% फीसदी किसान जिनके पास केवल 1 हैक्टेयर से कम जमीन है ... इन सबकी तरफ सरकार को विशेष ध्यान देना होगा।
10. सभी पिछड़ी जातियों, अनुसूचित जातियों, कमजोर वर्गों, अल्पसंख्यकों, अनुसूचित जनजातियों को अपने अधिकतम विकास के लिए पूरी सुरक्षा एवं सहायता सुनिश्चित की जाएगी।
11. किसान इस देश का मालिक है, परन्तु वह अपनी ताकत को भूल बैठा है।
12. देश की समृद्धि का रास्ता गाँवों के खेतों एवं खलिहानों से होकर गुजरता है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. कौटिल्य के आर्थिक विचारों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
Describe Kautilya's economic thoughts in detail.

उत्तर

कौटिल्य के आर्थिक विचार
(Economic Thoughts of Kautilya)

एक बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' आधुनिक अर्थशास्त्र के समान कृति नहीं है। उसमें राजनैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक विचारों का उल्लेख अधिक है एवं साथ-ही-साथ हमें उसमें आर्थिक विचार भी प्राप्त होते हैं। संक्षेप में, उनके आर्थिक विचारों का अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं—

1. अर्थ तथा अर्थशास्त्र की परिभाषा; 2. कौटिल्य के अर्थशास्त्र का राजनैतिक आधार; 3. अर्थशास्त्र के उद्देश्य; 4. भूमि तथा कृषि सम्बन्धी कौटिल्य के विचार; 5. पशुपालन सम्बन्धी विचार; 6. वनों की उपज; 7. खानों का प्रबन्ध; 8. जनसंख्या; 9. श्रम सम्बन्धी विचार; 10. उद्योग; 11. बाजार संगठन; 12. मुद्रा एवं कीमत; 13. व्यापार; 14. ब्याज का नियमन; 15. लाभ का नियम; 16. व्यक्तिगत सम्पत्ति; 17. सामाजिक सुरक्षा एवं कल्याणकारी राज्य; 18. सार्वजनिक वित्त सम्बन्धी विचार।

(1) **'अर्थ तथा 'अर्थशास्त्र' की परिभाषा** (Meaning and Definition of Economics)—कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ **'अर्थशास्त्र'** में 'अर्थ' तथा अर्थशास्त्र को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "मनुष्य के व्यवहार तथा जीविका को 'अर्थ' कहते हैं। मनुष्यों से युक्त भूमि का नाम ही 'अर्थ' है। इस भूमि की प्राप्ति तथा उसके रक्षण के लिए किये जाने वाले उपायों का निरूपण करने वाले शास्त्र को **'अर्थशास्त्र'** कहते हैं।"

कौटिल्य के अनुसार अर्थशास्त्र एक निरन्तर चलने वाला क्रम है। अर्थशास्त्र का सम्बन्ध धर्म से है। सुख का मूल धर्म है और धर्म का मूल **अर्थ** है। **धन-सम्पदा** ही वस्तुएँ, सेना और मित्र आदि सम्पत्ति जुटाती है। अत: उन्होंने बताया कि 'धर्म सदाचार' और आनन्द धन से ही प्राप्त होते हैं।

कौटिल्य ने धन को विस्तृत अर्थ में प्रयुक्त किया है। इसके अन्तर्गत उन्होंने मुद्रा, सरकारी अथवा निजी सम्पत्ति, बहुमूल्य धातुओं, संचित धन, उपभोग किया जाने वाला धन एवं हस्तान्तरित किया जाने वाला धन शामिल किया है। उनके अनुसार किसी भी वस्तु में धन होने के लिए चार विशेषताएँ होनी चाहिए—

वास्तविकता, उपभोगशीलता, हस्तान्तरणशीलता एवं पर्यादान। कौटिल्य ने उन विधियों का भी उल्लेख किया है जिनसे धन की प्राप्ति की जा सकती है। वे कहते हैं कि जिस प्रकार विद्या को प्रति क्षण प्राप्त किया जाता है, उसी प्रकार धन को भी कण-कण के रूप में प्राप्त किया जाना चाहिए। वे कहते हैं कि वही धन उचित है जिसे साधनों से प्राप्त किया गया हो। उन्होंने बताया कि धन प्राप्ति ही जीवन का लक्ष्य नहीं है वरन् यह तो जीवन के उद्देश्य की पूर्ति का साधन है। आपत्ति एवं संकट काल में रक्षा के हेतु उन्होंने धन-संग्रह को आवश्यक बताया है।

कौटिल्य के इन विचारों से स्पष्ट होता है कि उन्होंने अर्थशास्त्र को पुरातन धर्म, आदर्श एवं नीतिशास्त्र से मुक्त कर भौतिकवाद की वास्तविक स्थिति में रख दिया। कौटिल्य की अर्थशास्त्र की परिभाषा आधुनिक पाश्चात्य भौतिकवादी अर्थशास्त्रियों—**मार्शल, पीगू** एवं **जे०एस० मिल** के विचारों से मिलती-जुलती है।

(2) **कौटिल्य के अर्थशास्त्र का राजनैतिक आधार** (Political Base of Kautilya's Economics)—कौटिल्य के अर्थशास्त्र का राज्यशास्त्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है क्योंकि एक विशेष राजव्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक गतिविधियों का सम्पादन तथा

TOUCH 'n' PASS

अर्जित साधनों का सदुपयोग अर्थशास्त्र का महत्त्वपूर्ण विषय है। यही कारण है कि पाश्चात्य अर्थशास्त्रियों, एडम स्मिथ, मिल से तथा रॉबिन्स की भाँति कौटिल्य का अर्थशास्त्र भी एक तरह से **राजनीतिक शास्त्र** (Political Economy) कहा जा सकता है। जहाँ कौटिल्य ने अर्थशास्त्र को धर्म, नीति एवं दर्शनशास्त्र से पृथक् किया, वहाँ उन्होंने अर्थशास्त्र को राज्यशास्त्र का अविभाज्य अंग माना क्योंकि राज्यतन्त्र का सम्बन्ध निम्न चार बातों से हैं—

(i) प्राप्य वस्तु का रक्षण, (ii) उचित रूप से रचित वस्तु की वृद्धि करना, (iii) अप्राप्य वस्तु की प्राप्ति का प्रयास, (iv) वृद्धि से प्राप्ति को उचित कामों में लगाना।

इनमें से प्रथम एवं द्वितीय दो बातें अर्थशास्त्र का आधार और विषय सामग्री है। इसी में भूमि की प्राप्ति एवं उनका रक्षण शामिल है। इससे स्पष्ट है कि **कौटिल्य का अर्थाशास्त्र** राजतन्त्र की विद्या का एक महत्त्वपूर्ण भाग है।

(3) **अर्थशास्त्र के उद्देश्य** (Objectives of Economics)—कौटिल्य के अनुसार अर्थशास्त्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

(i) जन कल्याण एवं जनहित के लिए आर्थिक विकास तथा राजनैतिक सुदृढ़ता की योजनाओं का निर्माण और सफल क्रियान्वयन की प्रवृत्ति बढ़ाना आदि।
(ii) आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं के निराकरण की सूझ-बूझ उत्पन्न करना।
(iii) राज्य को भौतिक दृष्टि से सुदृढ़ करना।
(iv) शासन की व्यावहारिक समस्याओं का विवेचन तथा विवेकपूर्ण समाधान करना।
(v) राजनीतिक तथा कूटनीति सम्बन्धी गूढ़ सिद्धान्तों से राज्य शासन सत्ता को शासन कार्य में दक्ष बनाना।
(vi) विद्याओं के ज्ञान एवं शिक्षा प्रसार से जनजागृति लाना।
(vii) शोध तथा शिक्षा कार्य के द्वारा देश को महान् बनाना।
(viii) साम्राज्य स्थापना एवं विस्तार की गूढ़ नीतियों का ज्ञान कराना।

(4) **कृषि भूमि सम्बन्धी कौटिल्य के विचार**—(Ideas of Kautilya on Land of Agriculture)—कौटिल्य ने राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में कृषि को सर्वोपरि स्थान दिया है। वैदिक काल में केवल वैश्य एवं शूद्र ही कृषि व्यवसाय कर सकते थे किन्तु कौटिल्य के अनुसार ब्राह्मण भी कृषि का व्यवसाय कर सकते हैं किन्तु उन्हें अपने हाथ से हल नहीं छूना चाहिए।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कृषि उत्पादन बढ़ाने तथा कृषि क्षेत्र के विस्तार हेतु निम्नलिखित बातें कही गई है—

(i) कृषि का अधिकांश क्षेत्र वर्षा पर निर्भर करता है। इसलिए तालाबों, कुओं एवं नहरों आदि साधनों द्वारा सिंचाई से उत्पादन बढ़ाना चाहिए।
(ii) बाँधों को नुकसान पहुँचाने वालों के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था की जानी चाहिए।
(iii) जंगलों एवं ऊसर भूमि को साफ कर कृषि क्षेत्र का विस्तार किया जाना चाहिए तथा नये गाँवों एवं जनपदों की स्थापना की जानी चाहिए।

(5) **पशुपालन सम्बन्धी विचार** (Views on Animal Husbandary)—पशुपालन में उन्होंने विभिन्न प्रकार के पशुओं, उनकी नस्ल तथा व्यवस्था का भी उल्लेख किया है जिसका उत्तरदायित्व पशु विभाग के अध्यक्ष पर होता था।

सरकारी पशुओं को चराने वाले ग्वालों की मजदूरी का निर्धारण तथा पशुओं के खाने-पीने के प्रबन्ध में क्षति पहुँचाने वालों के विरुद्ध कार्यवाही हेतु कठोर कानूनों की व्यवस्था पर भी विचार रखे हैं।

(6) **वनों की उपज** (Forest Product)—दो प्रकार के वनों का वर्णन है—**(क) द्रव्यवन**, जिससे ईंधन, औषधि आदि प्राप्त होते हैं; **(ख) हस्तिवन**, जिसमें हाथियों के रहने की व्यवस्था होती हैं युद्ध में हाथी का वही महत्त्व था जो आजकल टैंक का है। वनों पर राजा का नियन्त्रण होता है। नये वनों के लगाने का भी आदेश है। वनों से प्राप्त वस्तुओं से नाव, जहाज तथा रस्से आदि बनाना चाहिए।

(7) **खानों का प्रबन्ध** (Management of Mines)—कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में बताया है कि खानों पर स्वामित्व तीन प्रकार का था—(क) सरकार द्वारा खोदी जाने वाली खाने, (ख) राज्य तथा व्यापारिक संस्थानों के द्वारा मिलकर खोदी जाने वाली खानें और (ग) निजी खानें। इन सभी प्रकार की खानों पर सरकार का ही स्वामित्व अन्तर्निहित था।

कौटिल्य ने जहाँ एक ओर नमक पर राज्य के एकाधिकार की वकालत की, वहीं दूसरी ओर खनिजों के औद्योगिक उत्पादनों पर केन्द्रीय नियन्त्रण की आवश्यकता प्रतिपादित की। कौटिल्य ने निर्धारित सीमाओं से बाहर खनिजों के क्रय-विक्रय अथवा निर्धारित मात्रा से उनके अधिक उत्पादन पर दण्ड के विधान की आवश्यकता पर जोर दिया।

TOUCH 'n' PASS

(8) **जनसंख्या** (Population)—प्राचीन विचारकों ने जनसंख्या की वृद्धि को अवांछनीय नहीं माना वरन् इसे शक्ति का साधन माना जाता था। वेदों के अनुसार नव दम्पत्ति द्वारा 10 सन्तानें उत्पन्न करना उचित माना जाता था। ऐसा माना जाता था कि मृत्यु दर अधिक होने से जनाधिक्य की समस्या नहीं आ सकती। जनपदों की स्थापना पर बल देते हुए कौटिल्य का मत है कि राजा को चाहिए कि दूसरे देश के मनुष्यों को बुलाकर अथवा अपने देश की आबादी को बढ़ाकर वह पुराने मानव जनपद को बसाये।

(9) **श्रम सम्बन्धी विचार** (Views on Labour)—कौटिल्य ने श्रम को प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा है। उन्होंने मजदूरी के नियमों का विस्तृत उल्लेख किया है। वे कहते हैं कि किसी बीमारी या आपत्ति के कारण नौकर आकस्मिक छुट्टी ले सकता है अथवा अपने एवज में किसी दूसरे व्यक्ति को रखकर छुट्टी ले सकता है।

राज्य कर्मचारी की काम करते हुए मृत्यु हो जाने पर उसके पुत्र अथवा पत्नी को उसके दिये जाने का भी प्रावधान कौटिल्य के अर्थशास्त्र में है।

कौटिल्य के अनुसार मजदूरी के भुगतान में आपस में तयशुदा मजदूरी देनी होगी और मजदूरों को उसे स्वीकार करना होगा। मजदूरी का भुगतान न करने पर उसकी राशि का दस गुना अथवा छ: पण जुर्माना देना पड़ेगा। मजदूरी हजम कर जाने पर उस राशि का पाँच गुना अथवा 12 पण जुर्माना देना होगा।

कौटिल्य ने अनुबन्ध के अभाव वाली परिस्थिति में खेतिहर को उसकी फसल का, पशुपालक को उसके घी का तथा व्यापारी को उसकी बिक्री का दसवाँ भाग राज्य को देने का विधान बताया है।

दास प्रथा के सम्बन्ध में वे कहते हैं कि आर्य जाति किसी भी हालत में गुलाम नहीं बनायी जा सकती। दासों पर अत्याचार को रोकने की दृष्टि से भी कौटिल्य ने राज्य के नियन्त्रण का उल्लेख किया है।

कौटिल्य ने श्रम संघों को मजदूरी निर्धारण, कार्य के विभाजन तथा श्रमिकों की सामूहिक समस्या का निपटारा करने वाला बतलाया है।

(10) **उद्योग** (Industry)—कौटिल्य ने **राजकीय और व्यक्तिगत** उद्योगों का वर्णन किया है। राज्य के वस्त्र उद्योग के लिए 'सूत्राध्यक्ष' का उल्लेख है जो ऊनी, सूती तथा रेशमी वस्त्र तैयार कराता था। सबके कारखाने अलग-अलग होते थे। रथाध्यक्ष रथों का निर्माण करता था। सेना के हथियार, रस्से तथा गाड़ियाँ आदि भी सरकारी कारखाने में बनने की बात है परन्तु फिर भी निजी धन्धे थे। स्वतन्त्र व्यापारी मजदूरों और कारीगरों से चीजे बनवाते थे।

उद्योगों के बारे में कौटिल्य की 'आर्थिक नीति' में तीन प्रमुख बातें थीं—(i) अधिकतम उत्पादन, (ii) अधितम राज्य आय तथा (iii) अधिकतम जनहित।

कौटिल्य ने उद्योगों को दो श्रेणियों में विभाजित किया तथा उनके संचालन सम्बन्धी नीति का उल्लेख इस प्रकार किया है—

(i) **बड़े उद्योग** (Big Scale Industry)—इसके अन्तर्गत खानों, सागर खनिजों और नमक उद्योग को लिया गया तथा इन बड़े उद्योगों में राजकीय नियन्त्रण के अन्तर्गत उत्पादन पर अधिक जोर दिया।

(ii) **लघु उद्योग** (Small Scale Industry)—कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' में लघु उद्योगों पर भी महत्त्वपूर्ण आर्थिक विचार दिये हैं। उन्होंने पाँच प्रकार के अध्यक्षों (i) सुवर्णाध्यक्ष, (ii) लक्षणाध्यक्ष, (iii) सूत्राध्यक्ष, (iv) पौतवाध्यक्ष, (v) सुराध्यक्ष का उल्लेख किया है।

लघु उद्योगों में यद्यपि कुछ वस्तुओं पर राज्य के एकाधिकार की बात का उल्लेख है पर अधिकांश लघु उद्योगों पर निजी उद्यमियों का स्वामित्व एवं नियन्त्रण था। स्वतन्त्र व्यापारी मजदूरों एवं कारीगरों से वस्तुओं को बनवाते और बेचते थे।

(11) **बाजार संगठन** (Market Organization)—कौटिल्य के अर्थशास्त्र में तत्कालीन बाजार व्यवस्था का विवरण दिया गया है कि बाजार संगठन इतना अच्छा था कि थोड़ी-सी चोर-बाजारी करने पर दुकानदार दण्ड का भागी होता था। बाजारों में तराजू, बाँट, नाप-तौल के बर्तन तथा उपकरणों की जाँच आदि का निरीक्षण सरकारी निरीक्षक **'प्रण्याध्यक्ष'** करता था। उसने दैनिक वेतन पर विक्रय कर प्रजा कल्याण की बात कही जो वर्तमान सार्वजनिक वितरण प्रणाली का संकेत देता थां मिलावट करने वाले व्यापारियों को दण्ड का विधान भी किया गया था।

(12) **मुद्रा एवं कीमत** (Money and Price)—क्रय-विक्रय का कार्य मुद्रा के उपभोग से सुविधाजनक हो जाता है अत: कौटिल्य ने मुद्रा के दो कार्य—विनिमय का माध्यम तथा कोष में धन संग्रह का विधिग्राह्य माध्यम बताया। कौटिल्य काल में प्रामाणिक सिक्का 'पण' था जो पूर्व निर्धारित चाँदी, ताँबा, तीक्ष्ण शीशा आदि के मिश्रण से बनाया जाता था। यह स्वर्ण विनिमयमान का प्रारम्भिक रूप था क्योंकि सांकेतिक सिक्कों का मूल्य स्वर्ण में निर्धारित था।

वस्तु के मूल्य-निर्धारण के सम्बन्ध में उल्लेख है कि खेत, बाग, तालाब, हौज एवं सीमा-बन्ध आदि का मूल्य गाँव के मुखिया तथा अन्य वयोवृद्ध पुरुषों के सामने नीलामी पद्धति से उनकी हैसियत के मुताबिक नियमानुसार एवं उचित मूल्य पर होना चाहिए।

TOUCH'n' PASS

कीमत के सम्बन्ध में कौटिल्य ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि वाणिज्य अधीक्षक कीमतों को नियमित करता था जो स्थानीय वस्तुओं की कीमत पर 5% तथा बाहर से आने वाली वस्तुओं की कीमत पर 10% लाभ निर्धारित करता था। प्रतियोगिता के कारण जो व्यापारी किसी चीज का मूल्य बढ़ाये तो उस बढ़े हुए मूल्य को राजा ले ले अथवा उस मूल्य बढ़ाने वाले खरीददार से दुगुनी चुंगी वसूल कर ली जाए। इसी प्रकार कीमत बढ़ाने वाले व्यापारी पर भी जुर्माना किया जाता था। उनके अनुसार अनेक स्थानों पर बिकने वाली राजकीय वस्तुओं को सभी व्यापारी एक ही भाव से बेचें। स्वदेश और विदेश की वस्तुओं की बिक्री का ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि प्रजा को कोई कष्ट न हो। वाणिज्य अध्यक्ष का यह कर्त्तव्य होता था कि वह बिक्री के लिए आई हुई अनेक प्रकार की बहुमूल्य एवं अल्पमूल्य वस्तुओं के तारतम्य और उनकी माँग अथवा अरुचि आदि के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी रखे। व्यापार में नाप-तौल की भी उचित एवं सख्त व्यवस्था थी।

(13) **व्यापार** (Trade)—कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में व्यापार के नियम का विस्तृत विवरण दिया है। राजा का कर्त्तव्य था कि वह व्यापार का विकास करने के लिए यातायात और सन्देश वाहन के साधनों का विकास करे। उस समय स्वतन्त्र व्यापार की प्रथा प्रचलित थी फिर भी आय प्राप्त करने के लिए बाहर से आने वाले माल पर कर लगाया जाता था परन्तु यह विधान था कि कोई वस्तु यदि बाहर से लाई जाती है तो वह बिना चुंगी दिये भी नगर-सीमाओं के बाहर बेची जा सकती है। उनके अनुसार, अधिक चुंगी देने के डर से जो व्यापारी अपने माल और उसके मूल्य को कम करके बताये, उस अतिरिक्त माल को राजा ले ले अथवा व्यापारी से आठ गुना शुल्क वसूल किया जाए। यदि प्रजा का उपकार करने वाला तथा कठिनाई से प्राप्त होने वाला धान्य आदि माल हो तो उस पर चुंगी न लगाई जाए जिससे उस माल का देश में अधिक आयात हो।

(14) **ब्याज का नियमन** (Regulation of Interest)—कौटिल्य ब्याज दर के नियम के पक्ष में था। उसके अनुसार 15% ब्याज दर न्यायोचित थी किन्तु विशेष परिस्थितियों में वह ब्याज की ऊँची दर को भी न्यायोचित समझता था। उसका मत था कि यदि ऋणदाता उस समय ब्याज की माँग करें जबकि वह देय न हो अथवा वह मूलधन + ब्याज को मिलाकर कुल राशि को मूलधन मान ले तो ऐसे ऋणदाता को दण्ड दिया जाना चाहिए।

कौटिल्य ने शक्तिहीन पुरुषों, गुरुकुल में अध्ययनरत बालकों आदि पर ऋणों से ब्याज निषिद्ध बताया था।

(15) **लाभ का नियम** (Regulation of Profit)—कौटिल्य ने स्थानीय उत्पादित वस्तुओं के क्रय पर 5% तथा विदेशी वस्तुओं के क्रय पर 10% लाभ लेने का विधान बताया है। वस्तुएँ बाजार के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर बेचना वर्जित था और कोई भी व्यक्ति निर्धारित लाभ से अधिक लेने का अधिकारी नहीं था।

(16) **व्यक्तिगत सम्पत्ति** (Personal Property)—व्यक्तिगत सम्पत्ति प्राप्त करने के सम्बन्ध में कौटिल्य के प्रमुख विचार निम्नलिखित थे—(i)केवल करदाता ही करदाता को अपनी भूमि बेच सकता था। (ii) जो भूमि ब्राह्मण को दान में मिली हो, वह उस भूमि को केवल ऐसे ही ब्राह्मण को गिरवीं रख सकता था। (iii) जिस पुरुष की सम्पत्ति के साक्षी नहीं मिलते पर वह उसे लगातार भोगता चला आ रहा है तो यह बात ही उस सम्पत्ति पर उसके स्वामित्व का पर्याप्त प्रमाण है। (iv) जो व्यक्ति दूसरों द्वारा भोगी जाने वाली अपनी सम्पत्ति की 10 वर्ष तक परवाह नहीं करता तो फिर उस सम्पत्ति पर उसका अधिकार नहीं रहेगा। (v) यदि व्यक्तिगत सम्पत्ति प्राप्त करने में सार्वजनिक अहित हो तो राज्य सम्पत्ति प्राप्तकर्ता को सम्पत्ति के अधिकार से वंचित कर सकता है। (vi) जिस सम्पत्ति का कोई उत्तराधिकारी न हो, उसकी सम्पत्ति को राज्य द्वारा अपने अधिकार में लेने का विधान था। (vii) पिता की मृत्यु पर ही पुत्र सम्पत्ति का बँटवारा करने के अधिकारी थे।

(17) **सामाजिक सुरक्षा एवं कल्याणकारी राज्य** (Social Security and Welfare State)—भारतीय प्राचीन विचारों में हमें कल्याणकारी राज्य तथा सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी विचार मिलते हैं। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में यह उल्लेख किया है कि **राजा को अपने कर्मचारियों के भारत-पोषण पर राज्य की आय का चौथा भाग व्यय करना चाहिए।** ऐसा कोई भी कार्य न किया जाए जिससे धर्म और अर्थ की व्यर्थ क्षति हो। उस काल में वर्ग-संघर्ष और शोषण का भी उल्लेख नहीं मिलता। ब्याज की ऊँची दर लेने की मनाही थी। उनके अनुसार यदि खजाने में कमी हो तो आर्थिक सहायता की जगह राजा कृषि, पशु तथा जमीन आदि से प्रजा की सहायता करे। कर्मचारियों को योग्यता और कार्य-क्षमता के अनुसार वेतन भत्ता दिया जाए। **कार्य करते समय यदि कर्मचारी की मृत्यु हो जाए तो उसका वेतन उसके आश्रितों को देने का विधान था।** कल्याण सम्बन्धी विचारों के सम्बन्ध में कौटिल्य का मत है कि राजा, प्रजा की समृद्धि के लिए उत्तरदायी है। प्रत्येक वर्ण और आश्रम का धर्म है कि वह किसी भी प्रकार की हिंसा न करे, सत्य बोले, पवित्र बना रहे, ईर्ष्या न करे एवं क्षमाशील बना रहे। दैवीय-आपत्तियों से प्रजा की रक्षा की जाती थी।

कौटिल्य के अनुसार राज्य का मार्ग-दर्शन करने के तीन सिद्धान्त हैं—(अ) राज्य में वे उद्योग चलाये जाने चाहिए जो राष्ट्र को आत्म-निर्भर बनाने में सहायक हों। (ब) कृषि, सूत उद्योग, पशुपालन इत्यादि उद्योग निजी व्यक्तियों के ऊपर छोड़ दिया जाना चाहिए। (स) राज्य को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उत्पादन, वितरण और उपभोग सम्बन्धी सारी क्रियाएँ कुशलतापूर्वक चलायी जाएँ।

TOUCH 'n PASS

कौटिल्य ने न्याय और दण्ड सम्बन्धी विचार भी प्रदान किये हैं। न्याय की व्यवस्था पंचायतों द्वारा की जाती थी।
इस प्रकार हम देखते हैं कि कौटिल्य ने कल्याणकारी राज्य सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किये हैं, भले ही ये विचार आज के समान वैज्ञानिक एवं व्यापक नहीं थे।

(18) **सार्वजनिक वित्त सम्बन्धी विचार** (Views on Public Finance)—कौटिल्य के अनुसार सारे कार्य कोष पर निर्भर है। इसलिए राजा को चाहिए कि सबसे पहले वह कोष पर ध्यान दे। उनके मत में राष्ट्र की सम्पत्ति को बढ़ाना, चोरों पर निगरानी रखना, सभी प्रकार के अन्नोत्पादन को प्रोत्साहित करना, व्यापार-योग्य वस्तुओं को बढ़ाना और ठीक समय पर यथोचित कर वसूल करना—ये सब कोष वृद्धि के उपाय हैं। राज्य को उद्योगों, वनों, कृषि, मत्स्य पालन, खनिज और व्यापार आदि में भाग लेना चाहिए और इनसे आय प्राप्त करनी चाहिए। इसके सिवाय राज्य की आय का प्रमुख साधन करारोपण था और सार्वजनिक वित्त का उद्देश्य प्रजा को चार पुरुषार्थों की प्राप्ति में सहायता देना था।

कौटिल्य ने कर को परिभाषित करते हुए कहा है कि "राजा को दिये जाने वाले अंश को शुल्क (कर) कहते हैं।" और इस कार्य पर नियुक्त प्रधान राज्याधिकारी को 'शुल्कध्यक्ष' कहा गया है। कौटिल्य के अनुसार करों में चुंगी अथवा शुल्क का समावेश था तथा उन्होंने चुंगी/शुल्क के तीन रूपों का विवेचन किया है—

(क) **आभ्यान्तर शुल्क/चुंगी**—राज्य की राजधानी या दुर्ग में उत्पादित वस्तुओं पर वसूल किया जाने वाला शुल्क/चुंगी आभ्यान्तर शुल्क/चुंगी कहा जाता था।

(ख) **आतिथ्य शुल्क/चुंगी**—विदेशों से आयात होने वाली वस्तुओं या माल पर वसूल की जाने वाली चुंगी/शुल्क को आतिथ्य शुल्क/चुंगी के नाम से जाना जाता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में बाहर से आयात होने वाले माल पर पाँचवाँ हिस्सा आतिथ्य शुल्क/चुंगी के रूप में लिए जाने का उल्लेख है।

(ग) **बाह्य शुल्क/चुंगी**—अपने देश में उत्पन्न वस्तुओं पर जो शुल्क/चुंगी वसूल की जाती है, उसे बाह्य शुल्क/चुंगी कहा गया।

उनके अनुसार करों से प्राप्त होने वाली आय को तीन भागों में बाँटा जाना चाहिए—(अ) देश में उत्पादित वस्तुओं पर कर से प्राप्त आय, (ब) राजधानी में उत्पन्न होने वाली वस्तुओं पर कर लगाने से प्राप्त आय एवं (स) आयात और निर्यात पर कर लगाने से प्राप्त आय। आय प्राप्त करने के लिए उन्होंने समाहर्ता (Revenue Collector) का उल्लेख किया है। उन्होंने आयात पर उसकी लागत का पाँचवा हिस्सा कर के रूप में वसूल करने का विधान निर्धारित किया। वे कहते हैं कि "राजा को चाहिए कि वह देश, जाति तथा आचार के अनुसार नये एवं पुराने हर पदार्थों पर कर की व्यवस्था करे और उनमें जहाँ से नुकसान की सम्भावना हो, उसके लिए उचित दण्ड की व्यवस्था भी करे।"

कौटिल्य ने राज्य के **आय-व्यय (बजट)** का भी उल्लेख किया है। वे कहते हैं कि समाहर्ता को चाहिए कि वह निर्दिष्ट विधियों, साधनों एवं मार्गों से राजकीय धन का संग्रह करे और आय-व्यय में बचत-हानि का लेखा-जोखा ठीक रखे। यदि किसी अवस्था में भविष्य की विशेष आय की आशा में पहले अधिक व्यय भी करना पड़े तो वैसा करके आय को बढ़ाये। यहाँ हमें उनके विचारों में हीनार्थ-प्रबन्धन का उल्लेख मिलता है। उन्होंने करारोपण के दो सिद्धान्तों का उल्लेख किया है—

(अ) कर वर्ष में केवल एक बार लगाया जाना चाहिए और

(ब) अमीर लोगों पर उनकी करदान क्षमता के अनुसार कर लगाया जाना चाहिए एवं उसी क्रम में उन्हें प्रतिष्ठा भी मिलनी चाहिए।

उन्होंने सार्वजनिक व्यय की इन मदों का उल्लेख किया है—(i) राष्ट्रीय प्रतिरक्षा पर व्यय, (ii) प्रशानिक व्यय, (iii) सरकारी विभागों एवं मन्त्रियों के वेतन का व्यय, (iv) सरकारी भण्डार-गृहों पर व्यय, (v) सेना पर व्यय, (vi) कीमती हीरे-जवाहरात तथा आभूषण आदि पर किया जाने वाला व्यय। कोष में रखने योग्य रत्नों की परीक्षा का भी उन्होंने विस्तार से उल्लेख किया है। कौटिल्य ने ऋण पर भी विचार किया है तथा ब्याज की दर निर्धारित की है और इससे अधिक ब्याज लेने वालों के लिए दण्ड की व्यवस्था की है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कौटिल्य ने राजस्व सम्बन्धी विस्तृत विचारों का वर्णन किया है।

प्र.2. अर्थशास्त्र में कौटिल्य एवं वल्लुवर के योगदान की व्याख्या कीजिए।
Explain the contribution of Kautilya and Valluvar in Economics.

उत्तर

अर्थशास्त्र में कौटिल्य का योगदान
(Contribution of Kautilya in Economics)

(i) कौटिल्य ने धर्म पर अर्थ की प्रधानता की धारणा प्रतिपादित की।

(ii) अर्थशास्त्र एक विशाल शास्त्र है। वार्ता उसका छोटा-सा भाग है। अर्थनीति दण्ड नीति का ही एक अंग है।

TOUCH 'n' PASS

(iii) आर्थिक क्रियाओं एवं राज्य कार्यों के संचालन को नैतिकता और भावुकता से अलग रखा।
(iv) कौटिल्य का अर्थशास्त्र चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन को शक्तिशाली बनाने का एक सशक्त साधन था।
(v) कौटिल्य ने अर्थव्यवस्था में नियोजित उत्पादन की अवधारणा की नींव रखी।
(vi) उनका दृष्टिकोण व्यावहारिक है। वे सिद्धान्त की विवेचना में नहीं पड़े। वणिकवाद के समान उन्होंने नीति का ही वर्णन किया।
(vii) कौटिल्य ने मिश्रित अर्थव्यवस्था की जिसमें राज्य का अधिक-से-अधिक योगदान है।
(viii) कौटिल्य ने एक क्रान्तिकारी विचार रखा है। उन्होंने अर्थ को प्रथम पुरुषार्थ कहा है तथा अन्य को इसके अधीन बताया है।
(ix) उनका अर्थशास्त्र राज्यों को शक्तिशाली बनाने का एक साधन था। इस विषय में उनके विचार वणिकवादियों तथा राष्ट्रीयतावादियों से मिलते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि (1) प्राचीन भारत में अर्शशास्त्र का एक अलग विषय के रूप में अध्ययन नहीं किया जाता था बल्कि यह नीति-शास्त्र, धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र और राजनीति के साथ पढ़ा जाता था। (2) प्राचीन भारत के लोगों की आर्थिक क्रियाओं एवं विचारों को नैतिक व धार्मिक आदर्शों द्वारा नियमित किया जाता था। (3) कल्याणकारी राज्य का विचार भारतीय प्राचीन आर्थिक विचारों का केन्द्र था।

अर्थशास्त्र में वल्लुवर का योगदान
(Contribution of Valluvar in Economics)

जीवन परिचय—वल्लुवर एक महान सन्त और कवि थे। ऐसा माना जाता है कि इनका जन्म ईसा मसीह (Jesus Christ) के जन्म के 30 वर्ष पूर्व पीकॉक गाँव में (वर्तमान में चेन्नई) हुआ था। वे जुलाहे का कार्य करते थे और उनकी पहचान एक सन्त और कवि के रूप में थी तथा तमिलनाडु के लोग उनकी पूजा गुरु के रूप में करते थे।

रचनाएँ—जैसा कि ऊपर कहा गया है कि वल्लुवर कोई अर्थशास्त्री नहीं थे न ही राजनीतिक चिन्तक थे बल्कि एक दार्शनिक थे जिन्होंने अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र व नैतिक शास्त्र को मिलाकर श्लोकों (couplets) के रूप में समाज के कल्याण के लिए लिया था।

उनके महत्त्वपूर्ण दार्शनिक, आर्थिक, नैतिक विचार उनकी पुस्तक **थिरूक्कुराल** (Thirukkural) में दिया गया है, जिसमें 133 अध्याय तथा 1330 श्लोक (couplets) हैं। इस पुस्तक के निम्नलिखित तीन भाग हैं—

भाग 1 (1-38) 3 जो कि सद्गुणों पर लिखा गया है।
Part I (1-38) 3 is on VIRTUE (Aram)
भाग 2 जो कि धन से सम्बन्धित है।
[Part II is on Wealth (Porul)]
भाग 3 जो कि प्रेम से सम्बन्धित है।
[Part III is on Love (Inbam)]

वल्लुवर के आर्थिक विचार पुस्तक के भाग दो **थिरूक्कुराल** (Thirukkural) में दिए गये हैं। थिरूक्कुराल के प्रमुख आर्थिक विचारों का अध्ययन हम निम्नलिखित शीषकों के अन्तर्गत कर सकते हैं—

1. सुशासन।
2. लोक कल्याण।
3. आर्थिक नियोजन।
4. कृषि।
5. निर्धनता व भिक्षावृत्ति।
6. लोक वित्त।

1. **सुशासन** (Good Governance)—सन्त वल्लुवर ने अपनी पुस्तक में एक अच्छे राजा के गुण और कर्त्तव्यों को बताते हुए ऐसे ऊँचे मानदण्डों का आधार प्रस्तुत किया है जिसके अन्ततः परिणति सुशासन में होती है।
वल्लुवर के अनुसार राजा को सत्यवादी एवं धर्मपरायण होना चाहिए, क्योंकि ऐसा धर्मपरायण राजा जो विवेकी हो, सत्यवादी हो, गुण-दोष का भेद समझने वाला हो, धर्म, अर्थ और काम के रहस्य का ज्ञान रखने वाला हो, शास्त्रानुसार आचरण करने में सक्षम हो, पवित्र हृदय और सत्यप्रिय हो, वही राजपद पर आसीन होने योग्य होता है।
न केवल विद्वान, धार्मिक, जितेन्द्रिय तथा न्यायप्रिय राजा हो बल्कि उसे अपने सहायकों के रूप में योग्य निष्ठावान तथा सच्चरित्र व्यक्तियों को विभिन्न राजकीय पदों पर नियुक्त करना चाहिए। ताकि राजकार्य सुचारु, पूर्ण एवं न्यायपूर्ण ढंग से

TOUCH 'n PASS

सम्पादित हो सके। यही नहीं समय-समय पर उनके कार्यों का निरीक्षण करके उनके आचरण, योग्यता और ईमानदारी की परीक्षा करनी चाहिए तथा अयोग्य तथा भ्रष्ट पाये जाने वाले अधिकारियों को दण्डित किया जाना चाहिए। आज भारत वर्ष में सबसे बड़ी समस्या सुशासन की है। फलत: आज भी रोजी-रोटी की समस्या गम्भीर बनी हुई है।

2. **लोक कल्याण** (Social Welfare)—वल्लुवर का मत है कि राज्य का अर्थ केवल सुरक्षात्मक चरित्र का ही नहीं है। बल्कि लोक कल्याणकारी चरित्र का भी है। इसका तात्पर्य यह है कि राजा विस्तृत पैमाने पर लोक-हितकारी गतिविधियों का आयोजन कर अपनी जनता को हर तरह की आवश्यक सहायता पहुँचाता है और उनके जीवन के कष्टों का हरण कर उनके जीवन को अधिकतम सीमा तक सुखमय और आरामदायक बनाता है।
3. **आर्थिक नियोजन** (Economic Planning)—वल्लुवर ने आर्थिक नियोजन पर अत्यधिक महत्त्व दिया है। उनका कहना था कि राजा को किसी कार्य को करने से पूर्व पर्याप्त चिन्तन करना चाहिए और अन्य लोगों से परामर्श करने के बाद ही लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उपयुक्त विधि अपनानी चाहिए। उसे प्रत्येक कार्य करने से पूर्व उस कार्य की अच्छाई व बुराई, उसकी कमजोरी और मजबूती तथा उपलब्ध साधनों को ध्यान में रखकर ही कोई निर्णय लेना चाहिए। वैल्यूवर का मत बिना अच्छी तरह पूर्व नियोजन के किसी कार्य को करने में केवल समय और साधन का अपव्यय होता है और वांछित फल नहीं प्राप्त हो सकता। इसी सिद्धान्त को आज हम लागत-लाभ विश्लेषण (Cost-Benefits Analysis) कहते हैं। इस प्रकार उनका 478 श्लोक आधुनिक वित्तीय प्रशासन और राजस्व के सिद्धान्त की बात कहता है।
4. **कृषि** (On Agriculture)—**वल्लुवर** का कहना है कि विश्व कृषि पर आधारित है। इसलिए उन्होंने सभी व्यवसाय से अधिक **कृषि को महत्त्व** दिया क्योंकि यदि कृषक कार्य करना बन्द कर देंगे तो पूरा विश्व ही समाप्त हो जाएगा। संक्षेप में वल्लुवर का मत था कि राज्य मूलत: कृषि आधारित होता है। अत: कृषि विकास उसका प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए इस हेतु कृषकों को अन्न, बीज, बैल, खाद, सिंचाई के साधन व धन को देकर उनकी सहायता करनी चाहिए साथ ही विभिन्न प्रकार के पशु राज्य के विकास के लिए आवश्यक होते हैं। अत: उनके स्वास्थ की रक्षा, चारागाह का प्रबन्ध व नस्ल सुधार आदि की व्यवस्था की जानी चाहिए। इस प्रकार वल्लुवर ने **कृषि विकास और पशु संरक्षण एवं सम्बर्द्धन को महत्त्व दिया।**
5. **निर्धनता व भिक्षावृत्ति** (Poverty and Begging (105-107)—वल्लुवर ने लिखा है कि **निर्धनता निर्दयी होती है और लोगों को पीड़ित** (Poverty is cruel, it afflicts people) करती है। राज्य में यदि निर्धनता है तो इससे राजा के सम्मान को धक्का पहुँचता है और राज्य में विभिन्न प्रकार की विपत्तियाँ लाती है। अत: राजा का प्रथम कर्त्तव्य है कि राज्य की गरीबी को दूर करे और राज्य के धन को बढ़ाने को दृढ़ता के साथ कार्य करे।
   इसी प्रकार **सन्त वल्लुवर** ने भिक्षावृत्ति को एक बहुत बड़ी बुराई माना और उसकी भर्तसना (Condemms) करते हुए लिखा है, "If creator of the world has begging as a means of livelihood, may be too go begging and perishs.
6. **लोकवित्त** (Public Finance)—वल्लुवर ने राज्य की सुरक्षा समृद्धि और जन कल्याण के कार्यों के सफल संयोजन हेतु राजकोष के महत्त्व को स्वीकार किया। उनके अनुसार राजा के आय के तीन स्रोत होते हैं—
   1. ऐसी सम्पदा जिस पर किसी ने दावा नहीं किया हो (Unclaimed Wealth)
   2. करारोपण से प्राप्त होने वाली सीमा शुल्क (Taxes which subject pay)
   3. विदेशों से प्राप्त होने वाली सीमा शुल्क (Customs Collection from foreigners)।

   वल्लुवर ने संग्रह की गई आय के समतापूर्ण वितरण के जो मदें बताई हैं, वे इस प्रकार है—
   (i) सुरक्षा (Defence),
   (ii) सार्वजनिक कार्य (Public Works),
   (iii) सामाजिक सेवाएँ (Social Service)।

   वल्लुवर ने यह भी स्पष्ट किया कि करारोपण में किसी प्रकार की जबर्दस्ती या दबाव नहीं होना चाहिए। संक्षेप में वल्लुवर का मत था विभिन्न कर राजा को मनमाने ढंग से नहीं बल्कि धर्म सम्वत् तरीके से लगाना चाहिए और कर की वसूली में जनता को किसी प्रकार की परेशानी नहीं होनी चाहिए।

TOUCH 'n' PASS

7. **देश की सम्पन्नता** (Prosperosty of Nation)—**सन्त वल्लुवर** निर्धनता और भिक्षावृत्ति को एक बुराई व पाप मानते हुए देश की सम्पन्नता और धन संग्रह पर महत्त्व दिया। वल्लुवर के अनुसार विश्व में सभी प्रकार के सुखों का स्रोत सम्पदा या धन है। अत: उनके अनुसार देश की सम्पन्नता के लिए निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं—(1) भूमि और किसान, (2) व्यापारी, (3) पूँजी और (4) श्रम। बाद के अर्थशास्त्रियों जैसे एडम स्मिथ, मार्शल आदि वल्लुवर के विचारों से प्रभावित होकर ही उत्पादन के चार साधन—भूमि, श्रम, पूँजी और संगठन बताया था। वल्लुवर के मतानुसार किसी भी देश की सम्पन्नता के लिए चार बातें आवश्यक हैं—
(i) ईश्वर में विश्वास, (ii) आर्थिक संसाधन, (iii) आध्यात्मिक नेतृत्व एवं (iv) नैतिक कानून का पालन करना। वल्लुवर ने इन चारों बातों को समान महत्त्व दिया और कहा कि देशरूपी वाहन के चार महत्त्वपूर्ण पहिये (wheels) हैं जिन पर देश की सम्पन्नता की गाड़ी चलती है।

प्र.3. भारत की निर्धनता के कारणों के विषय में दादाभाई नौरोजी तथा आर०सी० दत्त के विचारों का वर्णन कीजिए।
Describe the thoughts of Dadabhai Naoroji R.C. Dutt about the causes of India's poverty.

उत्तर

दादाभाई नौरोजी
(Dadabhai Naoroji)

दादाभाई नौरोजी का जन्म सन् 1825 में बम्बई के एक निर्धन परिवार में हुआ। बचपन से हील आपने तीव्र बुद्धि का परिचय दिया। आपकी उच्च शिक्षा बम्बई के एलफिन्सटन कॉलेज में सम्पन्न हुई। सन् 1855 में यह कामा एण्ड कं० के प्रतिनिधि के रूप में इंग्लैण्ड गये। सन् 1856 में वे वहाँ लन्दन के कॉलेज में अध्यापक हो गये और लगभग दस वर्ष तक रहे। उन्होंने वहाँ लन्दन इण्डियन सोसाइटी स्थापित की जिसका उद्देश्य भारतीय छात्रों को संगठित करना और भारत की समस्याओं का अध्ययन करना था। उन्होंने यूरोप के देशों की अर्थव्यवस्था का सूक्ष्म अध्ययन किया था।
नौरोजी ने देश की सेवा, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस संस्था के माध्यम से की और इस संस्था के वे सन् 1886, 1893 एवं 1906 में अध्यक्ष भी चुने गये। महत्त्वपूर्ण विचारों के कारण नौरोजी को भारत में ही नहीं वरन् इंग्लैण्ड में भी सम्मान मिला। यद्यपि उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की लेकिन उनका सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ *'Poverty and Un-British Rule in India'* है। यह नौराजी की महत्ता एवं प्रतिष्ठा को प्रकट करता है कि इन्हें सन् 1892 में ब्रिटिश संसद का सदस्य निर्वाचित किया गया और प्रथम भारतीय के रूप में एल्फिन्सटन कॉलेज में प्राध्यापक के पद पर नियुक्त किया गया। सन् 1917 में इनका देहावसान हो गया।

नौरोजी के आर्थिक विचार (Economic Thoughts of Naoroji)

नौरोजी के आर्थिक विचार हमें उनकी पुस्तक 'Poverty and Un-British Rule in India' में मिलते हैं। उनके आर्थिक विचार निम्न प्रकार हैं—

1. भारत में निर्धनता की समस्या (Problem of Poverty in India),
2. भारत की राष्ट्रीय आय (National Income of India),
3. बहिर्गमन अथवा निकास सिद्धान्त (The Drain Theory),
4. ब्रिटिश शासन की आलोचना (Criticism of British Rule)।

1. **भारत में निर्धनता की समस्या** (Problem of Poverty in India)—जैसाकि उनकी पुस्तक के नाम से ही विदित है, उन्होंने भारत की गरीबी की समस्या पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है और इसके लिए ब्रिटिश शासन को उत्तरदारी ठहराया है।
दादाभाई ने विभिन्न आँकड़ों द्वारा यह प्रमाणित किया कि भारत में निर्धनता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिए उन्होंने निम्नलिखित प्रमाण दिये—

(i) **राष्ट्रीय आय एवं औसत आय का कम होना**—दादाभाई ने कहा कि भारतीय औसत आय ₹ 20 प्रतिवर्ष से भी कम है जबकि प्रति व्यक्ति जीवन का व्यय देश में ₹ 34 है। आपने लिखा कि देश के अधिकांश नगरों में मनुष्य भुखमरी के शिकार है।
भारत की राष्ट्रीय आय की गणना के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचना अगले शीर्षक में की गयी है।

TOUCH 'n PASS

(ii) **बढ़ती हुई बेरोजगारी**—हजारों की संख्या में लोगों को कोई भी काम नहीं है तथा वे इधर-उधर भटकते हैं।

(iii) **कृषि की दुर्दशा**—कृषि में लगे हुए लोगों को पेट भर खाना मिलना मुश्किल है। बहुत-से लोग कृषि छोड़ चुके है।

दादाभाई नौरोजी ने बताया कि यह भारत की निर्धनता का ही परिणाम है कि देश की आय बहुत कम है, आयात-निर्यात का स्तर गिरा हुआ है, लोगों का जीवन-स्तर निम्न है, मृत्यु दर अधिक है और विभिन्न क्षेत्रों को अकाल का सामना करना पड़ता है। उन्होंने आवश्यक आँकड़े एकत्रित कर यह निष्कर्ष निकाला कि, "ऐसे भोजन और कपड़े के लिए भी जो कैदी को दिया जाता है, अच्छे मौसम में पर्याप्त उत्पादन नहीं हो पाता, फिर अल्प मात्रा में विलासिता, धार्मिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं एवं संकट के लिए व्यवस्था करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता ..... भारतीय जनता की ऐसी स्थिति है।"

दादाभाई नौरोजी ने भारत की भीषण गरीबी को दूर करने के लिए निम्न तीन सुझाव दिये—

(i) भारत और इंग्लैण्ड दोनों देशों में काम करने वाले कर्मचारियों का वेतन सम्बन्धित देश से ही दिया जाना चाहिए। भारत में कार्य करने वाले अंग्रेज तथा इंग्लैण्ड में कार्य करने वाले भारतीयों के भुगतान के सम्बन्ध में एक उचित अनुपात निर्धारित किया जाना चाहिए।

(ii) अंग्रेजों का वेतन अधिक ऊँचा होने के कारण उन्हें पेंशन से वंचित रखा जाना चाहिए।

(iii) भारतीय नौसेना पर जो भी व्यय किया जाता है, उसका भार भारत पर नहीं पड़ना चाहिए क्योंकि जलमार्ग से कोई अन्य देश भारत पर आक्रमण नहीं कर सकता।

(2) **भारत की राष्ट्रीय आय** (National Income of India)—नौरोजी प्रथम भारतीय थे जिन्होंने भारत की राष्ट्रीय आय तथा उसमें विभिन्न वर्गों के अंश का अनुमान लगाया। उन दिनों भारत की राष्ट्रीय आय सम्बन्धी आँकड़े 'The India Economist' मे प्रकाशित होते थे जो अपूर्ण तथा अविश्वसनीय थे। आँकड़ों के आधार पर उन्होंने यह अनुमान लगाया कि सन् 1867-70 के वर्षों में बम्बई प्रेसीडेंसी में प्रति व्यक्ति आय ₹ 20 थी उनके अनुसार न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रति भारतीय व्यक्ति की आय ₹ 34 होनी चाहिए। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि आय का बड़ा अंश धनी एवं मध्यम वर्ग के पास पहुँच जाता है तथा निर्धन वर्ग को, जिसका प्रतिशत अधिक है, अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी आय प्राप्त नहीं होती। नौरोजी का विश्वास था कि किसी भी देश का आर्थिक विकास उत्पत्ति के साधनों पर निर्भर रहता है और इन साधनों को राष्ट्रीय आय के द्वारा बढ़ाया जा सकता है अत: राष्ट्रीय आय बढ़ाना आवश्यक है। उन्होंने बताया कि राष्ट्रीय आय की गणना करते समय तीन बातों को ध्यान में रखना चाहिए—

(अ) भारत की कुल वास्तविक भौतिक वार्षिक आय कितनी है?

(ब) सभी वर्ग के लोगों की न्यूनतम आवश्यकताएँ और साधारण आवश्यकताएँ क्या हैं?

(स) भारत की आय इन आवश्यकताओं के बराबर है, उससे कम अथवा अधिक।

(3) **बहिर्गमन अथवा निष्कासन सिद्धान्त** (The Drain Theory)—यह नौरोजी का प्रमुख सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के द्वारा उन्होंने यह सिद्ध किया कि भारत की गरीबी एवं आर्थिक अवनति का प्रमुख कारण भारतीय सम्पत्ति का विदेशों में जाना है अर्थात् भारत में जो भी उत्पादन किया जाता है, उसका अधिकांश भाग स्थायी रूप से इंग्लैण्ड को चला जाता है। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि अंग्रेजी राज भारत के लिए एक असहा आर्थिक बोझ सिद्ध हुआ है। उन्होंने बताया कि यदि किसी देश से एकत्रित आय को उसी देश में व्यय कर दिया जाता है तो आर्थिक क्रियाएँ सुचारु रूप से चलती रहती है लेकिन यदि उस आय को किसी अन्य देश में भेज दिया जाए तो वह आय में से एक स्थायी बहिर्गमन (Leakage) हो जाता है जिसका देश के आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसे उन्होंने भारत पर लागू करते हुए सिद्ध किया कि बढ़ते हुए प्रशासनिक व्यय को पूरा करने के लिए अंग्रेजों ने जो भारी कर भारतवासियों पर लगाये, उससे प्राप्त धन भारत में व्यय नहीं किया गया वरन् उसे इंग्लैण्ड भेज दिया गया। भारतीय धन को जिस स्रोत से बाहर भेजा जाता था, इसे स्पष्ट करते हुए नौरोजी कहते हैं कि यूरोपीय अधिकारियों की भारत में की गई बचत को देश से बाहर भेजा जाता था, इंग्लैण्ड में रहने वाले अफसरों के वेतन तथा पेशन का भारतीय खजाने से भुगतान किया जाता था और काफी मात्रा में धन का भारत से हस्तान्तरण किया जाता था। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत में पूँजी निर्माण की प्रक्रिया प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुई और यहाँ गरीबी घर करती चली गयी। भारत से बाहर पूँजी के गमन का अनुमान लगाते हुए नौरोजी कहते हैं कि सन् 1900 ई० तक भारत की आय में से 200 करोड़ पौंड की आय बाहर चली गयी।

नौरोजी के अनुसार धन का प्रवाह देश से बाहर होने से भारत को दो हानियाँ हुई, पहले तो यहाँ की पूँजी में निरन्तर कमी होती गयी और दूसरे, यहाँ के उद्योगों का विकास रुक गया। वास्तव में, नौरोजी विदेशी पूँजी के विरोधी नहीं थे, उन्होंने तो केवल इंग्लैण्ड की

TOUCH 'n' PASS

पूँजी का इसलिए विरोध किया क्योंकि यह भारत से ही एकत्रित की गयी पूँजी थी जिसके माध्यम से भारत का शोषण हो रहा था और फिर पूँजी और व्यापार के माध्यम से उन्होंने भारत पर आक्रमण भी किया।

(4) **ब्रिटिश शासन की आलोचना** (Criticism of British Rule)—नौरोजी ने अपने लेखों एवं भाषणों के माध्यम से ब्रिटिश शासन की कटु आलोचना की। उन्होंने बताया कि भारत का शासन विदेशी व्यक्तियों द्वारा चलाया जा रहा था जिसमें स्वयं भारतीयों को कोई प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया था। कुछ अंग्रेज लेखकों ने स्वयं इस सत्य को स्वीकार करते हुए कहा है कि भारतीयों को प्रशासन में उचित भाग दिया जाना चाहिए था। उन्होंने बताया कि भारत में जो आर्थिक संकट एवं आपत्तियाँ आयी हैं, उनकी जिम्मेदारी ब्रिटिश शासन पर ही है। उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि भारत का संकट प्राकृतिक विपत्तियों का परिणाम नहीं वरन् अंग्रेजों की भारत विरोधी नीति का परिणाम है जिसके अनुसार भारत को सदैव गुलाम बनाकर रखा जा सके। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि यदि ब्रिटिश काल में भारत ने कोई प्रगति नहीं की तो अंग्रेजों को भारत में रहने का कोई औचित्य नहीं है। यह पहले ही बताया जा चुका है कि उन्होंने भारत की निर्धनता का कारण ब्रिटिश शासन बताया।

मूल्यांकन (Evaluation)

दादाभाई नौरोजी के प्रवाह का निष्कासन सिद्धान्त की रानाडे ने आलोचना की है। उनका कथन था कि होम चार्जेज (Home Charges) उत्पादक कार्यों का मूल्य है, अत: उससे देश की निर्धनता नहीं बढ़ती। वस्तुत: दादाभाई की राय ही ठीक थी क्योंकि होम चार्जेज में अनेक राशियाँ ऐसी थीं जिनका भारत को कोई लाभ नहीं मिलता था।

दादाभाई नौरोजी का यह विचार भी गलत था कि रेलों ने भारत के धन में कोई वृद्धि नहीं की क्योंकि यदि यातायात से धन की वृद्धि हो जाती तो भारत शीघ्र ही धनी हो जाता। वहाँ दादाभाई के विचार प्रकृतिवादियों से मिलते हैं जोकि सही नहीं कहे जा सके।

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि भारत की आधुनिक आर्थिक विचारधारा में नौरोजी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनके विचार भारत की स्वतन्त्रता एवं राष्ट्रीयता से इतने अधिक प्रभावित हैं कि उन्हें राष्ट्रवाद का पिता कहा गया है। राष्ट्रीय आय की गणना प्रस्तुत कर उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया। व्यावहारिक अर्थशास्त्री के रूप में उनका नाम सदैव स्मरणीय रहेगा।

रमेश चन्द्र दत्त
(Ramesh Chandra Dutt)

रमेश चन्द्र दत्त का जन्म सन् 1848 में कलकत्ता के एक शिक्षित परिवार में हुआ। शिक्षा समाप्त करने के बाद दत्त सन् 1869 में इंडियन सिविल सर्विस के लिए चुन लिए गये। अन्य पदों पर कार्य करते हुए इन्हें सन् 1897 में वर्दवान संभाग का कमिश्नर बनाया गया। सरकारी सेवा के बाद आप विशेष रूप से कांग्रेस की ओर आकर्षित हुए तथा सन् 1899 में उन्हें कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया गया। इसके बाद उन्हें लन्दन विश्वविद्यालय में भारतीय इतिहास का प्रवक्ता नियुक्त किया गया जहाँ पर उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *'Economic History of India'* लिखी। उनका सन् 1909 में स्वर्गवास हो गया।

उनकी अन्य उल्लेखनीय पुस्तकें *'Famines in India (1900)'* तथा *'India in the Victorion Age'* है।

दत्त के आर्थिक विचार (Economic Thoughts of Dutt)

दत्त के आर्थिक विचारों को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा सकता है—

1. निर्धनता व अकाल की समस्या,
2. निर्धनता दूर करने के सुझाव,
3. भारतीय कृषि व भूमि प्रणाली,
4. भारतीय उद्योग का पतन,
5. धन का निष्कासन।

(1) **निर्धनता व अकाल की समस्या** (Problem of Poverty and Famine)—दत्त ने प्रमुख रूप से अपना ध्यान भारत की निर्धनता की समस्या के प्रति केन्द्रित किया। दत्त के समय से ही बंगाल को भयानक अकाल का सामना करना पड़ा। इन अकालों का विश्लेषण करते हुए उन्होंने बताया कि अकाल का प्रमुख कारण भारत की पिछड़ी हुई कृषि नीति है जिसके लिए ब्रिटिश शासन उत्तरदायी है। भारतीय व्यक्तियों के निम्न रहन-सहन की ओर अपना ध्यान आकर्षित करते हुए उन्होंने इसके लिए जनसंख्या का बढ़ा हुआ घनत्व, कृषि मूल्यों में गिरावट एवं भूमि प्रणाली इत्यादि को जिम्मेदार ठहराया। उन्होंने इस बात को स्वीकार किया कि वर्षा के अभाव के कारण अकाल उत्पन्न हुए किन्तु उसका प्रमुख कारण यह था कि किसान अत्यन्त निर्धन थे और इस निर्धनता को बढ़ावा दिया अंग्रेजी शासन की कर-नीति ने जिसके अनुसार ग्रेट ब्रिटेन तथा आयरलैंड की तुलना में भारतीय करदाता को 40 प्रतिशत अधिक कर देना पड़ता था। उन्होंने अंग्रेजों की कुटीर उद्योगों को नष्ट करने की नीति को घातक बताया। सरकारी खर्च का बढ़ना भी भारत की निर्धनता का कारण था।

TOUCH 'n' PASS

(2) **निर्धनता दूर करने के सुझाव** (Suggestions to Eradicate Poverty)—दत्त ने भारत की निर्धनता को दूर करने के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये जो इस प्रकार हैं—

(i) ग्रामीण क्षेत्रों की बेरोजगारी एवं अर्द्ध-बेकारी को दूर करने के लिए वहाँ **कुटीर उद्योगों** का विकास किया जाना चाहिए।

(ii) कृषि को विकसित करने के लिए **सिंचाई के साधनों** पर ध्यान दिया जाना चाहिए, ताकि किसानों की वर्षा पर निर्भरता को कम किया जा सके।

(iii) सरकार को **राजकीय व्यय** में मितव्ययिता करनी चाहिए और जो माल इंग्लैण्ड से क्रय किया जाता है, उसकी मात्रा कम कर देनी चाहिए।

(iv) सार्वजनिक **ऋणों पर ब्याज** का भुगतान जिस दर पर किया जाता है, उसे कम किया जाना चाहिए जिससे भारतीय धन का विदेशों में प्रवाह कम किया जा सके।

(v) तात्कालिक औद्योगिक क्षेत्र में, मिल उद्योगों पर जो उत्पादन कर लगाया जाता था, दत्त ने उसे हटा लेने की माँग की। उन्होंने यह विचार भी प्रकट किया कि इंग्लैण्ड में जो व्यय किया जाता है, उसका एक निश्चित भाग वहाँ की सरकार द्वारा सहन किया जाना चाहिए। उन्होंने यह भी माँग की कि भारतीय सिविल सर्विस में भारतीयों को अधिक मात्रा में रोजगार दिया जाना चाहिए। भूमि पर केवल लगान के रूप में ही कर लिया जाना चाहिए तथा अन्य समस्त कर भूमि पर से हटा लिए जाने चाहिए।

(3) **भारतीय कृषि व भूमि प्रणाली** (Indian Agriculture and Land System)—दत्त ने भारतीय किसान और कृषि की गिरी हुई दशा के कारणों का सही चित्रण किया। देश में ग्रामीण बेकारी, निर्धनता तथा अकाल आदि के लिए उन्होंने देश की मालगुजारी प्रथा तथा कर प्रणाली को उत्तरदायी बताया। खेती में सिंचाई की तथा पूँजी एवं साख का अभाव कृषि को और अधिक अलाभकारी बनाते हैं।

भूमि प्रणाली के सम्बन्ध में भी दत्त ने महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किये। इस क्षेत्र में वे **स्थायी बन्दोबस्त** (Permanent Settlement) के पक्ष में थे। उनके अनुसार भूमि पर कर लगने वाला उपकर 6 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए जिसका प्रयोग किसानों के लाभ के लिए होना चाहिए। वे चाहते थे कि जीमंदारों के द्वारा जो लगान वसूल किया जाता है, उसकी दर उपज की 15 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। जहाँ लगान की वसूली सरकार द्वारा की जाती है, उसकी दर उपज की 20 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए।

(4) **भारतीय उद्योग का पतन** (Downfall of Indian Industry)—दत्त ने ब्रिटिश काल में भारत के उद्योगों के पतन का सही वर्णन किया है। उनके अनुसार ब्रिटिश शासन के पूर्व भारत अपने उद्योग-धन्धों के लिए पूरे विश्व में विख्यात था और भारत का व्यापार विश्व के सभी सभ्य देशों में होता था परन्तु भारत के उद्योगों का विनाश ब्रिटिश शासन के साथ ही शुरू हुआ। ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारतीय वस्तुओं को अत्यन्त सस्ते दाम पर खरीदकर विदेशों में ऊँचे दाम में बेचकर अत्यधिक लाभ कमाती थी। यही नहीं, अपने राजनीतिक अधिकार का उपयोग शोषण के लिए प्रयोग करती थी।

जब ब्रिटेन के उद्योग-धन्धे चल गये, तब शोषण का दूसरा चरण प्रारम्भ हुआ। उस समय से ब्रिटिश शासन ने भारत को कच्चे माल का उत्पादक और तैयार माल का खरीददार बनाने का निश्चय किया परन्तु इसके लिए वहाँ के कुटीर उद्योगों का नष्ट होना आवश्यक था। शासन की नीति से क्रमशः भारतीय उद्योग नष्ट हुए और भारत निर्यात के स्थान पर आयात करने वाला बन गया। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय कारीगर फिर से खेती पर निर्भर हो गये और भारत एक उद्योग-प्रधान देश से कृषि-प्रधान देश हो गया।

दत्त ने सूती वस्त्र के उद्योग का जो वर्णन किया है, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने लिखा है कि "कताई और बुनाई भारत में 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक राष्ट्रीय उद्योग था। चरखा और करघा देश भर में चलते थे और इसमें अतिशयोक्ति नहीं है कि लगभग आधी नारी-जनसंख्या अपने श्रम से अपने पतियों और पिताओं की सहायता करती थी परन्तु जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अधिकार हुआ, तब दशा उलट गयी। कम्पनी ने ब्रिटिश उद्योगों को चलाने के लिए भारतीय उद्योग को नष्ट किया। मुख्य उद्देश्य भारत को कच्चे माल का उत्पादक एवं ब्रिटिश माल पर आश्रित बनाना था।"

दत्त ने दिखा है, उद्योगों के विनाश का क्रम नवीन योजना में चलता रहा। सन् 1813 में कलकत्ता, लन्दन को 2 मिलियन पौण्ड का सूती वस्त्रादि निर्यात करता था किन्तु सन् 1830 में कलकत्ता ने 2 मिलियन पौण्ड का सूती वस्त्र का आयात किया। 'ब्रिटिश सूत का आयात भारत में सन् 1833 में शुरू हुआ। सन् 1824 में कुल 1,21,000 पौण्ड वजन का सूत आया। सन् 1828 में यह मात्रा 40 लाख पौण्ड वजन (lbs) हो गयी।"

TOUCH 'n PASS

(5) **धन का निष्कासन** (Drain of Wealth)—भारत से धन निष्कासन के सम्बन्ध में **श्री रमेशचन्द्र दत्त** ने लॉर्ड कर्जन को लिखे गये अपने खुले पत्र में लिखा था कि "विश्व में सबसे महँगी विदेशी सरकार भारत में है तथा यहाँ के राजस्व का एक-तिहाई देश में व्यय किये जाने के बदले बाहर भेज दिया जाता है।"

रमेशचन्द्र दत्त इस अवधि (1757-1839) में वार्षिक निकास 30 मिलियन पॉण्ड स्टर्लिंग के लगभग बताते हैं। उनका कथन है कि 19वीं शताब्दी के अन्त में भू-राजस्व 1.75 करोड़ पॉण्ड था और उस वर्ष (1900 में) भारत से 1 करोड़ पॉण्ड की राशि रेलों की पूँजी और अन्य ऋणों के ब्याज तथा सिविल एवं सैन्य खर्चों के बदले इंग्लैण्ड भेजी गयी। वार्षिक निकास 1835-39 में 27.4 मिलियन पॉण्ड तथा 1902-03 तक 34 मिलियन पॉण्ड तक पहुँच गया।

इस प्रकार दत्त ने आर्थिक क्षेत्र में व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत किये। दत्त पहले अर्थशास्त्री थे जिन्होंने भारतीय आर्थिक इतिहास पर सम्पूर्ण रूप से विचार किया। कुटीर उद्योगों के विकास के लिए उन्होंने जो विचार व्यक्त किये, वे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने यह सिद्ध किया कि आर्थिक एवं राजनीतिक नीतियों में पारस्परिक निर्भरता होती है। यद्यपि उन्होंने प्रकृतिवादी नीति का समर्थन किया है परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वे राजकीय हस्तक्षेप के विरुद्ध थे।

प्र.4. डॉ० बी०आर० अम्बेडकर और डॉ० राम मनोहर लोहिया के आर्थिक विचारों का वर्णन कीजिए।
Describe the economic thoughts of Dr B.R. Ambedkar and Dr Ram Manohar Lohia.

उत्तर

डॉ० बी०आर० अम्बेडकर के आर्थिक विचार
(Economic Thoughts of Dr B.R. Ambedkar)

भीम राव अम्बेडकर को बाबा साहेब अम्बेडकर के नाम से भी जाना जाता है, वह एक प्रमुख कार्यकर्ता और समाज सुधारक थे जिन्होंने दलितों के उत्थान के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया। वह 'भारत के संविधान' के मुख्य वास्तुकार थे और उन्होंने 1935 में 'भारतीय रिजर्व बैंक' की स्थापना में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उन्हें अर्थशास्त्र राजनीति और अनुसन्धान के क्षेत्र में उनके योगदान के लिए भारत रत्न से सम्मानित किया गया था।

चूँकि डॉ०बी०आर० अम्बेडकर ने एक अर्थशास्त्री के रूप में अपना करियर शुरू किया और उस समय के कुछ सबसे महत्त्वपूर्ण आर्थिक वार्तालापों में योगदान दिया, उन्हें काफी हद तक भारतीय संविधान के पिता के रूप में माना जाता है। उन्होंने संयुक्त राज्य अमेरिका में कोलम्बिया विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में पी-एच०डी० किया और दूसरा लन्दन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से, जिससे वह अपने समय के सुशिक्षित अर्थशास्त्रियों में से एक बन गए।

मौद्रिक अर्थशास्त्र में योगदान (Contribution in Monetary Economics)

अम्बेडकर की लन्दन पी-एच०डी० थीसिस जिसका शीर्षक था "रुपये की समस्या" मार्च, 1923 में प्रस्तुत की गई थी क्योंकि यह रुपये के प्रशासन पर अधिक केन्द्रित थी। उस समय स्वर्ण विनिमय मानक के सापेक्ष गुणों के बारे में बहुत चर्चा हुई थी। सोने का मानक परिवर्तनीय मुद्रा के एक रूप को सन्दर्भित करता है जिसमें सोने के सिक्कों का उत्पाद कागज के पैसे के साथ जारी किया जाता है, जो सोने में पूरी तरह से प्रतिदेय होने की गारण्टी है। इसके विपरीत, स्वर्ण विनिमय मानक के तहत्, केवल कागजी मुद्रा जारी की जाती है, जहाँ इसे सोने के साथ कुछ निश्चित दरों पर विनिमय योग्य रखा जाता है और सरकारी अधिकारियों ने सोने के मानक का पालन करने वाले देशों के विदेशी मुद्रा भण्डार के साथ इसका समर्थन किया है।

जॉन मेनार्ड कीन्स (प्रसिद्ध अंग्रेजी अर्थशास्त्री) के सुझाव के विपरीत, कि भारत को सोने के विनिमय मानक के सन्दर्भ में अधिक अपनाना चाहिए, अम्बेडकर ने स्वर्ण मानक के पक्ष में अधिक जोर दिया। जैसा कि उन्होंने तर्क दिया कि एक स्वर्ण विनिमय मानक ने जारीकर्ता को धन की आपूर्ति को नियन्त्रित करने और मौद्रिक इकाई की स्थिरता के लिए खतरा पैदा करने की अधिक स्वतन्त्रता की अनुमति दी। भारतीय मुद्रा, 'रुपया' और सार्वजनिक वित्त पर अम्बेडकर के विचार उस समय की उग्र आर्थिक कठिनाइयों की प्रतिक्रियाओं पर आधारित थे और उनके सभी विश्लेषण इस समय अवधि में लागू नहीं होते हैं। लेकिन कुछ सिद्धान्त जो उन्होंने प्रतिपादित किए जैसे कि मूल्य स्थिरता और राजकोषीय विवेक आज भी प्रासंगिक हैं।

सार्वजनिक वित्त में योगदान (Contribution to Public Finance)

अम्बेडकर का प्रमुख कार्य "ब्रिटिश भारत में प्रान्तीय वित्त का विकास" शीर्षक से उनका पी-एच०डी० शोध प्रबन्ध था, जिसमें मुख्य रूप से केन्द्र और प्रान्त के बीच वित्तीय सम्बन्धों पर जोर दिया गया था। डॉ० अम्बेडकर ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के वित्त का समालोचनात्मक विश्लेषण किया और सार्वजनिक वित्त में हो रहे महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों के बारे में सभी जानकारी सामने रखी और

TOUCH 'n PASS

आगे रेखांकित किया कि प्रान्तों की वित्तीय स्थिरता को कम नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि यह खतरे में पड़ सकता है। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि प्रान्तीय घाटे को जारी रखना उचित नहीं है, जिन्हें सीधे जनता या केन्द्र सरकार से उधार लेकर वित्तपोषित किया जाता है। अम्बेडकर के आगे तर्क दिया कि एक प्रान्त की प्रशासनिक इकाइयों को स्वतन्त्र बनाने के लिए, उन्हें पूरी तरह से अपने स्वयं के संसाधनों से खुद को वित्तपोषित करना होगा।

सार्वजनिक वित्त के क्षेत्र में अम्बेडकर के अग्रणी कार्य ने एक अन्तर्दृष्टि प्रदान की और सहकारी केन्द्र-राज्य वित्तीय सम्बन्धों और सार्वजनिक वित्त के शासन के निर्माण के लिए एक उपकरण के रूप में कार्य किया। वफादारी, ज्ञान और अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित नैतिक मानकों का पालन करने पर उनका आग्रह वर्तमान काल में भी प्रासंगिक बना हुआ है।

कृषि अर्थशास्त्र में योगदान (Contribution in Agricultural Economics)

सभी अकादमिक प्रकाशनों के आधार पर, एक पेपर को सबसे अच्छा माना गया है और समकालीन बहस के लिए इसकी प्रासंगिकता "स्मॉल होल्डिंग्स इन इण्डिया एण्ड देयर रेमेडीज (1918)" है जो इण्डियन इकोनॉमिक सोसाइटी के जर्नल में प्रकाशित हुई थी। अम्बेडकर ने उस पत्र में छोटी जोत की विभिन्न समस्याओं और उनके विखण्डन पर विचार किया। उन दिनों जिन जोतों पर विचार किया जा रहा था, उन्हें समेकित करने और बढ़ाने के कई प्रस्तावों की समीक्षा करने के बाद, अम्बेडकर ने निष्कर्ष निकाला कि इस तरह के प्रस्ताव मौलिक रूप से त्रुटिपूर्ण थे।

अम्बेडकर ने तर्क दिया कि भूमि को उत्पादन के उन कारकों में से एक माना जाता था जो फसलों के उत्पादन के लिए आवश्यक होते हैं और जब तक कि इसका उत्पादन के अन्य कारकों के साथ इष्टतम अनुपात में उपयोग नहीं किया जाता है, क्योंकि यह अक्षम होगा। नतीजतन, भूमि जोत तय नहीं होनी चाहिए, लेकिन आदर्श रूप से उत्पादन के अन्य कारकों की उपलब्धता के साथ बदलनी चाहिए जैसे कि कृषि उपकरणों की उपलब्धता के साथ बढ़ना और बाद वाले के साथ कम होना।

अम्बेडकर ने आगे जोर दिया कि भूमि जोत बढ़ाने के किसी भी प्रकार के प्रस्ताव पर केवल तभी विचार किया जा सकता है जब यह दिखाया जा सके कि देश भर में कृषि उपकरणों की पहुँच मुख्य रूप से बढ़ी है। डेटा को इस तर्क का खण्डन करने के लिए प्रस्तुत किया गया था कि पूँजीगत स्टॉक में वास्तव में गिरावट आई थी। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि वास्तविक समस्या स्टॉक पूँजी को बढ़ाने में है, जो तभी सम्भव होगा जब अर्थव्यवस्था में अधिक बचत होगी।

नतीजतन, अम्बेडकर ने औद्योगीकरण को भारत की कृषि समस्या का उत्तर माना।

अम्बेडकर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भारत का औद्योगीकरण देश की कृषि समस्याओं का सबसे अच्छा समाधान है। औद्योगीकरण के संचयी प्रभाव, अर्थात् कम दबाव और पूँजी और पूँजीगत वस्तुओं की बढ़ती मात्रा, जबरदस्ती जोत बढ़ाने की आर्थिक आवश्यकता पैदा करेगी और भूमि पर प्रीमियम को भी नष्ट कर देगी, इसके उप-विभाजन और विखण्डन के लिए कुछ अवसरों को जन्म देगी।

भारत के समग्र आर्थिक विकास के लिए रणनीतियाँ (Strategies for India's Overall Economic Development)

डॉ० अम्बेडकर जनता के शोषण पर मार्क्स के विचारों से सहमत थे और मानते थे कि भारत के आर्थिक विकास की यात्रा गरीबी और असमानताओं के उन्मूलन और अमीरों द्वारा शोषण के अन्त के माध्यम से होनी चाहिए। फिर भी, वह एक आर्थिक व्यवस्था के रूप में साम्यवाद का समर्थन नहीं करेंगे। अपने निबन्ध, बुद्ध और कार्ल मार्क्स में, उनका तर्क है कि आर्थिक मकसद, जैसा कि मार्क्स द्वारा तैयार किया गया है, सभी मानवीय गतिविधियों का एकमात्र कारण नहीं हो सकता है, जिसके परिणामस्वरूप शोषण होता है, जो विशेष रूप से भारत में धार्मिक या सामाजिक हो सकता है। अम्बेडकर लोकतन्त्र और मानवाधिकारों के प्रबल समर्थक थे और इसिलए साम्यवाद में तानाशाही और अराजकता की प्रवृत्ति से सहमत नहीं थे। उन्होंने संविधान के सिद्धान्तों के भीतर सुधार की भी वकालत की और इसलिए मार्क्स के एक राज्यविहीन समाज के विचार को खारिज कर दिया। अम्बेडकर ने मार्क्स के अधिनायकवादी दृष्टिकोण के विपरीत देश के आर्थिक विकास को चलाने में राज्य की भूमिका का समर्थन किया।

डॉ० बी०आर० अम्बेडकर एक बौद्धिक अर्थशास्त्री थे, जिनके पास जटिल समस्याओं का व्यावहारिक समाधान था और उन्होंने हमेशा अपनी नीतियों के निर्माण में लोगों के कल्याण को व्यक्त किया। उनके कई विचारों और दूरदृष्टि को भले ही उचित मान्यता नहीं मिली हो, लेकिन समग्र रूप से अर्थशास्त्र के क्षेत्र में उनका योगदान इस महानता और बुद्धि के प्रमाण है।

TOUCH 'n' PASS

डॉ० राम मनोहर लोहिया के आर्थिक विचार
(Economic Thoughts of Dr Ram Manohar Lohia)

डॉ० लोहिया भारत में स्वतन्त्रता काल के दौरान एक समाजवादी राजनीतिक नेता और स्वयं विचारकों में से एक थे। उन्होंने 10 साल की उम्र में सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लिया। लोहिया एक उत्साही नेता और विपुल लेखक थे जहाँ उन्होंने भारतीय राजनीतिक अर्थव्यवस्था के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पहलुओं का गहराई से विश्लेषण किया और इन सभी पहलुओं की नए सिरे से व्याख्या की।

डॉ० लोहिया का जन्म 23 मार्च, 1910 को उत्तर प्रदेश के फैजाबाद जिले के अकबरपुर में हुआ था। उन्होंने कला में अपनी स्नातक की डिग्री पूरी की और "भारत में नमक कराधान" विषय पर प्रोफेसर वर्नर सोम्बर्ट की देख-रेख में बर्लिन, जर्मनी में हम्बोल्ट विश्वविद्यालय में डॉक्टरेट की पढ़ाई करने का फैसला किया, जो मुख्य रूप से सामाजिक-आर्थिक सिद्धान्त से सम्बन्धित था। जो निम्न प्रकार हैं—

आर्थिक विचारों में योगदान (Contribution in Economic Thoughts)

आर्थिक विचार और कार्य में डॉ० लोहिया का योगदान व्यक्ति को आर्थिक असमानता की बेड़ियों से मुक्त करने की आवश्यकता से आया है।

डॉ० लोहिया व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की वकालत करते थे। वे कहते थे कि पुरुष समान और स्वभाव से स्वतन्त्र हैं। वह जर्मन दार्शनिकों और विद्वानों से बहुत प्रभावित थे और उनका मानना था कि स्वतन्त्रता और समानता व्यक्ति की आवश्यक विशेषताएँ थीं।

डॉ० लोहिया आगे कहते थे कि जीवन के कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जो राज्य, सरकार, संगठनों और समूहों के नियन्त्रण से मुक्त होने चाहिए। एक व्यक्ति को किसी भी राजनीतिक दल में कोई पेशा और सदस्यता चुनने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि राज्य, सरकार या राजनीतिक दल को व्यक्तियों के निजी जीवन में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। साथ ही, लोहिया पिछड़े लोगों के लिए स्वतन्त्रता के एक विज्ञापन समर्थक थे और एक निश्चित अवधि के लिए पिछड़े लोगों को तरजीह देना चाहते थे।

औद्योगीकरण और मशीनों पर विचार (Thoughts on Industrialization and Machines)

डॉ० लोहिया ने कहा कि औद्योगीकरण, जो बड़े उद्योगों पर आधारित था, समस्याग्रस्त होगा और इससे रोजगार की कोई समस्या हल नहीं होगी। उन्होंने अपने विचार व्यक्त किए कि पूँजीवादी और कम्युनिस्ट दोनों ही औद्योगीकरण के माध्यम से अर्थव्यवस्था की प्रगति में विश्वास करते हैं, जहाँ पूँजीपति निजी सम्पत्ति को प्रोत्साहित करते हैं जबकि कम्युनिस्ट सार्वजनिक सम्पत्ति को प्रोत्साहित करते हैं।

दोनों प्रणालियाँ बड़ी और भारी मशीनों और युक्तिकरण की वकालत करती हैं, जिसके परिणामस्वरूप बेरोजगारी होती है।

उन्होंने यह भी सहमति व्यक्त की कि बड़े उद्योग राष्ट्र को उपयोगी मूल्यों की एक पूरी शृंखला प्रदान करते हैं और यह भी चित्रित किया कि उनके पास विनाशकारी क्षमताएँ भी हैं जो आबादी की आजीविका को प्रभावित कर सकती है। डॉ० लोहिया ने छोटी मशीन प्रौद्योगिकी के उपयोग का सुझाव दिया, जिसे कम पूँजी लागत पर उपलब्ध कराया जा सकता है।

पर्यावरण सम्बन्धी चिन्ताओं पर विचार (Considerations of Environmental Concerns)

देश भर में उद्योगों में वृद्धि के साथ, शुरू में डॉ० लोहिया ने पर्यावरणीय खतरों और आधुनिक औद्योगिक उत्पादन से उत्पन्न होने वाली समस्याओं पर अपनी चिन्ता व्यक्त की। आधुनिक औद्योगीकरण के लिए भारी मात्रा में पूँजी और सस्ते श्रम की आवश्यकता होगी, जिसकी आपूर्ति किसानों, ग्रामीण, कारीगरों और अन्य वर्गों के विनाश, और बेदखली के माध्यम से सुनिश्चित की जाती है। इस तरह के औद्योगीकरण के लिए बड़े पैमाने पर प्राकृतिक संसाधनों के निष्कर्षण की आवश्यकता होती है, जिससे पर्यावरण समस्याएँ पैदा होती हैं।

चार स्तम्भ राज्य की अवधारणा एवं आर्थिक और राजनीतिक शक्तियों का विकेन्द्रीकरण (The Concept of the Four Pillar State and the Decentralization of Economic and Political Powers)

डॉ० लोहिया का आर्थिक और राजनीतिक शक्तियों के विकेन्द्रीकरण पर सकारात्मक विश्वास है। भारतीय प्रशासन की समस्या का समाधान करने के लिए, उन्होंने चार-स्तम्भ वाले राज्य की अवधारणा का प्रस्ताव रखा जो शक्तियों के विभाजन के सिद्धान्त

TOUCH 'n PASS

पर आधारित है, जहाँ वे कहते हैं कि यह राज्य के चार अंगों का गठन करता है जैसे कि गाँव, जिला, प्रान्त और केन्द्र सम्प्रभु शक्तियों के साथ।

राज्य के ये चारों अंग संगठित रूप से काम करेंगे और एक-दूसरे पर आश्रित होकर काम करेंगे। डॉ० लोहिया का उल्लेख है कि सम्प्रभु शक्तियों को केवल केन्द्र नहीं होना चाहिए। डॉ० लोहिया का मानना है कि भारतीय प्रशासन का सबसे बड़ा दोष आर्थिक और राजनीतिक शक्तियों का केन्द्र या संघात्मक इकाइयों में संकेन्द्रण है और यह सुझाव देता है कि चार-स्तम्भ वाले राज्य के चार अंगों में राजनीतिक और आर्थिक शक्तियों का विकेन्द्रीकरण।

उन्होंने आगे इस बात पर जोर दिया कि जब तक विकेन्द्रीकरण नहीं किया जाता है, लोकतान्त्रिक संस्थाएँ फल-फूल नहीं सकतीं और प्रशासन में लोगों की सक्रिय भागीदारी को वास्तविकता में नहीं बदला जा सकता है। आर्थिक शक्ति का संकेन्द्रण असमानता को जन्म देगा और यह पूँजीवाद की एक विशिष्ट विशेषता है जहाँ आर्थिक शक्ति प्रभावशाली लोगों के हाथों में केन्द्रित रहती है।

प्र.5. पण्डित दीनदयाल उपाध्याय का जीवन परिचय दीजिए तथा इनके आर्थिक विचारों का वर्णन कीजिए।
Give the life sketch of Pt. Deendayal updhlyay and describe their economic thoughts.

उत्तर

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय का जीवन परिचय
(Life Sketch of Pt. Deendayal Upadhyay)

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय जी का जन्म 25 सितम्बर, 1916 को मथुरा जिले के 'नगला चन्द्रभान' ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम भगवती प्रसाद उपाध्याय था, जो रेलवे में जलेसर रोड स्टेशन के सहायक स्टेशन मास्टर थे। इनकी माता का नाम रामप्यारी था, जो धार्मिक प्रवृत्ति की गृहस्थ महिला थीं।

संघ के माध्यम से ही उपाध्याय जी राजनीति में आये। 21 अक्टूबर, 1951 को डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी की अध्यक्षता में 'भारतीय जनसंघ' की स्थापना हुई। गुरुजी (गोलवलकर जी) की प्रेरणा इसमें निहित थी। 1952 में इसका प्रथम अधिवेशन कानपुर में हुआ। उपाध्याय जी इस दल के महामन्त्री बने। इस अधिवेशन में पारित 15 प्रस्तावों में से 7 उपाध्याय जी ने प्रस्तुत किये। डॉ० मुखर्जी ने उनकी कार्यकुशलता और क्षमता से प्रभावित होकर कहा—"यदि मुझे दो दीनदयाल मिल जाएँ, तो मैं भारतीय राजनीति का नक्शा बदल दूँ।"

1967 तक उपाध्याय जी भारतीय जनसंघ के महामन्त्री रहे। 1967 में कालीकट अधिवेशन में उपाध्याय जी भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। वह मात्र 43 दिन जनसंघ के अध्यक्ष रहे। 10/11 फरवरी, 1968 की रात्रि में मुगलसराय स्टेशन पर उनकी हत्या कर दी गई।

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय एक महान दार्शनिक, समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री, उच्च कोटि के चिन्तक, चिचारक और लेखक थे। इस रूप में उन्होंने श्रेष्ठ और सन्तुलित रूप में विकसित राष्ट्र की कल्पना की थी। इन दिनों पण्डित दीनदयाल उपाध्याय पर निरन्तर चर्चा हो रही है। आर्थिक विकास को लेकर विद्वानों ने अलग-अलग विचार प्रतिपादित किए हैं। प्रत्येक विचारधारा राष्ट्रीय आर्थिक उन्नति के मूल में खुद को प्रस्तुत करती है। आजादी के बाद भारत में जिस तेजी के साथ अर्थनीति, आर्थिक विषयों, राजस्व प्रणाली और अर्थव्यवस्था की बातें चलीं, निश्चित ही एक नवस्वतन्त्र देश के लिए इन बातों की एक स्वभाविक गति थी। मगर भारतीय अर्थनीति के निर्धारण में पश्चिमी दर्शन के पूँजीवाद या समाजवाद के दो ध्रुवों पर चर्चा चली। पहला पूँजीवाद जिसमें व्यक्ति को पूँजी लगाने, उत्पादन करने आदि की निर्बाध छूट है। मगर इसमें व्यक्ति के आर्थिक शोषण की गुंजाइश है। दूसरा चिन्तन समाजवाद है जिसमें उत्पादन एवं विवरण के साधनों पर राज्य का नियन्त्रण रहता है, जिसमें कहा यह जाता है कि यह नियन्त्रण समाज का है। मगर समाजवादी व्यवस्था में व्यक्ति की गरिमा और उसके विशेषज्ञ होने की उपेक्षा होती है। जब पण्डित जवाहर लाल नेहरू समाजवाद की नीतियों के सहारे देश की दशा-दिशा तय कर रहे थे, तब भारतीय जनसंघ के नेता दीनदयाल उपाध्याय न सिर्फ विरोध कर रहे थे बल्कि भारत एवं भारतीयता के अनुकूल वैचारिकी दर्शन की पृष्ठभूमि तैयार कर रहे थे। उनका मानना था कि भारतीय विचार नहीं होने के कारण भारत की समस्याओं से निपटने और समाधान देने में अक्षम है। भारतीयता को चलाने के लिए भारतीय दर्शन ही कामयाब हो सकता है। प्रश्न राजनीति का हो या अर्थव्यवस्था का अथवा समाज की विविध जरूरतों का, उन्होंने मानव मात्र से जुड़े प्रत्येक प्रश्न की समाधानयुक्त विवेचना अपने लेखों में की है।

TOUCH 'n' PASS

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय के आर्थिक विचार
(Economic Thoughts of Pt. Deendayal Upadhyay)

मनुष्य के सर्वांगीण विकास की कल्पना के लिए दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्म मानववाद पर आधारित एकात्म-अर्थनीति का प्रतिपादन किया। एकात्म अर्थनीति का तात्पर्य ऐसी अर्थनीति से है जो एकांकी आर्थिक दृष्टिकोण तक सीमित न रहकर मानव एवं मानवेत्तर दृष्टि से पारस्परिक एकात्म सम्बन्धों तक जीवन को सम्बद्ध एवं सुखी बनाने के समग्र पहलुओं का दिशा-निर्देशन करती है। पण्डित दीनदयाल उपाध्याय जी का आर्थिक चिन्तन एकात्म मानववाद से निष्पादित है, जिसमें व्यक्ति एकांकी नहीं है बल्कि सम्पूर्ण की एक इकाई है। उनके अनुसार व्यक्ति मन, वृद्धि, आत्मा एवं शरीर का एक समुच्चय है। अत: मानव के सन्दर्भ में इन चारों को विभाजित करके नहीं देखा जा सकता।

आर्थिक दृष्टि से दीनदयाल जी तीन बातों को महत्त्वपूर्ण मानते थे। 1. उत्पादन को बढ़ाना, 2. समान वितरण करना, 3. संयमित उपभोग, इन तीनों को मिलाकर उन्होंने एक नाम दिया अर्थायाम।

इन तीनों में सन्तुलन स्थापित करने में राज्य का दायित्व क्या हो या नहीं हो, ऐसा कहना उचित नहीं है। उनका मानना था कि आर्थिक क्षेत्र में सामान्य नियोजन, निर्देशन, नियमन और नियन्त्रण का दायित्व राज्य सरकार पर होना चाहिए।

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय जी के आर्थिक विचारों को निम्नांकित क्षेत्रों में देखा जा सकता है—

1. **आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण**—पण्डित जी विकेन्द्रित व्यवस्था के पक्षधर थे। आर्थिक सत्ता का केन्द्रीकरण आर्थिक लोकतन्त्र के विरुद्ध है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में आर्थिक केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति होती है। इसमें आर्थिक शोषण होता है। जबकि समाजवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन की प्रणाली पर राज्य का नियन्त्रण होता है। उनका मानना था कि दोनों ही व्यवस्थाएँ व्यक्ति के प्रजातन्त्रीय अधिकार और स्वभाविक विकास के प्रतिकूल हैं। अत: हमें विकेन्द्रीकरण के साथ-साथ शक्तियों के विकेन्द्रीकरण पर भी विचार करना होगा।
2. **उद्योगों का राष्ट्रीयकरण**—पण्डित दीनदयाल जी मानते हैं कि आर्थिक क्षेत्र में सामान्य नियोजन, निर्देशन, नियमन और नियन्त्रण का दायित्व राज्य सरकार पर होना चाहिए इसलिए उन्होंने राज्य को ही दायित्व दिया कि कौन-से उद्योग-धन्धे राज्य के अधीन होने चाहिए। भारी उद्योगों का राष्ट्रीयकरण होना चाहिए, रक्षा उद्योग, भारी पूँजी वस्तु उद्योग राष्ट्र के अधीन हों, परन्तु भारत के लिए छोटे-छोटे उद्योग ज्यादा उपयोगी हैं। बड़े उद्योगों में केन्द्रीकरण की प्रकृति पायी जाती है जबकि छोटे उद्योग भारतीय श्रमिक की पारस्परिक कुशलता स्थानीय आवश्यकताओं आदि की शर्तें पूरी करते हैं। परन्तु बड़े व छोटे उद्योगों का तालमेल और गठबन्धन भारतीय अर्थव्यवस्था में जरूरी है इसलिए दीनदयाल जी ने क्षेत्र निर्धारण की बात कही और इस सन्दर्भ में उनका कहना था कि लघु उद्योग उपभोग वस्तुएँ बनाए और बड़े पैमाने के उद्योग उत्पादन वस्तुएँ बनाए जिससे दोनों प्रकार के उद्योग रह सकें।
3. **कृषि विकास कार्यक्रम**—कृषि विकास के कार्यक्रमों पर पण्डित जी का ध्यान गहनता से था। उनके अनुसार कृषि विकास के कार्यक्रमों को दो हिस्सों में बाँट सकते हैं—1. प्राविधिक, 2. संस्थागत। प्राविधिक कार्यक्रम के अन्तर्गत खेती की पद्धति में आधुनिकतम तकनीक का प्रयोग करने में हमें संकोच नहीं होनना चाहिए। मगर मशीन का प्रयोग करते समय हमें यह संयम बरतना होगा कि उससे किसान के हाथ बेरोजगारी न लगे। जबकि संस्थागत कार्यक्रम के अन्तर्गत भूमि सुधार, सहकारिता, कृषि क्षेत्र के लिए पूँजी आदि जुटाने की संस्थाएँ विकसित करने पर पण्डित जी ने विचार व्यक्त किये थे।
4. **आर्थिक स्वतन्त्रता**—पण्डित दीनदयाल उपाध्याय जी 'हर हाथ को काम' के सिद्धान्त को प्रजातन्त्र की रीढ़ मानते थे। उनके अनुसार काम जीविकोपार्जन हो तथा व्यक्ति को उसे चुनने की स्वतन्त्रता हो। यदि काम के बदले राष्ट्रीय आय का न्यायोचित भाग उसे नहीं मिलता तब उस काम की गिनती वेगार में होगी। इस दृष्टि से न्यूनतम वेतन न्यायोचित वितरण तथा किसी-न-किसी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था आरवश्यक हो जाती है।
5. **अन्त्योंदयता की परिकल्पना**—उनके अनुसार शासन का उद्देश्य अन्तयोदय की परिकल्पना के अनुरूप होना चाहिए। उनका मानना था कि किसी भी देश का आर्थिक विकास तभी सम्भव है जब हम समाज के अन्तिम छोर पर खड़े व्यक्ति का विकास कर सकें। अर्थात् समाज के निचले पायदान पर जो व्यक्ति है उसके उत्थान का प्रयास प्राथमिकता होनी चाहिए।

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय की एकात्म अर्थनीति मूलत: राष्ट्र की एकता, सुरक्षा, प्रत्येक व्यक्ति को न्यूनतम जीवन स्तर का आश्वासन, प्रत्येक व्यक्ति को आजीविका के अवसर उपलब्ध कराने की आवश्यकता, उत्पादन साधनों के अनुसार औद्योगिकी के

TOUCH 'n' PASS

विकास की आवश्यकता तथा प्राकृतिक साधनों का मानवीय दृष्टि और आवश्यकतानुसार दोहन, निरपेक्ष और सापेक्ष रूप से अभिव्यक्त है। इस दृष्टि से वह व्यक्ति को सशक्त देखना चाहते हैं और राष्ट्र को भी। इन दोनों के मूल में मानव को केन्द्र मानते हुए समस्त मानव जाति के कल्याण की दृष्टि दीनदयाल जी के चिन्तन में दिखाई पड़ती है।

प्र.6. अमर्त्य सेन के आर्थिक विचारों का वर्णन कीजिए।

Describe the economic thoughts of the Amartya Sen.

उत्तर

अमर्त्य सेन के आर्थिक विचार
(Economic Thoughts of Amartya Sen)

अमर्त्य सेन एक मानव कल्याणवादी अर्थशास्त्री हैं और उन्होंने अर्थशास्त्र को मानवीय चेहरा प्रदान करने का प्रयास किया है। संक्षेप में, अमर्त्य सेन का कल्याणकारी अर्थशास्त्र में निम्नलिखित योगदान रहा हैं—

1. लोकतन्त्र में विश्वास (Faith in Democracy)

डॉक्टर सेन की विचारधारा से यह स्पष्ट पता चलता है कि उनकी लोकतन्त्र में प्रबल आस्था है। उनका विचार है कि राजतन्त्र के द्वारा ही भारत जैसे विकासशील देशों का हित हो सकता है, पर लोकतन्त्र में राजसत्ता को और दूरगामी दृष्टि रखनी चाहिए। डॉक्टर सेन इस बात से खुश हैं कि भारत में धर्म जाति एवं वर्ग विभेदना होते हुए भी यहाँ लोकतान्त्रिक भक्तियों ने पृथक्वादी तत्त्वों को परास्त किया है। डॉक्टर सेन का अभिमत यह है कि प्रजातन्त्र में भुखमरी और अकाल नहीं आ सकते हैं, या उनकी गम्भीरता उतनी नहीं हो सकती। उसका अर्थ यह नहीं है कि प्रजातन्त्र से खाना पैदा हो जाता है पर **प्रजातन्त्र में जनता अपनी माँग रख सकती है**, अपनी स्थिति बता सकती है। सरकार अपनी क्रियाओं पर परदा नहीं डाल सकती है, **सारी स्थितियाँ बहुत पारदर्शी होती हैं** और इसलिए किसी प्रजातान्त्रिक सरकार को अपनी जनता को भूखा रखना महँगा सिद्ध होगा। इसलिए सरकार की कार्यवाही से अनाज निश्चित रूप से उन तक पहुँचाने की व्यवस्था करना जरूरी हो जाएगा और इसलिए भुखमरी नहीं होगी। इसलिए प्रजातन्त्र एक बेहतर व्यवस्था है और इसी आधार पर अन्य मामलों में आगे जाना चाहिए ताकि लोग अपने चुनाव और पसन्दगी को अभिव्यक्त कर सकें।

2. अकाल और निर्धनता (Famine and Poverty)

प्रोफेसर अमर्त्य सेन ने इस प्रचलित धारणा को चुनौती दी है कि खाद्यान्न की कमी ही अकाल का एकमात्र कारण होता है। अकाल हमेशा खाद्यान्न की कमी से नहीं आते। भुखमरी की समस्या को केवल परम्परागत अर्थशास्त्र के खांचे में ही सीमित नहीं रखा जा सकता। यहीं पर सामाजिक मूल्य दर्शन, नीतिशास्त्र, सरकार की सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक, सांस्कृतिक आदि नीतियाँ भी महत्त्वपूर्ण हो जाती हैं। प्रोफेसर सेन महाराष्ट्र और अफ्रीका देश साहेल का उदाहरण देते हुए बताते हैं कि सन् 1970 के दशक में दोनों क्षेत्रों को सूखे का सामना करना पड़ा। खाद्यान्न की उपलब्धता महाराष्ट्र की अपेक्षा साहेल में दुगनी थी लेकिन मरने वालों की संख्या साहेल में ही ज्यादा थी, जबकि महाराष्ट्र में एक-दो लोगों की ही भूख से मरने को घटनाएँ सामने आयीं। कारण स्पष्ट था। महाराष्ट्र में ग्रामीण रोजगार कार्यक्रमों ने स्थानीय निवासियों की क्रय शक्ति बनाये रखी, जबकि साहेल ऐसी कोई कारगर व्यवस्था खड़ी नहीं कर पाया। प्रोफेसर सेन यह मानते हैं कि अकाल से बचने के लिए लोकतन्त्र सबसे अच्छी प्रणाली है क्योंकि विपक्ष और मीडिया के दबाव के कारण सरकार इस समस्या को हल करने के लिए बाध्य होती है, जबकि निरंकुश प्रणाली के सामने ऐसी कोई बाध्यता नहीं होती।

गरीबी उन्मूलन बहुत-कुछ सरकारी नीतियों पर निर्भर करता है। वे गरीबी के व्यापक निरक्षरता, निम्न स्तर की स्वास्थ्य व्यवस्था, अधूरे भूमि सुधारों, लिंग-भेद, महिलाओं को अधिकारों से वंचित रखना और बच्चों को उपेक्षा के रूप में देखते हैं। डॉक्टर सेन ने सुझाव दिया है कि पश्चिमी देशों की तरह ही लोगों के हित के लिए एक सामाजिक व्यवस्था अपनायी जाए। विश्व अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण से लाभ उठाने और कमजारों की इससे रक्षा करने के लिए भिन्न देशों को **'सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था'** की जरूरत है।

सन् 1997 में कलकत्ता के इंडियन चेंबर ऑफ कॉमर्स में दिये गये भाषण के दौरान डॉक्टर अमर्त्य सेन ने यह सुझाया था कि भारत को पाकिस्तान से भयभीत होकर सैनिक हथियारों की खरीद नहीं करनी चाहिए। इस खर्च का एक बड़ा भाग वह निश्चित होकर समाज के कल्याणमूलक कार्यक्रमों में खर्च कर सकता है। चीन में हुई आर्थिक प्रगति पर सवाल उठाते हुए डॉक्टर सेन ने लिखा है कि उदारीकरण की नीति लागू करने के बाद चीन में जो समृद्धि आयी है उसमें पाँच सितारा संस्कृति का आविर्भाव हुआ है। लेकिन क्या उसी अनुपात में चीन के निर्धन वर्गों को लाभ पहुँच रहा है? इसलिए यह आवश्यक नहीं है कि आर्थिक व्यवस्था सुदृढ़ होने के साथ गरीबों की दशा में भी सुधार आ जाए। इसके लिए जरूरी है कि लोग खुली सरकारें और मजबूत राजनैतिक

इच्छा शक्ति लेकर विकासशील देशों को अपने स्वदेशी ढंग से विकसित होने के लिए प्रेरित करने का काम करें। उनके साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर खड़ी हों, जनता को दिशा निर्देश दें। एक उत्तम आदर्श प्रस्तुत करें और कालाबाजारी तथा राजस्व चोरी करने वालों को कड़े दण्ड दें ताकि देश की आर्थिक व्यवस्था लगातार तरक्की करती रहे।

3. सामूहिक विकल्प और सामाजिक कल्याण (Collective Choice and Social Welfare)

सन् 1970 में प्रोफेसर सेन की **'क्लेक्टिव चॉइस एण्ड सोशल वेलफेयर'** नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में प्रोफेसर सेन ने इस बात को प्रतिपादित किया है कि व्यक्ति एक-दूसरे के बारे में बेहतर तालमेल रख पाते हैं और यह मात्र लोकतन्त्र में ही सम्भव है। इस पुस्तक में मुख्य जोर विकास और आय के वितरण पर दिया है। विकास या कल्याणकारी कार्यक्रमों के लाभ किन-किन तबकों तक किन-किन रूपों में पहुँचते हैं इसका मूल्यांकन सामाजिक विकल्प सिद्धान्त के द्वारा किया गया है। इसके लिए उन्होंने सामाजिक मूल्यों से लेकर शासन प्रणाली, व्यक्तिगत अधिकार आदि अनेक पहलुओं को एक साथ रखकर विचार किया है।

4. विषमता पर पुनर्विचार (Rethinking Inequality)

प्रोफेसर सेन की हाल में ही एक पुस्तक प्रकाशित हुई है—**'इन इक्वलिटी रीज एक्जामिड'**। इसमें उन्होंने 'सभी लोग जन्मजात समान हैं' का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। यह सिद्धान्त इस तथ्य से हमारा ध्यान हटा देता है कि हमारी लिंग, उम्र, प्रतिभा और शारीरिक क्षमताओं में अन्तर है तथा हमारी भौतिक लाभ की स्थितियों और सामाजिक पृष्ठभूमि में भी भिन्नताएँ हैं।

5. सेन निर्देशांक (Sen Coordinates)

किसी भी अर्थव्यवस्था में गरीबी के साथ-साथ विषमता का अध्ययन और उसका निराकरण आवश्यक है। इसके लिए विषमता की माप आवश्यक है और इसके लिए जरूरी है—एक उपयुक्त मापदण्ड। इस उपयुक्त मापदण्ड की ही चर्चा प्रोफेसर सेन ने सन् 1973 में प्रकाशित अपनी पुस्तक **'ऑन इकोनामिक इन क्वालिटी'** में की है। प्रोफेसर सेन ने गरीबी निर्देशांक बनाने के लिए एक नया फार्मूला दिया जो गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों की आय में विषमता पर आधारित है। यह फार्मूला 'सेन निर्देशांक' (Sen Index) के नाम से जाना जाता है। यह निर्देशांक यू०एन००डी०पी० की मानव विकास की रिपोर्ट के लिए मानव विकास सूचकांक को गणना में सहायक है।

निष्कर्ष (Conclusion)

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि प्रोफेसर सेन प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की श्रेणी में आते हैं और **एडम स्मिथ, जे०एस० मिल व कार्ल मार्क्स** की परम्परा को आगे बढ़ाते हैं। प्रोफेसर सेन आर्थिक सिद्धान्तों को दर्शन शास्त्र और नीतिशास्त्र के विचारों से मिलाकर प्रस्तुत करते हैं अत: इस अर्थ में वे अन्य प्रचलित अर्थशास्त्रियों से भिन्न हैं।

अन्त में, यद्यपि अमर्त्य सेन को जो नोबेल पुरस्कार मिला है, उस सम्मान को हम राष्ट्रीय गौरव का विषय मान रहे हैं। लेकिन दु:खद पहलू यह है कि गरीब, अकाल, अशिक्षा, शिशु और स्त्री मृत्यु दरों को लेकर अमर्त्य सेन की जो चिन्ताएँ रही हैं, उनमें वास्तविक स्तर पर साझा नहीं कर पा रहे है।, अर्थात् उन्हें कम करने के लिए सकारात्मक कदम की दिशा में सरकार की इच्छा शक्ति व दृढ़ संकल्प की कमी दिख रही है।

प्र.7. जे०एन० भगवती का जीवन-परिचय दीजिए तथा इनके आर्थिक विचारों का वर्णन कीजिए।

Give the life sketch of J.N. Bhagwati and describe their economic thoughts.

उत्तर

जे०एन० भगवती
(J.N. Bhagwati)

जगदीश नटवरलाल भगवती एक भारतीय अर्थशास्त्री हैं और कोलम्बिया विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र और कानून के प्रोफेसर हैं। इनका जन्म 26 जुलाई, 1934 ई० को मुम्बई में एक गुजराती परिवार में हुआ। उन्होंने सिडेनहैम कॉलेज, मुम्बई से स्नातक की उपाधि प्रप्त की। इसके बाद वे 'सीनियर दर्जे' के साथ अर्थशास्त्र में दो साल का बी०ए० (B.A.) का कोर्स करने के लिए कैम्ब्रिज चले गए, जहाँ वे सेंट जोन्स कॉलेज, कैम्ब्रिज के एक सदस्य बन गए और उन्होंने 1956 में डिग्री प्राप्त की।

सेंट जोन्स कॉलेज में भगवती को अन्य भारतीय अर्थशास्त्रियों ने भी प्रभावित किया, जिनमें सर पार्थ दास गुप्ता तथा भारत के प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह भी शामिल थे।

TOUCH 'n' PASS

उन्होंने सन् 1967 ई० में मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी से पी-एच०डी० (Ph.D.) की डिग्री प्राप्त की। भगवती ने पद्मा देसाई से विवाह किया। वे भी कोलम्बिया में अर्थशास्त्री हैं और रूसी विशेषज्ञ हैं। उनकी एक बेटी है। वे भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश पी०एन० भगवती और एक प्रख्यात न्यूरोसर्जन एस०एन० भगवती के भाई है। उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में अनुसन्धान के लिए जाना जाता है। वे मुक्त व्यापार के समर्थक के रूप में भी जाने जाते हैं। वे न्यूयॉर्क में विदेश सम्बन्ध परिषद् में एक आवासी सदस्य (रेजिडेंट फेलो) भी हैं।

जे०एन० भगवती के आर्थिक विचार
(Economic Thoughts of J.N. Bhagwati)

भगवती ने सन् 2001 में विश्व व्यापार संगठन के बाहरी सलाहकार के रूप में कार्य किया, सन् 2000 में संयुक्त राष्ट्र में एक विशेष नीति सलाहकार के रूप में कार्य किया तथा 1991 से 1993 तक व्यापार और शुल्क पर सामान्य करार के महानिदेशक के अर्थशास्त्र नीति सलाहकार के रूप में कार्य किया। सन् 1968 से 1980 तक, भगवती ने मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टैक्नोलॉजी में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर के रूप में कार्य किया। भगवती वर्तमान में ह्यूमन राइट्स वॉच (एशिया) के अकादमिक सलाहकार बोर्ड में तथा द सेंटर फॉर सिविल सोसाइटी के बोर्ड ऑफ स्कॉलर्स में कार्य कर रहे हैं। वह विदेश सम्बन्ध परिषद् में एक वरिष्ठ सदस्य हैं। जनवरी, 2004 में, भगवती ने एक पुस्तक इन डिफेन्स ऑफ ग्लोबलाइजेशन (In Defense of Globalization) प्रकाशित की, जिसमें वे तर्क देते हैं, "इस प्रक्रिया (ग्लोबलाइजेशन या वैश्वीकरण का) के पास एक मानव-चेहरा जरूर है, किन्तु हमें इस चेहरे को अधिक स्वीकार्य बनाने की आवश्यकता है।"

मई, 2004 में, भगवती उन विशेषज्ञों में से एक थे जिन्होंने कोपेनहेगन सहमति परियोजना में भाग लिया था।

सन् 2006 में, भगवती उन प्रभावी व्यक्तियों के समूह के एक सदस्य थे, जिन्होंने अंकटाड (UNCTAD) के कार्य की समीक्षा की। सन् 2010 के प्रारम्भ में, भगवती प्रवासी अधिकारों की इंस्टीट्यूट, सिअंजुर-इंडोनेशिया के सलाहकार बोर्ड में शामिल हो गए।

भगवती प्रसिद्ध अर्थशास्त्री हैं जिन्होंने विदेश में रहकर भी भारतीय सोच से अर्थशास्त्र के क्षेत्र में विशेष योगदान दिया है। इनको अपने विशिष्ट कार्यों के लिए निम्नलिखित सम्मान भी प्रदान किए गए—

1. सन् 2006 में, उन्हें जापान के ऑर्डर ऑफ द राइसिंग सन, गोल्ड एंड सिल्वर स्टार से सम्मानित किया गया।
2. उन्हें सन् 2004 में भारतीय वाणिज्य मण्डल के द्वारा लाइफटाइम अचीवमेंट पुरस्कार प्रदान किया गया।
3. सन् 1974 में, उन्हें भारतीय अर्थमितीय सोसाइटी के महालनोबिस मेमोरियल पदक से सम्मानित किया गया।
4. उन्हें 1998 में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक अर्थव्यवस्था में सीडमेन डिस्टिंगविश्ड अवार्ड से सम्मानित किया गया।
5. 2000 में उन्हें पद्म विभूषण पुरस्कार से सम्मानित किया गया।
6. अन्य पुरस्कारों में बर्नहार्ड हार्म्स पुरस्कार (जर्मनी), द केनन एंटरप्राइज अवॉर्ड (संयुक्त राज्य अमेरिका), द फ्रीडम प्राइज, (स्विट्जरलैण्ड) और जॉन आर० कॉमन्स अवॉर्ड (संयुक्त राज्य अमेरिका० शामिल हैं।

उन्होंने ससेक्स विश्वविद्यालय और इरास्मस विश्वविद्यालय और अन्य कई विश्वविद्यालयों से मानद डिग्रियाँ भी प्राप्त की हैं।

इन्होंने अपने प्रभावशाली लेखन से भी सबको प्रभावित किया। इनकी प्रसिद्ध पुस्तकें निम्न प्रकार हैं—

1. Jagdish Bhagwati (2008). *Termites in the Trading System : How Preferential Agreements Undermine Free Trade.* Oxford University Press. आई०एस०बी०एन० 978-0195331653.
2. Jagdish Bhagwati (2004). *In Defence of Globalization.* Oxford University Press. आई०एस०बी०एन० 0-19-517025-3.
3. Jagdish Bhagwati (2002). *The Wind of the Hundred Days : How Washington Mismanaged Globalization.* MIT Press. आई०एस०बी०एन० 0-262-52327-2.
4. James H. Mathis, Jagdish Bhagwati (Foreword) (2002). *Regional Trade Agreements in the GATT/WTO : Article XXIV and the Internal Trade Requirement.* Norwell/TMC Asser Press. आई०एस०बी०एन० 90-6704-139-4.
5. Jagdish N. Bhagwati (Editor), Robert E. Hudec (Editor) (1996). *Fair Trade and Harmonization, Vol. 1 : Economic Analysis.* MIT Press. आई०एस०बी०एन० 0-262-02401-2.

❐

TOUCH 'n' PASS

UNIT-II

प्लेटो और अरस्तू के आर्थिक विचार
Economic Thoughts of Plato and Aristotle

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. व्यक्तिगत सम्पत्ति को समझाइए।
Define the individual property.

उत्तर व्यक्तिगत सम्पत्ति का उन्मूलन प्लेटो की साम्यवादी विचारधारा का एक अंग है। प्लेटो की धारा है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति व्यक्ति को स्वार्थी, लालची, ईर्ष्यालु, प्रतिद्वन्द्वी एवं हीन बनाती है तथा राज्य की एकता और न्याय को संकट में डाल देती है। प्लेटो के सम्पत्ति सम्बन्धी साम्यवाद की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

(i) संरक्षक वर्ग के पास किसी प्रकार की कोई सम्पत्ति नहीं होगी।
(ii) प्लेटो के अनुसार राज्य को न केवल सम्पत्ति के अत्यधिक बाहुल्य एवं अत्यधिक न्यूनता को ही नियन्त्रित करना है बल्कि यह भी देखना है कि सम्पत्ति उचित साधनों से अर्जित की गयी है।

प्र.2. प्लेटो के प्रमुख आर्थिक विचारों का अध्ययन किन शीर्षकों के अन्तर्गत करते हैं?
Under what titles are Plato's major economic thoughts studied?

उत्तर प्लेटो के प्रमुख आर्थिक विचारों का अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं—

1. राज्य के उदय के आर्थिक कारण,
2. श्रम-विभाजन का सिद्धान्त,
3. मूल्य सम्बन्धी विचार,
4. सामग्री सम्बन्धी साम्यवाद,
5. उत्तराधिकार एवं जनसंख्या सम्बन्धी विचार,
6. विभिन्न वर्ग एवं उनके व्यवसाय।

प्र.3. अरस्तू के अनुसार अर्थशास्त्र की परिभाषा एवं क्षेत्र लिखिए।
Write the definition and scope of economics according to Aristotle.

उत्तर उन्होंने अर्थशास्त्र के दो भाग किये, एक तो OIKONOMIKS (Economics) जिसके अन्तर्गत धन का उपभोग एवं आवश्यकता की पूर्ति आती है (आधुनिक अर्थ में इसे उपभोग Consumption कहेंगे) और दूसरा क्रेमाटिस्टिक (CHREMATISTIK) जिसके अन्तर्गत धन का उत्पादन तथा विनिमय आदि आते हैं। इस दूसरे विषय में उन्होंने लिखा है कि "परिवार का दूसरा पक्ष भी है जिसे धन अर्जन की कला कहा जाता है। कुछ लोगों की राय में यही गृह-प्रबन्ध है और कुछ की राय में यह गृह-प्रबन्ध का एक महत्त्वपूर्ण भाग है।"

प्र.4. अरस्तू का मुख्य दार्शनिक सिद्धान्त क्या है?
What is Aristotle's main philosophical principle?

उत्तर अरस्तु ने सद्गुणों को परिभाषित करते हुए कहा कि सद्गुण मनुष्य कि ऐसे स्थाई मानसिक अवस्था है, जो निरंतर अभ्यास के फलस्वरूप विकसित होती है, तथा मनुष्य के स्वैच्छिक कार्यों में व्यक्त होती हैं। जैसे—संयम वासनाओं को तथा साहस भय को नियंत्रित करता है।

प्र.5. प्लेटो ने अरस्तू को कैसे प्रभावित किया?
How did Plato influence Aristotle?

उत्तर कुछ 20 वर्षों के लिए अरस्तू प्लेटो के छात्र और एथेंस में अकादमी में सहयोगी थे, 380 के दशक में प्लेटो द्वारा स्थापित दार्शनिक, वैज्ञानिक और गणितीय अनुसंधान और शिक्षण के लिए एक संस्थान। हालाँकि अरस्तू अपने शिक्षक का सम्मान करते थे, लेकिन उनका दर्शन अंतत: प्लेटो से महत्त्वपूर्ण मामलों में विदा हो गया।

TOUCH 'n' PASS

प्र.6. अरस्तू के विचार क्या थे?
What were Aristotle's thoughts?

उत्तर अरस्तू का मानना था कि पृथ्वी ब्रह्मांड के केंद्र में है और ये मिट्टी, जल, वायु, और अग्नि से मिलकर बनी है। उनके पिता की मौत उनके बचपन में ही हो गयी थी। 17 वर्षीय अरस्तु को उनके अभिभावक ने शिक्षा पुरी करने के लिए बौद्धिक शिक्षा केंद्र एथेंस भेज दिया।

प्र.7. अरस्तू ने अर्थशास्त्र को क्या कहा है?
What did Aristotle call economics?

उत्तर मुख्य विषय किसी भी अर्थव्यवस्था और विशेष घटनाओं के माध्यम से धन का प्रवाह है। अरस्तू ने अर्थशास्त्र और रसायन विज्ञान के बीच एक अंतर भी स्थापित किया जो मध्ययुगीन विचार में मूलभूत होगा। अरस्तू के लिए, धन का संचय अपने आप में एक अप्राकृतिक गतिविधि है जो इसका अभ्यास करने वालों को अमानवीय बनाती है।

प्र.8. प्लेटो के अनुसार सत्य झूठ क्या है?
According to Plato what is true lie?

उत्तर प्लेटो द्वारा वर्णित '**उदात्त झूठ**' क्या है? जब लोक कल्याणकारी कार्यों के लिए झूठ का सहारा लिया जाए तो प्लेटो उसे '**अदात्त झूठ**' की संज्ञा देता है। **प्लेटो** के शिक्षा के सिद्धान्त की दो विशेषताएँ हैं—1. मनुष्य के सर्वांगीण विकास पर बल देना, 2. धर्म और नैतिकता को उचित स्थान देना।

प्र.9. राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अरस्तू के क्या विचार थे?
What were the thoughts of Aristotle on origin of state?

उत्तर अरस्तू का कहना है—"राज्य की उत्पत्ति जीवन की आवश्यकता के कारण हुई, किन्तु उसकी सत्ता अच्छे जीवन की सम्प्राप्ति के लिए बनी हुई है। इस प्रकार व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास राज्य में ही सम्भव है। राज्य परिवार व ग्राम स्तर के गुजरकर पूर्णता की प्राप्ति है। इस प्रकार राज्य सामाजिक विकास की पूर्णता है।

प्र.10. प्लेटो के सिद्धान्त कौन-कौन से हैं?
What are the principles of Plato?

उत्तर प्लेटो का कहना है कि राज्य के तीनों—दार्शनिक शासक को, सैनिक वर्ग तथा उत्पादक वर्ग द्वारा अपने-अपने कार्यों का समुचित निर्वाह और पालन करना ही सामाजिक न्याय है। **प्लेटो** की न्याय सम्बन्धी धारणा विशिष्टीकरण के सिद्धान्त पर आधारित है। प्रत्येक व्यक्ति को केवल एक ही ऐसा कार्य करना चाहिए जो उसके स्वभाव के अनुकूल हो।

प्र.11. प्लेटो का प्रत्यय सिद्धान्त क्या है? स्पष्ट कीजिए।
What is suffix theory of Plato? Explain.

उत्तर प्लेटो के प्रत्यय सिद्धान्त के अनुसार, 'प्रत्यय या विचार (idea) ही चरम सत्य है, वह शाश्वत और अखण्ड है तथा ईश्वर उसका सर्जक (Creator) है। इसके अनुसार यह वस्तु जगत प्रत्यय जगत का अनुकरण है तथा कला जगत वस्तु जगत का, इस प्रकार कला जगत अनुकरण का अनुकरण है।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. प्लेटो व अरस्तू का जीवन-परिचय दीजिए।
Give the life sketch of Plato and Aristotle.

उत्तर

प्लेटो (Plato)

प्लेटो का जन्म एथेन्स के एक प्राचीन समृद्ध कुल में 428-427 ई०पू० में हुआ। इनके पिता का नाम अरिस्तोन (Ariston) एवं माता का नाम पेरिकतिओन (Perictione) था।

प्लेटो महान दार्शनिक सुकरात के शिष्ट थे। प्लेटो के जीवन के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं है। सुकरात की मृत्यु के बाद आपने दस वर्षों तक कई देशों का भ्रमण किया तथा उसके बाद एथेन्स में एक शिक्षा अकादमी की स्थापना की।

प्लेटो की अकादमी वैज्ञानिक अनुसन्धान का एक शिक्षणालय तथा संस्थान दोनों ही था। आपकी दृष्टि में अकादमी की स्थापना के दो उद्देश्य थे—**प्रथम**, यह विशुद्ध शोध का केन्द्र थी तथा **द्वितीय**, यह राजनीति व कला के प्रशिक्षण की पाठशाला भी जिसे

TOUCH 'n' PASS

विधायक और राजनेता तैयार करने का दायित्व निर्वाह करना था। प्लेटो की अकादमी में गणित और ज्यामिति के अध्ययन को विशिष्ट महत्त्व दिया गया।

21 वर्ष की उम्र में 347 ई०पू० में प्लेटो का निधन हो गया। आपके निधन के बाद के वर्षों में आपकी ख्याति चारों ओर फैल गयी तथा उनका बड़ा सम्मान था। आपकी अकादमी ने एथेन्स के विद्यापीठों में अग्रगण्य स्थान प्राप्त कर लिया था जिस प्रकार वे स्वयं सुकराता के उत्तराधिकारी बने।

मुख्य रचनाएँ—प्लेटो के कुछ प्रमुख ग्रन्थ निम्न प्रकार थे—(1) अपॉलाजी (Apology), (2) क्रीटो (Crito), (3) प्रोटोगोरस (Prototagoras), (4) रिपब्लिक (Republic), (5) स्टेट्समैन (Statesman) एवं (6) लॉज (Laws)।

अरस्तू (Aristotle)

अरस्तु का जन्म 384 ई०पू० में मेसीडोनिया के स्टेजिरा (Stagira) नामक नगर में हुआ था जो एन्थेस के लगभग दो सौ मील उत्तर में है। अरस्तु के पिता मेसीडोनिया के राजा तथा सिकन्दर के पितामह एमण्टस (Amyntas) के मित्र व चिकित्सक थे। अरस्तु प्लेटो के शिष्य थे। बाद में वे सिकन्दर (Alexander) के गुरु नियुक्त हुए। उन्होंने लिसियम में एक विद्यालय खोला तथा बारह वर्ष तक उसे चलाया।

अरस्तु के जीवन की अवसान बेला अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण एवं कष्टमयी रही और 322 ई०पू० अरस्तु ने संसार त्याग दिया।

रचनाएँ—अरस्तु की रचनाएँ इस बात का प्रमाण है कि उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी—

(अ) राजनीति पर—The Politics, The Constitutions.

(ब) साहित्य पर—Eademus or Soul, Protepicus, Poetics तथा Rhetoric आदि।

(स) तर्कशास्त्र व दर्शन पर—Physics, De-Anima, The Prior Metaphysics, Categories Interpretation, The Posterior Analystics और The Topics आदि।

प्र.2. प्लेटो के आर्थिक विचारों का संक्षेप में मूल्यांकन कीजिए।
Evaluate briefly Plato's economic thoughts.

उत्तर

प्लेटो के आर्थिक विचारों का मूल्यांकन
(Evaluation of Plato's Economic Thoughts)

प्लेटो का आर्थिक चिन्तन विशुद्ध आर्थिक न होकर उनके सामाजिक चिन्तनर का ही एक भाग था। उसमें एक वैज्ञानिक का विश्लेषण न होकर एक सुधारक का आग्रह है। आपके आदर्श राज्य की अव्यावहारिकता को देखते हुए उसे एक **स्वप्निल संसार** (Utopia) कहकर पुकारा गया है।

प्लेटो का **सम्पत्ति का साम्यवाद** अर्द्ध-साम्यवाद है क्योंकि यह समाज के सभी वर्गों पर लागू नहीं होता। यह तो समाज के केवल दो वर्गों (शासक वर्ग व सैनिक वर्ग) पर ही लागू होता है जो संख्या में अत्यधिक अल्पमत में हैं।

व्यक्तिगत सम्पत्ति से समाज के एक बहुत बड़े भाग को वंचित करना मानव प्रकृति की उपेक्षा करना ही नहीं बल्कि व्यक्ति के व्यक्तित्व की प्रगति को भी अवरुद्ध करना है। फिर भी आर्थिक विचारों के इतिहास में प्लेटो ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, जैसे—प्लेटो के विचारों में हम **एडम स्मिथ के श्रम-विभाजन, माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त, रॉबर्ट ओवन तथा कार्लर मार्क्स के समाजवादी विचार के तत्त्व पाते हैं।** प्लेटो भले ही सही निष्कर्ष न दे सके हों परन्तु उन्होंने समाज की चेतना को प्रेरणा एवं मार्ग-दर्शन अवश्य दिया। उनका वर्ग व्यवस्था की तरह का विभाजन भी वैज्ञानिक नहीं है—वह जन्म पर आधारित है तथा भारतीय व्यवस्था की ही प्रतिमूर्ति है।

प्रो० मैक्सी के अनुसार, "प्लेटो साम्यवादी विचारों का मुख्य प्रेरणा स्रोत है तथा 'रिपब्लिक' में सभी साम्यवादी तथा समाजवादी विचारों में मूल बीज मिलते हैं।"

प्र.3. अरस्तू के विचारों का मूल्यांकन कीजिए।
Evaluate Aristotle's economic thoughts.

उत्तर

अरस्तू के विचारों का मूल्यांकन
(Evaluation of Aristotle's Economic Thoughts)

आर्थिक विचारों के जगत में यद्यपि अरस्तु का स्थान बहुत ऊँचा है परन्तु इनके विचारों की कई आलोचनाएँ की जाती हैं, जैसे—(i) अरस्तु ने आदर्श राज्य की नहीं बल्कि राज्य के आदर्शों का वर्णन किया है तथा आदर्श राज्य का निर्माण करते समय भी वह अपने युग की सीमा रेखाओं में ही सिमटा पड़ा रहा है।

TOUCH 'n PASS

(ii) उनका व्यक्तिगत सम्पत्ति का सिद्धान्त अव्यावहारिक है क्योंकि मनुष्यों के लिए स्वामित्व छोड़ना न तो सरल है और न ही व्यक्ति अपनी सम्पत्ति को दूसरे के उपयोग के लिए देना चाहता है।

(iii) **डेनिंग** का मत है कि अरस्तु पूँजी के महत्त्व को समझाने में पूर्णत: असफल रहे है इसलिए ब्याज के सम्बन्ध में उनके विचार अति प्राचीन और असंगत है।

महत्त्व (Importance)

फिर भी अरस्तु का आर्थिक विचारों के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है—

1. अरस्तु ने अर्थशास्त्र के क्षेत्र के निर्धारण का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उनके वर्गीकरण में हम उपभोग, उत्पादन, विनिमय आदि का संकेत पाते हैं।
2. उपभोग-मूल्य (Value in Use) तथा विनिमय-मूल्य (Value in Exchange) का विचार सर्वप्रथम उनके मस्तिष्क में आया।
   डेनिंग ने लिखा है कि अरस्तु ने उत्पादन और विनिमय के आरम्भिक विचारों को उचित ढंग से प्रस्तुत किया है। सम्पत्ति के प्रयोग तथा विनिमय—इन दोनों के महत्त्व के अन्तर को स्पष्ट रूप से समझाने में सफल हुए है।
3. उनके **साम्यवाद** सम्बन्धी विचार प्लेटो की अपेक्षा अधिक सुलझे हुए थे।
4. प्रकृतिवाद के कई सिद्धान्तों का सूत्रपात अरस्तु के विचारों में मिलता है। आज के दृष्टिकोण से यह सब अपूर्ण लगता है किन्तु किसी समय यही विचार क्रान्तिकारी थे।

अरस्तु के महत्त्व के विषय में **एरिक रौल** ने ठीक लिखा है, "यदि प्लेटो सुधारकों की लम्बी कतार के अग्रणी व्यक्ति थे तो उनके शिष्य प्रथम विश्लेषणवादी अर्थशास्त्री थे। वे (अरस्तु) अभिजात्य वर्ग से सम्बन्धित नहीं थे और एक नवीन समाज के विकास के सम्बन्ध में अधिक उदार थे ..... अरस्तु ने ही विज्ञान की आधारशिला रखी और आर्थिक समस्याओं को प्रस्तुत किया जिनसे बाद में सब अर्थशास्त्री सम्बन्धित रहे।"

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. प्लेटो के प्रमुख आर्थिक विचारों का वर्णन कीजिए।
Describe the main economic thoughts of Plato.

उत्तर

प्लेटो के आर्थिक विचार
(Economic Thoughts of Plato)

आपके मुख्य आर्थिक विचारों का उद्‌गम उनके ग्रन्थ 'रिपब्लिक' (Republic) में न्याय और आदर्श राज्य की विवेचना से हुआ है। यदि हम अर्थशास्त्र के सिद्धान्त की दृष्टि से विवेचना करें तो पाते हैं कि यूनानी लेखकों में सबसे पहले कुछ सुनिश्चितता प्लेटो की रचनाओं में पायी जाती है। फिर भी प्लेटो में हमें अर्थशास्त्र को राजनीति एवं नीतिशास्त्र का एक अंग मानने की प्रवृत्ति स्पष्ट दिखायी देती है।

प्लेटो के प्रमुख आर्थिक विचारों का अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं—

1. राज्य के उदय के आर्थिक कारण,
2. श्रम-विभाजन का सिद्धान्त,
3. मूल्य सम्बन्धी विचार,
4. सामग्री सम्बन्धी साम्यवाद,
5. उत्तराधिकार एवं जनसंख्या सम्बन्धी विचार,
6. विभिन्न वर्ग एवं उनके व्यवसाय।

1. **राज्य के उदय के आर्थिक कारण** (Economic Causes of Evaluation of States)—प्लेटो का मत है कि **मानव की आर्थिक आवश्यकताएँ ही राज्य को एकता के सूत्र में बाँधने वाला प्रारम्भिक तन्त्र है** क्योंकि इकाई के रूप में कोई भी व्यक्ति अपनी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकता। इसके लिए उसे अन्य व्यक्तियों द्वारा तैयार की गयी वस्तु की भी आवश्यकता पड़ती है। उनका कथन है कि समाज के सब व्यक्तियों को किसी-न-किसी व्यक्ति की सहायता की आवश्यकता पड़ती है जिससे कि वे एक-दूसरे की आवश्यकता की पूर्ति करे। इस प्रकार परस्पर सहयोग करने वाले व्यक्तियों का एक समुदाय निर्मित हो जाता है जिसे राज्य कहते हैं। भोजन, वस्त्र, निवास इत्यादि मनुष्य की प्रारम्भिक आवश्यकताएँ हैं जिनकी पूर्ति परस्पर सहयोग से ही सम्भव है। अस्तु, श्रम-विभाजन और विनिमय ने राज्य का निर्माण किया। इस प्रकार, **मनुष्य की अपूर्णता एवं असमर्थता के कारण दूसरों की सहायता की जरूरत होती है। अत: यही राज्य के उदय का कारण है।**

TOUCH 'n PASS

2. **श्रम-विभाजन का सिद्धान्त** (The Principle of Division of Labour)—प्लेटो के आदर्श राज्य की उत्पत्ति के कारणों से ही दो सिद्धान्तों—(i) श्रम-विभाजन का सिद्धान्त और (ii) कार्य विशिष्टीकरण का भी बीजारोपण होता है। प्लेटो का श्रम-विभाजन का सिद्धान्त मानवीय आवश्यकताओं के विश्लेषण पर आधारित है। मानव की प्रमुख तीन आवश्यकताएँ भोजन, वस्त्र एवं आवास की है। समाज में इनकी पूर्ति किसान, बुनकर एवं मकान बनाने वाले बढ़ई आदि के द्वारा की जाती है। विनिमय के लिए व्यापारी भी आवश्यक है। इस विभाजन के कारण ही इन सब आवश्यकताओं की पूर्ति ठीक ढंग से सम्भव है। प्लेटो के अनुसार श्रम-विभाजन के कई लाभ हैं—हर व्यक्ति को स्वाभाविक कार्य मिल जाता है तथा माल अच्छा और अधिक मात्रा में आसानी से तैयार हो सकता है।
3. **मूल्य सम्बन्धी विचार** (Ideas about Price)—प्लेटो के अनुसार विक्रेता को केवल वस्तु की उचित कीमत (Just Price) माँगनी चाहिए किन्तु कीमत शब्दी की उन्होंने स्पष्ट व्याख्या नहीं की। प्लेटो ने मूल्य को वस्तु का आन्तरिक गुण कहा परन्तु यह एक रहस्यमय तत्त्व ही रहा गया।
4. **सम्पत्ति सम्बन्धी साम्यवाद** (Ideas regarding Wealth Communism)—(अ) धन का वितरण (Distribution of Wealth)—प्लेटो के अनुसार निर्धनता और अधिक धन दोनों ही खराब हैं। धन का वितरण न्यायपूर्ण होना चाहिए। अधिक धन भी मनुष्य को अवनति के गर्त में ले जाता है। उन्होंने ब्याज का निषेध किया। यहाँ तक कि ऋणों का भुगतान अनिवार्य नहीं बताया।

(ब) **व्यक्तिगत सम्पत्ति** (Individual Property)—व्यक्तिगत सम्पत्ति का उन्मूलन प्लेटो की **साम्यवादी विचारधारा** का एक अंग है। प्लेटो की धारणा है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति व्यक्ति को स्वार्थी, लालची, ईर्ष्यालु, प्रतिद्वन्द्वी एवं हीन बनाती है तथा राज्य की एकता और न्याय को संकट में डाल देती है।

प्लेटो के सम्पत्ति सम्बन्धी साम्यवाद की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

(i) संरक्षक वर्ग के पास किसी प्रकार की कोई सम्पत्ति नहीं होगी।
(ii) प्लेटो के अनुसार राज्य को न केवल सम्पत्ति के अत्यधिक बाहुल्य एवं अत्यधिक न्यूनता को ही नियन्त्रित करना है बल्कि यह भी देखना है कि सम्पत्ति उचित साधनों से अर्जित की गयी है।
(iii) उत्पादक वर्ग (Producing Class) को ही प्लेटो ने व्यक्तिगत सम्पत्ति रखने का अधिकार दिया।
(iv) समाज के सभी वर्गों के उचित हितों को ध्यान में रखकर सम्पत्ति के उपयोग की व्यवस्था की जानी चाहिए क्योंकि अन्ततोगत्वा सम्पत्ति समाज के द्वारा ही पैदा की जाती है।

5. **उत्तराधिकार एवं जनसंख्या सम्बन्धी विचार** (Ideas regarding Inheritance and Population)—उनके आदर्श राज्य में प्रत्येक को भूमि प्राप्त होती थी जो **अहस्तान्तरणशील** थी। सन्तान के अभाव में एकमात्र उत्तराधिकारी के रूप में पुत्र को गोद लेने का अधिकार था। पुत्र के अभाव में व्यक्ति को अपनी कन्या के लिए पति चुनने का अधिकार था। भूमि के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति का वितरण शेष बच्चों में किया जा सकता था। इसका उद्देश्य परिवार को बनाये रखना एवं उसकी सम्पत्ति की रक्षा करना था। ये सारे नियम प्राय: हेब्रूयू समाज के समान ही थे।

प्लेटो का कथन है कि **सावधानी से जनसंख्या का नियन्त्रण होना चाहिए** जो सामाजिक सन्तुलन को बनाये रखने के लिए आवश्यक है। अपने आदर्श राज्य में प्लेटो ने प्रशासन को सुविधाजनक बनाने के लिए 5,040 नागरिकों की ही व्यवस्था की है। यदि जनसंख्या इस बिन्दु से घटती है तो उसे बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए और यदि जनसंख्या बढ़ती है तो उसे बसाने के लिए अलग से उपनिवेशों की स्थापना की जानी चाहिए।

6. **विभिन्न वर्ग एवं उनके व्यवसाय** (Different Classes and their Occupations)—प्लेटो ने अपने आदर्श राज्य में तीन विभिन्न वर्गों को स्थान दिया—**शासक, सैनिक** एवं **कर्मचारी या मजदूर** और इसके लिए प्राकृतिक विशिष्टीकरण को आधार बनाया। इस ढाँचे में उच्चतम स्थान **दार्शनिकों को शासक के रूप में, सैनिकों को मध्यम स्थान** एवं **निम्न स्थान किसानों एवं मजदूरों को मिला है।** प्लेटो के सम्पत्ति के आदर्श प्रबन्ध में आर्थिक विचार स्पष्ट हैं। केवल किसानों एवं मजदूरों को लाभकारी कार्य करने एवं सम्पत्ति एकत्रित करने का अधिकार था। शासक एवं सैनिकों को स्वयं की सम्पत्ति रखने का अधिकार नहीं था। ताकि वे सत्यनिष्ठा एवं न्याय से कर्तव्यपालन कर सकें। साथ ही प्लेटो ने विभिन्न वर्गों को कुछ उत्तरदायित्व सौंपकर वर्ग-संघर्ष को कम करने का प्रयत्न किया है। प्लेटा ने निम्न वर्ग को सामाजिक उच्चता प्रदान नहीं की है और उसे पूर्ण नागरिकता से वंचित कर राजनीतिक अधिकार प्रदान नहीं किये हैं।

यह पहले बताया जा चुका है कि ग्रीक विचारकों के विचार पूर्ण रूप से प्रजातान्त्रिक नहीं थे। प्रजातन्त्र के विपक्ष में प्लेटो का तर्क यह था कि शासन का कार्य पूर्ण उत्तरदायितव का है जिसे व्यापारियों या कृषि करने वालों को नहीं सौंपा जा

TOUCH 'n' PASS

सकता। उनके मत में केवल उच्च वर्ग वालों को, जो जन्म से ही पूर्ण होते हैं, प्रशिक्षण एवं दर्शन का ज्ञान देकर उचित प्रशासन के योग्य बनाया जा सकता है।

प्र.2. अरस्तू के आर्थिक विचारों का विवरण दीजिए।
Describe the economic thoughts of Aristotle.

उत्तर

अरस्तू के प्रमुख आर्थिक विचार
(Main Economic Thoughts of Aristotle)

(1) अर्थशास्त्र की परिभाषा एवं क्षेत्र, (2) राज्य, (3) विनिमय, (4) मूल्य, (5) मुद्रा और ब्याज एवं (6) सम्पत्ति।

1. **अर्थशास्त्र की परिभाषा एवं क्षेत्र** (Definition and Scope of Economics)—उन्होंने अर्थशास्त्र के दो भाग किये, एक तो OIKONOMIKS (Economics) जिसे अन्तर्गत धन का उपभोग एवं आवश्यकता की पूर्ति आती है (आधुनिक अर्थ में इसे उपभोग Consumption कहेंगे) और दूसरा क्रेमाटिस्टिक (CHREMATISTIK) जिसके अन्तर्गत धन का उत्पादन तथा विनिमय आदि आते हैं। इस दूसरे विषय में उन्होंने लिखा है कि "परिवार का दूसरा पक्ष भी है जिसे धन अर्जन की कला कहा जाता है। कुछ लोगों की राय में यही गृह-प्रबन्ध है और कुछ की राय में यह गृह-प्रबन्ध का एक महत्त्वपूर्ण भाग है।"
   अरस्तु ने उत्पादन और विनिमय की क्रियाओं को भी दो भागों में बाँटा—
   (अ) **प्राकृतिक** (Natural), जैसे कि वस्तु परिवर्तन (Barter)। इसके बारे में उन्होंने कहा कि "यह प्रकृति के विपरीत नहीं है क्योंकि इसके बिना आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो सकती।" वस्तु विनिमय के अतिरिक्त खेती और पशुपालन को भी उन्होंने प्राकृतिक आर्थिक क्रिया माना। (ब) **अप्राकृतिक** (Un-natural) व्यापार और मुद्रा के माध्यम के विनिमय को उन्होंने अप्राकृतिक आर्थिक क्रिया कहा। वस्तु के उपभोग को भी उन्होंने प्राकृतिक और अप्राकृतिक दो भागों में बाँटा। उदाहरण के लिए, जूते को पहनना प्राकृतिक उपभोग है तथा जूते को बेचना अप्राकृतिक उपभोग है।
2. **राज्य** (State)—**अरस्तु के अनुसार अपने साथी मनुष्यों के साथ रहने की प्राकृतिक भावना ने समाज एवं राज्य को जन्म दिया।** वे प्लेटो एवं अन्य विचारकों के इस तर्क से सहमत नहीं है कि आर्थिक आवश्यकता ने राज्य को जन्म दिया है। अरस्तु के अनुसार मनुष्य एक **राजनीतिक प्राणी** (Political Animal) है, अत: राज्य प्रकृति की रचना है। जहाँ प्लेटो ने बढ़ा-चढ़ाकर आदर्शवाद को प्रस्तुत किया, वहाँ अरस्तु ने राज्य को एक प्राकृतिक संस्था मानकर, अर्थशास्त्र एवं नीतिशास्त्र दोनों को व्यावहारिक राजनीतिक दृष्टिकोण से देखा है। अरस्तु यह मानकर चलते हैं कि "सब मनुष्यों में राजनीतिक समूह की सहज प्रवृत्ति है। परिवार में ही राज्य की उत्पत्ति देखने को मिलती है जो पुरुष या स्त्री की स्वतन्त्रतापूर्वक रहने की असमर्थता एवं मनुष्यों में असमानता, जो दासता की ओर ले जाती है, पर आधारित है।" परिवार की स्थापना प्रतिदिन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए की जाती है। तब गाँवों का क्रम आता है फिर अन्त में राज्य का। सबसे अन्त में पूर्ण रूप में बहुत-से गाँवों का समूह ही राज्य है जिसमें पहली बार पूर्ण स्वतन्त्रता का उद्देश्य प्राप्त किया जाता है।
   अरस्तु ने राज्य के विभिन्न स्वरूपों की व्याख्या की है। प्लेटो के विपरीत अरस्तु सीमित रूप में लोगों द्वारा राज्य में भाग लेने को अच्छा मानते थे। उस राजय की स्थिति सर्वोत्तम मानी जाती थी जहाँ मध्यम वर्ग अपनी शक्ति से अमीर एवं निर्धन दोनों वर्गों को नियन्त्रित रखता था। अरस्तु के मत में तीनों वर्गों—शासक, पादरी और सैनिकों को नागरिकाता दी जानी चाहिए। व्यापारियों, किसानों एवं कारीगरों को नागरिकता से वंचित रखा जाना चाहिए क्योंकि इन लोगों में सद्गुणों का अभाव रहता है और राजनीतिक कर्त्तव्यों को पूरा करने के लिए इनके पास समय नहीं रहता।
3. **विनिमय** (Exchange)—अरस्तु ने अर्थशास्त्र एवं पूर्तिविज्ञान में भेद किया है। जहाँ अर्थशास्त्र के अन्तर्गत आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए धन के उपयोग एवं विभिन्न वस्तुओं का अध्ययन किया जाता है, **पूर्तिविज्ञान** में धन प्राप्त करने अथवा विनिमय का अध्ययन किया जाता है जो पारिवारिक व्यवस्था का ही एक अंग है। आगे चलकर अरस्तु ने पूर्तिविज्ञान को दो भागों में बाँटा है—**प्राकृतिक एवं अप्राकृतिक।** वस्तु-विनिमय की प्रथा, जिसकी आवश्यकता मनुष्यों की प्राकृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होती है, प्रकृति के प्रतिकूल नहीं है किन्तु फुटकर व्यापार मुद्रा अर्जन करने का प्राकृतिक रूप नहीं है। कृषि एवं पशुपालन मुद्रा प्राप्त करने का वास्तविक ढंग है जबकि विनिमय अप्राकृतिक है। अरस्तु के अनुसार पूर्तिविज्ञान के प्राकृतिक स्वरूप को ही अर्थशास्त्र अथवा गृह-व्यवस्था में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

TOUCH 'n PASS

अरस्तु ने वस्तु के **प्राकृतिक एवं अप्राकृतिक उपयोग के बीच में भी भेद किया है।** प्रत्येक वस्तु के दो उपयोग होते हैं जिनका ढंग अलग-अलग होता है। पहले उपयोग को उचित उपयोग और दूसरे को गौण उपयोग कहा जा सकता है। जैसे, जूते का उपयोग पहनने या विनिमय के लिए किया जा सकता है। यह भेद अरस्तु के विनिमय के विचार पर आधारित है जो इस धारणा पर आधारित है कि उपभोग की एक निश्चित मात्रा उचित जीवन के लिए यथेष्ठ है। अरस्तु के मतानुसार मुद्रा के आविष्कार ने **अप्राकृतिक वित्त** (Unnatural Finance) का विकास किया है जो विनिमय के माधयम से मुद्रा की मात्रा को बढ़ा देता है और एक को दूसरे के बल पर धनी बनाता है। अरस्तु ने ब्याज को वित्त का सबसे खराब रूप माना है क्योंकि इसमें मुद्रा से ही लाभ कमाया जाता है, न कि उसके प्राकृतिक उपयोग से। उसका प्राकृतिक उपयोग विनिमय है, न कि ब्याज कमाकर उसकी मात्रा बढ़ाने में।

4. **मूल्य** (Price)—ग्रीक विचारकों ने मूल्य पर बहुत सीमित रूप में विचार किया और वह भी न्याय तथा नीति-शास्त्र के दृष्टिकोण से। प्लेटो के अनुसार किसी भी व्यक्ति को कानून के अनुसार वस्तु की कीमत नहीं बढ़ानी चाहिए। कीमत वस्तु में निहित निरपेक्ष गुण है। यह तो मूल्य का प्रारम्भिक विवेचन है। **अरस्तु की मूल्य की धारणा आत्मगत** (Subjective) **है एवं वस्तु की उपयोगिता पर आधारित है।** विनिमय की जाने वाली समस्त वस्तुएँ किसी माप के प्रमाण द्वारा तुलना करने योग्य होनी चाहिए और यह प्रमाण मनुष्य की आवश्यकताएँ है। "सच्चे एवं वास्तविक अर्थ में यह प्रमाण आवश्यकताओं में निहित है जो मनुष्यों के समस्त समूहों का आधार है।" आगे अरस्तु कहते हैं कि विनिमय उस समय होता है जब व्यक्ति ठीक उतना ही पाता है जितना वह देता है परन्तु इस समानता का अर्थ बराबर लागत न होकर समान आवश्यकताएँ है। उस समय भी अरस्तु ने यह कहकर मुद्रा के सही कार्य की व्याख्या की है कि मुद्रा विनिमय का माध्यम है जो आवश्यकताओं को एक आनुपातिक रूप प्रदान करता है।
   अरस्तु ने उपयोग मूल्य एवं विनिमय मूल्य (Value in Use and Value in Exchange) में भी भेद किया है। उनके अनुसार वस्तु के उपयोग के लिए दिए जाने वाले मूल्य को उपयोग मूल्य एवं विनिमय हेतु दिये जाने वाले मूल्य को विनिमय मूल्य कहते हैं। वे यह भी निष्कर्ष निकालते हैं कि उपयोग मूल्य से ही विनिमय मूल्य का उदय होता है। यद्यपि इस सम्बन्ध में बाद में प्रस्तुत किये जाने वाले विचारों का आधार नैतिक नहीं है लेकिन अरस्तु ने नैतिकता के आधार पर ही इसकी व्याख्या की है।
5. **मुद्रा और ब्याज** (Money and Interest)—अरस्तु के अनुसार वस्तु विनिमय की कठिनाइयों को दूर करने के लिए एवं व्यापार के लाभों को प्राप्त करने के लिए मुद्रा का आविष्कार किया गया। मुद्रा के आवश्यक गुणों पर भी प्रकाश डाला गया है। मुद्रा के कार्यों का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं कि वह मूल्य का माप तथा विलम्बित भुगतान (Deferred Payment) का प्रमाण है।
   जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है, अरस्तु ने मुद्रा को पूर्ण रूप से विनिमय का साधन माना है और केवल इसी दृष्टिकोण से प्रभावित होने के कारण उन्होंने ब्याज लेने की निन्दा की है एवं ऋणों की उत्पादकता को स्वीकार नहीं किया है। अरस्तु का यह सिद्धान्त था कि मुद्रा से और अधिक मुद्रा नहीं कमाई जा सकती, इसलिए वे ब्याज को अनुचित मानते हैं। इसी क्रम में प्लेटो भी कहते हैं कि न तो ब्याज दिया जाना चाहिए और न ही ऋण का मूलधन वापस दिया जाना चाहिए।
6. **सम्पत्ति** (Assets)—अरस्तु कहते हैं कि उसी सीमा तक धन का संग्रह वांछनीय है जिस सीमा तक वह घरेलू अर्थव्यवस्था का अंग है। उन्हीं के शब्दों में, "संग्रह का एक ही प्रकार है जो प्राकृतिक है और घरेलू अर्थव्यवस्था का अंग है। या तो हमें जीवन की आवश्यक वस्तुओं को पहले से ही विद्यमान मान लेना चाहिए या परिवार या राज्य के सामूहिक प्रयोग के लिए गृह-अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत उसकी पूर्ति की जानी चाहिए। वे ही वास्तविक सम्पत्ति के तत्त्व हैं क्योंकि अच्छे जीवन के लिए आवश्यक सम्पत्ति की मात्रा असीमित नहीं है।"
   प्लेटो के समान अरस्तु ने भी अत्यधिक गरीबी या धन—दोनों की अति सीमाओं का विरोध किया। यद्यपि वे साम्यवाद के पक्ष में थे फिर भी वे विवेकयुक्त असमानता के विरोधी नहीं थे। सामान्य लोगों की अपेक्षा अमीर व्यक्तियों के अधिकारों का अतिक्रमण उन्हें पसन्द नहीं था। "अमीर व्यक्तियों को अत्यधिक शक्ति देकर और लोगों को धोखा देकर कई लोग गलती करते हैं। एक समय ऐसा आता है जब झूठी सच्चाई से एक वास्तविक बुराई का जन्म होता है क्योंकि लोगों का अतिक्रमण करने की अपेक्षा धनी व्यक्तियों का अतिक्रमण करना राज्य के लिए अधिक नाशवान है।" इसी सन्दर्भ में अरस्तु अन्यत्र कहते हैं कि गरीबी क्रान्ति एवं अपराध को जन्म देती है।

❐

TOUCH 'n' PASS

UNIT-III

वाणिज्यवाद
Mercantilism

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. वाणिज्यवाद से क्या आशय है?

What is meant by mercantilism.

उत्तर वाणिज्यवाद से आशय उन आर्थिक विचारों से है जो सोलहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यूरोप के राजनीतिज्ञों में प्रचलित थे।

प्र.2. कोलबर्टवाद को परिभाषित कीजिए।

Define colbertism.

उत्तर फ्रांस में वाणिज्यवाद को कोलबर्टवाद के नाम से पुकार गया क्योंकि वहाँ के प्रसिद्ध वित्तमंत्री जे०बी० कोलर्बट इस विचारधारा के पक्के समर्थक थे। उन्होंने अपने देश की आर्थिक नीति में अनेक संशोधन किए जिनका गहरा प्रभाव समय के आर्थिक विचारों पर पड़ा। इसीलिए वाणिज्यवाद को कोलबर्टवाद भी कहा जाता है।

प्र.3. वाणिज्यवाद को जन्म देने वाले कारणों को कितने भागों में बाँटा गया है?

Into how many parts the causes that gave rise to mercantilism are divided?

उत्तर **प्रो० हेने** ने वाणिज्यवाद को जन्म देने वाले कारणों का दो भागों में वर्गीकृत किया है।

(i) दूर के अभौतिक कारण
(ii) समीप के भौतिक कारण।

प्र.4. वाणिज्यवाद के जनसंख्या सम्बन्धी विचार को लिखिए।

Write the thoughts of mercantilism related to population.

उत्तर वाणिज्यवादियों की जनसंख्या सम्बन्धी भी एक निश्चित नीति थी। इसके अन्तर्गत वे जनसंख्या की वृद्धि को प्रोत्साहन देते थे क्योंकि उनकी दृष्टि में जनसंख्या की वृद्धि से जहाँ एक ओर सैनिकों और नाविकों की संख्या में वृद्धि होती थी, वहीं दूसरी ओर, उत्पादक श्रमिकों की संख्या में वृद्धि होती थी। अधिक लोगों को रोजगार देने से राज्य की आय में भी वृद्धि होगी। इसके अतिरिक्त विदेशी वस्तुओं से प्रतियोगिता करने के उद्देश्य से देश में वस्तुओं के उत्पादन के लिए अधिक संख्या में सस्ता श्रम आवश्यक माना गया। अत: कानूनी तौर पर जनसंख्या के बढ़ने को प्रोत्साहन दिया गया। यहाँ विभिन्न वाणिज्यवादियों के विचार उल्लेखनीय हैं—देवनान्त के शब्दों में, "एक समुदाय की वास्तविक शक्ति उसकी जनता है।"

प्र.5. वाणिज्यवाद के कार्यों को बताइए।

State the function of mercantilism.

उत्तर वाणिज्यवादी यह मानते थे कि राज्य अपने नागरिकों के जीवन को नियमित करने और उनकी क्रियाओं को नियन्त्रित करने के लिए सर्वशक्तिमान है। वे सभी नीतियों में राजनीतिक एकता और राष्ट्रीय शक्ति को विशेष महत्त्व देते थे। यह निश्चित है कि जिन परिस्थितियों की प्रतिक्रियास्वरूप वाणिज्यवाद का प्रादुर्भाव हुआ था, उसे दृष्टिगत करते हुए एक शक्तिशाली केन्द्रीय सत्ता की स्थापना अनिवार्य थी, जिसके लिए एक निरंकुश शासक की भी आवश्यकता थी।

TOUCH 'n' PASS

प्र.6. मुद्रा के सिद्धान्त से आप क्या समझते हैं?
What do you understand by the theory of money?

उत्तर लॉक ने लिखा है कि मूल्य स्तर चलन में मुद्रा की मात्रा द्वारा निर्धारित होता है। मुद्रा की मात्रा बढ़ने से क्रयशक्ति कम होती है अर्थात् कीमतें बढ़ती हैं। यह बात कैण्टीलौन ने भी लिखी है तथा ह्यूम ने भी ऐसा ही लिखा है। यह मुद्रा परिमाण सिद्धान्त (Quantity Theory of Money) का प्रारम्भिक रूप है।

प्र.7. वाणिज्यवाद के प्रतिनिधि लेखकों के नाम लिखिए।
Write the representative writers of mercantilism.

उत्तर जिन वाणिज्यवादियों के आर्थिक विचारों के आधार पर वाणिज्यवाद की स्थापना हुई, उनमें प्रमुख है—टामस मन, रिचार्ड कैण्टिलन, जे० चाइल्ड, जेम्स स्टुअर्ट—जे०बी० कालबर्ट, हौर्निक तथा एण्टोनियो सिरा।

प्र.8. विनिमय की दर का सिद्धान्त बताइए।
State the theory of rate of exchange.

उत्तर इसी युग में विनिमय की टकसाली समता दर (Mint Par of Exchange) के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया यद्यपि वह प्रारम्भिक रूप में ही था। इसका सूत्रपात मैलाइन्स (Malynes) तथा हेल्स (Hales) के द्वारा हुआ। ऐरिक रोल ने लिखा है कि मैलाइन्स ने अपनी मध्ययुगीन मान्यता के द्वारा इसका प्रतिपादन किया और उसका उपचार नैतिक आधार पर स्थापित किया।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. वाणिज्यवाद की अवधारणा एवं विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
Mention the concept and characteristics of mercantilism.

उत्तर

वाणिज्यवाद की अवधारणा
(Concept of Mercantilism)

जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, यह आर्थिक विचारधारा व्यापार या वाणिज्य को प्रधानता देती है। वाणिज्यवाद से हमारा आशय 16वीं, 17वीं तथा 18वीं शताब्दी के उन आर्थिक विचारों से है जो उस समय यूरोप के प्रधान देशों में प्रचलित थे। यह समझना भ्रमपूर्ण होगा कि यह विचारधारा किसी विशेष समय में कुछ विशेष लेखकों द्वारा जान-बूझकर प्रतिपादित विचारधारा है जिसका सम्बन्ध सर्वमान्य सिद्धान्तों से है। **अलेग्जेंडर ग्रे** (Alexander Gray) ने लिखा है, "प्राय: हम **'वाणिज्यवाद सिद्धान्त'** वाक्यांश का प्रयोग करते हैं किन्तु इसका यह आशय नहीं लेना चाहिए कि किसी समय पर लेखकों का कोई समूह था जिसने सचेत रूप से वाणिज्यवादी विचार प्रस्तुत किए।" वास्तव में, यह आर्थिक विचारधारा किसी एक व्यक्ति की नहीं थी बल्कि अनेक देशों के अनेक व्यक्तियों की थी और ये व्यक्ति भी विद्वान विचारक न होकर कुशल व्यापारी, राजनीतिज्ञ और प्रबन्धक थे। इन विभिन्न देशों के व्यक्तियों ने अपने विचारों को तत्कालीन अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए व्यक्त किया था। **स्काट** (Scott) के शब्दों में, "अपने उद्भव से ही और अपनी प्रकृति के द्वारा यह (वाणिज्यवाद) एक प्रणाली के सिवा कुछ भी हो सकता है परन्तु मुख्य रूप से यह उस समय के राजनीतिज्ञों, सरकारी कर्मचारियों एवं व्यापारियों के मस्तिष्क की उपज थी।" इसी प्रकार **प्रो० एरिक रोल** (Eric Roll) ने इस सम्बन्ध में कहा है कि वाणिज्यवाद पर लिखने वालों ने अपने सिद्धान्तों को वास्तविक सिद्धान्तों के रूप में कभी नहीं रखा। यथार्थ यह है कि बहुत-से देशों के राजनीतिज्ञों ने बहुत समय तक कुछ कार्य किए जिन्होंने आगे चलकर सिद्धान्तों का रूप धारण कर लिया। इस सम्बन्ध में **प्रो० हेने** (Haney) का मत है कि प्रथम मध्ययुग के पश्चात् लोगों द्वारा प्रतिपादित आर्थिक विचार और उनसे सम्बन्धित नीतियों को ही वाणिज्यवाद की संज्ञा दी गयी है। **"वाणिज्यवाद से आशय उन आर्थिक विचारों से है जो सोलहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यूरोप के राजनीतिज्ञों में प्रचलित थे।"**
वाणिज्यवाद के विभिन्न देशों में विभिन्न नाम प्रचलित थे जिन्हें संक्षेप में नीचे समझाया गया है—

1. **वाणिज्यवाद, वणिकवाद तथा व्यापारवाद** (Mercantilism)—इस विचारधारा का यह नाम इसलिए पड़ा क्योंकि इसमें व्यापार या वाणिज्य को प्रधानता दी जाती थी। ये नाम ब्रिटेन में प्रचलित थे।
2. **कोलबर्टवाद** (Colbertism)—फ्रांस में कोलबर्टवाद के नाम से पुकारा गया क्योंकि वहाँ के प्रसिद्ध वित्तमन्त्री जे०बी० कोलबर्ट इस विचारधारा के पक्के समर्थक थे। उन्होंने अपने देश की आर्थिक नीति में अनेक संशोधन किये जिनका गहरा प्रभाव समय के आर्थिक विचारों पर पड़ा। इसीलिए वाणिज्यवाद को **कोलबर्टवाद** भी कहा जाता है।

TOUCH 'n PASS

3. **प्रतिबन्धित आर्थिक व्यवस्था** (Restrictive Economy)—वाणिज्यवाद में अनुकूल व्यापार सन्तुलन पर बहुत जोर दिया जाता था परन्तु यह तभी सम्भव था जब देश के आर्थिक जीवन पर विभिन्न प्रकार के प्रतिबन्ध लगाये जायें। इन प्रतिबन्धों के लगाये जाने के कारण ही वाणिज्यवाद को प्रतिबन्धित आर्थिक व्यवस्था कहा गया।
4. **कैमेरिलवाद** (Camerlism)—यह नाम जर्मनी और ऑस्ट्रिया में प्रचलित हुआ। कैमर का अर्थ राज्यकोष होता है। इसका तात्पर्य ऐसी आर्थिक नीति से है। जिससे देश में धन पैदा हो।
वस्तुत: इस विचारधारा को वाणिज्यवाद की संज्ञा देना ही अधिक श्रेयस्कर होगा क्योंकि इससे उस काल की सभी आर्थिक नीतियों, पद्धतियों एवं विचारधाराओं का बोध होता है।

वाणिज्यवाद की विशेषताएँ (Features of Mercantilism)

1. वाणिज्यवाद अन्य सम्प्रदायों के विपरीत एक बिखरा हुआ अस्त-व्यस्त अर्थशास्त्रियों का समुदाय था जो लगभग तीन शताब्दी तक समाज में अपने विचार प्रकट करता रहा।
2. वाणिज्यवाद किसी व्यक्तिगत वाणिज्यवादी अथवा किसी विशेष देश के वाणिज्यवादियों के विचारों को व्यक्त नहीं करता है अर्थात् वाणिज्यवाद को किसी व्यक्ति विशेष अथवा किसी देश के वाणिज्यवादियों के विचार कहना अनुपयुक्त होगा। वह मध्यकाल के पश्चात् के सामान्य विचारों का प्रतिनिधित्व करता है।
3. वाणिज्यवाद मुख्य रूप से राजनीतिज्ञों, राज्य कर्मचारियों, व्यावसायिक नेताओं के मस्तिष्क की उपज थी। अत: उसमें सैद्धान्तिक नियमों का प्रतिपादन बहुत कम किया गया था।
4. इस समुदाय की कोई **निश्चित नीति** न होने के कारण आने वाले अनेक दशकों में तो इन्हें विचारक तक भी नहीं माना गया।
5. अपने देश की शक्ति वाणिज्यवादियों के लिए मौलिक रूप से महत्त्वपूर्ण थी। अन्य शब्दों में, वाणिज्यवादियों के सभी विचार व नीतियाँ राष्ट्रों को शक्तिशाली बनाने के आधारभूत उद्देश्य के अधीन थीं।

प्र.2. वाणिज्यवाद के पतन के कारणों पर प्रकाश डालिए।
Throw light on the causes of decline of mercantilism.

उत्तर

वाणिज्यवाद के पतन के कारण
(Causes of Decline of Mercantilism)

जैसा कि हम देख चुके है कि वाणिज्यवादी लेखक अपने विचारों में एकमत नहीं थे। कुछ लेखकों ने तो अपने जीवन-काल में कुछ नीतियों का विरोध किया, जैसे कि रिचर्ड कैण्टिलन ने वाणिज्यवाद के व्यापार सन्तुलन सिद्धान्त की आलोचना की। इनकी नीतियाँ एकपक्षीय थीं एवं विशेष समय तथा स्थान की उपज थीं। इस सबका परिणाम यह हुआ कि अठारहवीं सदी के अन्त में इन नीतियों का पतन होने लगा जिसके मुख्य कारण इस प्रकार हैं—

1. **कालबर्ट की नीतियाँ**—फ्रांस में वाणिज्यवाद के प्रबल समर्थक कालबर्ट की नीतियाँ ही उसके पतन का कारण बनीं। तमाम प्रयत्नों के बावजूद कालबर्ट की सारी योजनाएँ विफल हो गयीं। निर्बाध व्यय की नीति का नाजायज लाभ उठाकर लुई 14वें ने फ्रांस में अविवेकपूर्ण ढंग से व्यय किया जिसका परिणाम यह हुआ कि लोगों पर कर का असह्य भार पड़ा एवं राज्य का खजाना भी खाली हो गया और इस सबके लिए कालबर्ट और उनकी वाणिज्यवादी नीतियाँ घृणा और आलोचना की पात्र बनीं जिससे वाणिज्यवाद का ढाँचा हिल गया।
2. **प्राकृतिक सहयोग की उपेक्षा**—वाणिज्यवाद में **प्राकृतिक सहयोग** (Natural Harmoney) की उपेक्षा की भावनाओं को कोई महत्त्व नहीं दिया गया जिनको बाद में आर्थिक विचारों में काफी महत्त्व मिलने वाला था। वास्तव में, इन विचारकों ने हितों के प्राकृतिक सहयोग से संघर्ष की कल्पना की, जैसा कि **फोट्रे** ने लिखा कि "निजी लाभ, सार्वजनिक लाभ में बाधक सिद्ध होते है।" इस प्रकार इनकी अन्य नीतियों ने भी निराशावाद को जन्म दिया। इससे लोगों का वाणिज्यवाद में विश्वास कम होने लगा।
3. **एकांगी विकास**—वाणिज्यवाद के अन्तर्गत स्वर्ण और चाँदी को एकत्रित करने के लिए निर्माण-उद्योग को जरूरत से अधिक महत्त्व दिया गया। यहाँ तक कि सारे साधनों को उस ओर प्रवाहित कर दिया गया और कृषि को कोई महत्त्व नहीं

TOUCH 'n PASS

दिया गया। इस प्रकार **एकांगी विकास** हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि कृषि-पक्ष को लेकर वाणिज्यवाद की आलोचना की गई जो इसके पतन का कारण बनी।

4. **बहुमूल्य धातु पर अधिक बल**—वाणिज्यवादी विचारकों ने **बहुमूल्य धातुओं पर ही अधिक बल दिया। इसे ही उन्होंने देश को शक्तिशाली बनाने का माध्यम माना** लेकिन उनके इस विचार की कटु आलोचना की गई क्योंकि सोने-चाँदी से देश की तमाम आवश्यकताओं को पूर्ण कर उसकी अर्थव्यवस्था को आत्मनिर्भर नहीं बनाया जा सकता था। वास्तव में, उन्होंने साधन और उद्देश्य में भ्रान्ति पैदा कर दी। सोना-चाँदी साधन तो हो सकते हैं, उद्देश्य नहीं लेकिन वाणिज्यवादियों ने बहुमूल्य धातुओं को ही **'जादुई चिराग'** समझ लिया। इस कारण लोगों में वाणिज्यवाद के प्रति अविश्वास की भावना पैदा होने लगी।
5. **गलत विदेशी व्यापार नीति**—वाणिज्यवादियों की यह नीति भी आलोचना की शिकार बनी कि **बिना दूसरे देशों से आयात किये निरन्तर निर्यात किया जा सकता है और सदैव ही भुगतान सन्तुलन अनुकूल किया जा सकता है।** वास्तव में, इस प्रकार की नीति अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सफल नहीं होती, "निर्यात आयात का भुगतान करते हैं।" जब केवल निर्यात ही किया जाता है तथा दूसरे देशों से आयात नहीं किया जाता तो दूसरे देश भी बदले की भावना से आयात पर नियन्त्रण लगा देते हैं जिसके फलस्वरूप सदैव व्यापार-सन्तुलन पक्ष में नहीं रहता। इस भावना ने वाणिज्यवादी व्यापार-सन्तुलन की नीति पर कुठाराघात किया।
6. **स्वहित एवं बिना हस्तक्षेप की नीति**—वाणिज्यवादियों ने अपने अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आर्थिक एवं व्यापारिक जीवन पर तरह-तरह के नियन्त्रण लगाये, फिर भी वे अपूर्ण थे क्योंकि आर्थिक जीवन एवं औद्योगिक साहस को नियन्त्रित करने के लिए राज्य के पास बहुत कम शक्ति थी। इन्हें नियन्त्रित करने के लिए **सांख्यिकी सूचनाएँ** अपर्याप्त थीं। इसके अतिरिक्त एडम स्मिथ की **'वैल्थ ऑफ नेशन्स'** के 1776 में प्रकाश के साथ ही वाणिज्यवाद की नींव हिल गई क्योंकि उन्होंने इस नीति का खण्डन किया तथा **स्वहित एवं बिना हस्तक्षेप की नीति** (*Laissez-faire* Policy) का समर्थन किया और इन सिद्धान्तों ने वाणिज्यवाद की जड़ें काट दीं जिससे वाणिज्यवाद का पतन होने लगा।

उपर्युक्त कारण वाणिज्यवाद के पतन में सहायक हुए। इसके साथ ही यह विचारधार अपने आपको बदलते हुए युग की परिस्थितियों के साथ समन्वित नहीं कर सकी जिससे इसका अन्त होने लगा।

प्र.3. वाणिज्यवाद का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
Critically evaluate mercantilism.

उत्तर

वाणिज्यवाद का आलोचनात्मक मूल्यांकन
(Critical Evaluation of Mercantilism)

वाणिज्यवादियों के आर्थिक विचारों की कटु आलोचना की जाती है। 18वीं शताब्दी के अन्त में एडम स्मिथ ने अपनी पुस्तक **'वेल्थ ऑफ नेशन्स'** के एक-चौथाई भाग में केवल वाणिज्यवाद की ही आलोचना की है। इसके अतिरिक्त वाणिज्यवाद के अन्य आलोचक—मेलन (Melon), फेनिलोन (Fenilon), रिचर्ड कन्टीलन (Richard Cantilon) व रोशर आदि हैं। कुछ प्रमुख आलोचनाएँ इस प्रकार हैं—

1. **अनुकूल व्यापार सन्तुलन** (Favourable Balance of Trade)—वाणिज्यवादियों ने विदेशी व्यापार पर बहुत जोर दिया और वह भी इस रूप में कि अधिक-से-अधिक मात्रा में माल निर्यात करना चाहिए और आयात सम्भवत: कम-से-कम हो। यह सोचना मूर्खतापूर्ण था कि समस्त देशों में आयत कम तथा निर्यात अधिक हो सकते हैं क्योंकि यदि एक देश आयातों पर प्रतिबन्ध लगायेगा तो दूसरे देश को हानि होगी। अत: दूसरा देश भी अपने आयातों पर प्रतिबन्ध लगा देगा। **सर डडले नार्थ** के मतानुसार वणिकवादियों ने विदेशी व्यापार पर तो बल दिया परन्तु आन्तरिक व्यापार के महत्त्व को भुला दिया जो कि उचित नहीं है क्योंकि आन्तरिक व्यापार की नींव पर ही विदेशी व्यापार की दीवार खड़ी की जा सकती है।
2. **सोना-चाँदी को विशेष महत्त्व** (Special Importance of Gold-Silver)—वाणिज्यवादियों ने सोना, चाँदी आदि बहुमूल्य धातुओं पर विशेष बल दिया और इनकी प्राप्ति के अनेक साधन बताये। आलोचकों का कहना है कि वाणिज्यवादियों ने सोने, चाँदी पर आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया जो कि उचित नहीं था। मनुष्य को अपनी

TOUCH 'n' PASS

आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए वस्तुएँ व सेवाएँ चाहिए क्योंकि मनुष्य केवल सोने-चाँदी से ही अपना पेट नहीं भर सकता। यद्यपि सोना, चाँदी आदि बहुमूल्य धातुएँ विनिमय के माध्यम का कार्य कर रही थीं परन्तु फिर भी ध्येय मनुष्य का कल्याण ही होना चाहिए था। संक्षेप में, वाणिज्यवादियों की सबसे बड़ी गलती यह है कि उन्होंने साधन (सोने-चाँदी) को साध्य (मानवीय कल्याण) मान लिया और साध्य को साधन।

3. **व्यापार को अधिक महत्त्व** (More Importance to Trade)—वाणिज्यवादियों ने व्यापार को आवश्यकता से अधिक तथा कृषि और अन्य प्रकार के उद्योगों को बहुत कम महत्त्व दिया है। वाणिज्यवादियों का मत था कि किसी देश के धन में वृद्धि करने के लिए व्यापार और वाणिज्य को सर्वप्रथम स्थान, उद्योगों को दूसरा स्थान और कृषि को अन्तिम स्थान दिया जाना चाहिए। इस प्रकार का व्यावसायिक विभाजन पूर्णतया अनुपयुक्त है क्योंकि देश के आर्थिक जीवन में कृषि और उद्योगों का निश्चित स्थान है। वे भी व्यापार की भाँति देश के धन में वृद्धि करते हैं और उन्हें किसी भी प्रकार अनुत्पादक नहीं कहा जा सकता।
4. **गलत धारणा** (Wrong Conception)—वाणिज्यवादियों की यह धारणा थी कि एक देश का लाभ दूसरे देश की हानि है। इस प्रकार के भ्रामक विचार का मुख्य कारण यह था कि वाणिज्यवादियों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की प्रकृति को ठीक प्रकार से नहीं समझा गया था। वे यह मानते थे कि एक देश को व्यापार से जो लाभ होता है, वह अन्य देशों की हानि है। वाणिज्यवादी विचारक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के परस्पर लाभपूर्ण होने के विचार को नहीं समझ सके थे। आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धान्त यह बताता है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से दोनों देशों को लाभ होता है और यह आवश्यक नहीं है कि इस प्रकार के व्यापार से किसी देश को प्राप्त होने वाला लाभ आवश्यक रूप से किसी अन्य देश को हानि पहुँचाएगा।
5. **आन्तरिक नियन्त्रण** (Internal Control)—आलोचकों ने वाणिज्यवादियों द्वारा जनसंख्या, भूमि, व्यापार आदि पर लगाये गये विभिन्न नियन्त्रणों की कटु आलोचना की है क्योंकि इन नियन्त्रणों से व्यक्तिगत स्वतन्त्रता लगभग समाप्त हो गई थी।
6. **अस्पष्ट व संकीर्ण दृष्टिकोण** (Ambiguous and Narrow Approach)—
   (i) वे उपयोग मूल्य तथा विनिमय मूल्य में अन्तर स्पष्ट नहीं कर पाये।
   (ii) मूल्य तथा उद्योग सम्बन्धी उनके विचार उलझे हुए तथा स्पष्ट थे।
   (iii) वे व्यक्ति और राज्य दोनों के हितों को एक-दूसरे के विपरीत मानते थे। इस दृष्टि से उनका दृष्टिकोण संकुचित था।

निष्कर्ष (Conclusion)

आर्थिक विचारों को स्वतन्त्र रूप से प्रस्तुत करने में वाणिज्यवादियों का योग महत्त्वपूर्ण रहा है। आधुनिक अर्थशास्त्री **जे० एम० कीन्स** ने भी वाणिज्यवादी सिद्धान्तों के महत्त्वपूर्ण सत्य को ढूँढ़ने का प्रयत्न किया है। कीन्स ने अपने ब्याज एवं मुद्रा (Money) सम्बन्धी विचारों का आधार वाणिज्यवादी नीतियों को ही बनाया है। **कीन्स के मतानुसार** राष्ट्र के विकास के लिए धन की आवश्यकता पड़ती है तथा ब्याज की निम्न दर पर ही उद्योगों की उन्नति निर्भर करती है। वाणिज्यवादियों के सिद्धान्तों ने ही विकसेल (Wicksel) के ब्याज सम्बन्धी विचारों तथा कीन्स के मुद्रा सम्बन्धी विचारों को प्रभावित किया। इस प्रकार स्पष्ट है कि आज वाणिज्यवाद में कुछ दोष अवश्य दृष्टिगोचर होते हो परन्तु यह वास्तविकता है कि जिन परिस्थितियों में उसका जन्म एवं विकास हुआ था, वे सर्वथा उसके अनुकूल थे।

प्र.4. प्राचीन एवं नवीन वाणिज्यवाद में अन्तर लिखिए।
Write the difference between old and new mercantilism.

उत्तर

प्राचीन एवं नवीन वाणिज्यवाद में अन्तर
(Difference between Old and New Mercantilism)

दोनों वाणिज्यवादी नीतियों में लाक्षणिक समानता होते हुए भी उनमें कुछ मूलभूत अन्तर है। **प्रो० हेने** ने प्राचीन वाणिज्यवाद व नवीन वाणिज्यवाद की तुलना करते हुए लिखा है—"युद्धोत्तरकाल का यह नव-वाणिज्यवाद प्राकृतिक रूप से अनेक बातों में प्राचीन वाणिज्यवाद से अलग है और विशेषकर इसमें कि इसने एक अधिक आदर्शवादी दार्शनिकता की अपील की है। यह (नवीन वाणिज्यवाद) आर्थिक जीवन के अधिक प्रभावयुक्त सामाजिक नियोजन पर या तो तानाशाही के अन्तर्गत पूर्णत:

केन्द्रीकरण के माध्यम से अथवा प्रजातान्त्रिक शासन-प्रणाली के अन्तर्गत सामूहिक क्रिया के माध्यम से आधारित है। साथ ही यह सांख्यिकी की सही सूचनाओं पर भी आधारित है।'' प्राचीन वाणिज्यवाद व नवीन वाणिज्यवाद में मुख्य अन्तर हैं—

1. **महत्त्वपूर्ण आदर्श** (Important Indealism)—नवीन वाणिज्यवाद प्राचीन वाणिज्यवाद की तुलना में, अधिक महत्त्वपूर्ण आदर्शों पर आधारित है। प्राचीन विचारक इसलिए देश में सोना और चाँदी संग्रह करते थे क्योंकि वह शक्ति का प्रतीक था परन्तु नवीन विचारक इसलिए स्वर्ण और चाँदी संग्रह करते हैं क्योंकि इसे विनिमय का माध्यम माना जाता है एवं विदेशी भुगतान इसी से किये जाते हैं। इसका मूल कारण समस्त देशों द्वारा सोने को भुगतान के रूप में सामान्य रूप से स्वीकृत करना है।
2. **कृषि को भी उचित प्रोत्साहन** (Proper Encouragement to Agriculture)—पुराने वाणिज्यवादी विचारक निर्माण-उद्योगों को बहुत अधिक महत्त्व देते थे क्योंकि उनका विश्वास था कि इन वस्तुओं का निर्यात कर वे अधिक स्वर्ण प्राप्त कर सकते थे। कृषि को कोई महत्त्व प्राप्त नहीं था परन्तु **नवीनधारा कृषि** एवं **उद्योग** दोनों को समान रूप से महत्त्व देती है क्योंकि इससे ही राष्ट्र का सन्तुलित विकास हो सकता है और दोनों का विदेशी व्यापार में समान महत्त्व है।
3. **शक्तिशाली राष्ट्र पर जोर** (More Emphasis on Strong National)—प्राचीन वाणिज्यवादी एक शक्तिशाली राष्ट्र पर जोर देते थे तथा कच्चा माल प्राप्त करने के लिए उपनिवेशों की स्थापना आवश्यक मानते थे एवं उपनिवेशों पर भी तरह-तरह के नियन्त्रण लागू करते थे। आज भी राज्य की शक्ति को बढ़ाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं लेकिन राष्ट्र के भीतर ही के साधनों द्वारा आत्म-निर्भरता पर जोर दिया जाता है। राष्ट्रवाद की प्रगति के साथ उपनिवेशवाद भी समाप्त हो रहे हैं एवं उनकी स्वतन्त्रता पर अधिक बल दिया जा रहा है।
4. **नियोजित अर्थव्यवस्था** (Planned Economy)—नवीन वाणिज्यवाद केन्द्रीकरण अथवा प्रजातान्त्रिक ढंग से आर्थिक जीवन के 'सामाजिक नियोजन' पर जोर देता है और इस नियोजन के पीछे आज के युग में वैज्ञानिक एवं पूर्ण सांख्यिकी का आधार है परन्तु प्राचीन युग में वाणिज्यवादियों के पास नियोजित अर्थव्यवस्था का कोई आधार नहीं था और न ही सांख्यिकी इतनी विकसित हुई थी।
5. **उत्पादन के साधन** (Factors of Production)—प्राचीन वाणिज्यवादी विचारक भूमि और श्रम को ही उत्पत्ति का साधन मानते थे एवं उनकी दृष्टि में अन्य साधनों का महत्त्व नहीं था। यह इसलिए सम्भव हो सकता है कि उस समय उद्योगों का इतना अधिक विकास नहीं हुआ था परन्तु आजकल उत्पत्ति के पाँचों-भूमि, श्रम, पूँजी, साहस और संगठन—साधनों को समान महत्त्व दिया जाता है।
6. **अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग** (International Co-operation)—प्राचीन वाणिज्यवादी राष्ट्रीयता के इतने कट्टर समर्थक थे कि अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग एवं शान्ति की ओर उनका ध्यान बिलकुल ही नहीं था परन्तु आज वाणिज्यवाद इस बात में भिन्न है कि राष्ट्रीयता की भावना के साथ ही साथ विश्व शान्ति की ओर भी देशों का ध्यान है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-विभाजन एवं निकट सम्पर्क ने इसे सम्भव बनाया है।
7. **सन्तुलित व्यापार सन्तुलन** (Balanced Trade Equilibrium)—प्राचीन वाणिज्यवादी इस बात पर जोर देते थे कि निर्यात को अधिक-से-अधिक बढ़ाया जाए एवं आयात बिलकुल ने किया जाए, ताकि देश का धन बाहर न जा सके तथा देश में बाहर से धन आता रहे परन्तु आज यह मान्यता समाप्त हो गई है क्योंकि केवल निर्यात करना सम्भव नहीं है। आजकल देश आयात और निर्यात दोनों का समर्थन कर रहे है और अपने व्यापार-सन्तुलन को सन्तुलित करने का प्रयत्न करते हैं।
8. **वस्तु का मूल्य** (Price of Goods)—प्राचीन वाणिज्यवादी विचारकों ने वस्तु के मूल्य के सम्बन्ध में तीन विचार प्रस्तुत किये—(अ) या तो वस्तु का मूल्य उसकी उपयोगिता के बराबर था या (ब) उत्पादन लागत के बराबर था या (स) उस पर व्यय किये गये श्रम के बराबर होता है परन्तु आज, पुराने वाणिज्यवादियों के मूल्य के विभिन्न विचारों को मिलाकर कहते हैं कि किसी वस्तु का मूल्य उसकी माँग व पूर्ति अर्थात् उपयोगिता व लागत, दोनों से ही तय होता है।
9. **विभिन्न व्यवसायों की उत्पादकता** (Productivity of Different Professions)—प्राचीन वाणिज्यवादियों ने केवल व्यापार व दस्तकारी को उत्पादक व्यवसाय माना। उनके विचार में वकील, शिक्षक, चिकित्सक, अनुत्पादक थे किन्तु आधुनिक वाणिज्यवादी शिक्षक, वकील व चिकित्सक आदि को भी उत्पादक वर्ग में रखते हैं।

TOUCH 'n' PASS

प्र.5. प्रकृतिवाद को जन्म देने वाले कारकों का उल्लेख कीजिए।
Mention the factors that gave rise to physiocracy.

उत्तर

प्रकृतिवाद को जन्म देने वाले कारक
(Factors that Gave Rise to Physiocracy)

मोटे तौर पर प्रकृतिवाद को जन्म देने वाले कारणों को नीचे लिखे खण्डों में विभाजित किया जा सकता है—

1. **फ्रांस की बिगड़ती हुई राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ** (Deteriorating Political and Economic Conditions of France)—फ्रांस के वित्त मन्त्री कोलबर्ट ने राज्य में वाणिज्यवादी नीतियों को अपनाया जिसमें केवल व्यापार तथा उद्योगों को प्रोत्साहन दिया गया तथा कृषि की अवहेलना की गई परन्तु **कोलबर्ट** के समय में ही अत्यधिक व्यय के कारण, फ्रांस की आर्थिक स्थिति बहुत दयनीय हो गई थी और तमाम प्रयत्नों के बावजूद कोलबर्ट की सारी योजनाएँ असफल हो गई थीं। अत्यधिक कर के भार से लोगों में असन्तोष की भावना पनपने लगी थी। फ्रांस की दयनीय स्थिति से प्रभावित होकर **बाइस गिलबर्ट** एवं **वाबेन** ने जिन सुधारों का सुझाव दिया, उन पर कोई अमल नहीं किया गया। यह प्रकृतिवाद के उदय का प्रथम कारण था।
2. **इंग्लैण्ड में होने वाली कृषि-क्रान्ति**—(Agricultural Revolution in England)—कृषि के क्षेत्र में इंग्लैण्ड में जो क्रान्ति हुई, उसने प्रकृतिवाद के उदय में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्रकृतिवादी लेखकों को इंग्लैण्ड में बड़े पैमाने की खेती एवं उसमें लगने वाली बड़ी मात्रा की पूँजी तथा प्राप्त होने वाले लाभ ज्ञात थे तथा इस विचारधारा के प्रमुख लेखक कैने ने स्वयं फ्रांस में कृषि के क्षेत्र में नई विधियों का प्रयोग किया। इसका फल यह हुआ कि फ्रांस में एक नये भूमिपतियों के साधारण वर्ग का उदय हुआ जिससे भूमि के महत्त्व को प्रोत्साहन मिला और प्रकृतिवाद की प्रतिष्ठा बढ़ी।
3. **वाणिज्यवादी नीतियाँ** (Mercantilistic Policies)—सोलहवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक वाणिज्यवादी विचारों का खूब बोलबाला रहा परन्तु धीरे-धीरे उनके सिद्धान्त दोषपूर्ण सिद्ध होने लगे थे। मेलन ने बताया कि स्वर्ण की अपेक्षा जीवन की आवश्यक वस्तुएँ अधिक महत्त्वपूर्ण होती हैं। इसी प्रकार अन्य विद्वानों ने वाणिज्यवाद की विदेशी व्यापार सम्बन्धी नीति, करारोपण सम्बन्धी नीति, विभिन्न व्यवसायों की उत्पादकता तथा औद्योगिक व्यापार सम्बन्धी नीति की कड़ी आलोचना की। इन आलोचनाओं ने जहाँ वाणिज्यवाद को जर्जर बनाया, वहीं दूसरी ओर प्रकृतिवाद को जीवन प्रदान करने में पर्याप्त योग दिया। निश्चय ही इन आलोचनाओं में तत्कालीन समसयाओं का समाधान निहित था जिससे ये विचार जनप्रिय हो गये।
4. **आत्मगत शक्तियाँ** (Subjective Forces)—वाणिज्यवादी नीतियों को बदलने में कुछ आत्मगत शक्तियों (Subjective Forces) ने भी महत्त्वपूर्ण भाग अदा किया है। इसी समय फ्रांस के दार्शनिक क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे और व्यक्तिवाद तथा स्वतन्त्रतावादी दर्शन के उदय होने के कारण व्यक्ति को अधिक स्वतन्त्रता देने तथा सरकारी हस्तक्षेप को कम करने की माँग की जा रही थी जिसके कारण वाणिज्यवाद की नींव और कमजोर हो गयी। प्रकृतिवादी विचारधारा व्यक्तिवाद और स्वतन्त्रतावाद को स्वीकार करके चली थी, इसीलिए वह फ्रांस के व्यक्तियों में अधिक माननीय हो गयी थी। फ्रांस में उत्पन्न होने वाली इन नयी दार्शनिक शक्तियों ने परिवर्तन और विकास के उपयुक्त वातावरण पैदा कर दिया।
5. **विज्ञान की नवीन खेजों का प्रभाव** (Influence of New Inventions of Science)—इन्हीं दिनों में विज्ञान की विभिन्न शाखाओं, जैसे—भौतिक विज्ञान, रासायनिक विज्ञान एवं जन्तु-विज्ञान आदि सभी में महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान हो रहे थे। उदाहरणार्थ, न्यूटन **'भूमि के गुरुत्वाकर्षण नियम'** (Law of Gravitation) की खोज कर चुका था और **कैने** (Dr. Quesnay) ने अनेक खेती सम्बन्धी एवं मानव-शरीर रचना सम्बन्धी नियमों की खोज कर ली थी। इन खोजों ने तथा हाब्स, लॉक आदि विचारों के विचारों ने लोगों को यह भली-भाँति समझा दिया था कि प्रकृति एक निश्चित एवं निर्धारित नियम के अनुसार अपना कार्य करती है और वह सभी व्यक्तियों के लिए हितकर है। इस प्रकार प्रकृति के प्रति लोगों की बढ़ती हुई आस्था ने उन सभी वाणिज्यवादी सिद्धान्तों पर से जो प्रकृति के सिद्धान्तों से मेल नहीं खाते थे, विश्वास हटा दिया और प्रकृतिवाद के विकास में सहयोग दिया।

TOUCH 'n PASS

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि तत्कालीन आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ ही प्रकृतिवाद के प्रादुर्भाव के लिए उत्तरदायी थी। **प्रो० हेने** के मतानुसार, "उस समय की करारोपण तथा मुद्रा सम्बन्धी सरकार की नीतियाँ समाज के आन्तरिक संगठन व विकास के लिए हानिकारक थीं और इन्हीं की प्रतिक्रियास्वरूप प्रकृतिवादी विचारधारा का प्रादुर्भाव हुआ।"

प्र.6. प्रकृतिवादी एवं वाणिज्यवादी का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।

Make a comparative study of physiocratic and mercantilists ideas.

उत्तर

प्रकृतिवादी एवं वाणिज्यवादी विचारों का तुलनात्मक अध्ययन
(Comparative Study of Physiocratic and Mercantilist Ideas)

जैसा कि प्रारम्भ में ही स्पष्ट किया जा चुका है प्रकृतिवादी सिद्धान्त एवं उसकी व्यावहारिक नीतियाँ, उस समय फ्रांस में फैली हुई वाणिज्यवादी नीतियों के विरोध में एक प्रतिक्रिया के रूप में विकसित हुई। प्रकृतिवादियों ने वाणिज्यवादियों के सिद्धान्तों का विरोध कर, उनके दोषों को सुधारने का प्रयत्न किया। स्पष्ट है कि इन दोनों के विचारों में कुछ मूलभूत अन्तर थे जिन्हें नीचे चार्ट में दर्शाया गया है—

क्र०सं०	अन्तर का आधार	वाणिज्यवादी	प्रकृतिवादी
1.	विचारधारा	यह कोई संगठित विचारधारा नहीं थी बल्कि दो-तीन शताब्दियों में फैली हुई अर्थनीति का वर्णन है।	इसे एक विचारधारा कहा जा सकता है क्योंकि इनके विचारों में बहुत अधिक समानता है।
2.	दृष्टिकोण	यह भौतिकवादी दृष्टिकोण पर आधारित है। उन्होंने अपनी नीतियों पर दर्शन, धर्म तथा नीतिशास्त्र आदि का प्रभाव नहीं पड़ने दिया।	ये केवल भौतिकवादी नहीं थे। यह एक दार्शनिक सिद्धान्त पर आधारित है। उनका दर्शन यह था कि सारे संसार में ईश्वर का विधान है। अतः अर्थव्यवस्था इसी के अनुकूल होनी चाहिए।
3.	सम्पत्ति का स्रोत	बहुमूल्य धातुओं, जैसे—सोना, चाँदी को ही सम्पत्ति, का स्रोत मानते थे।	शुद्ध उत्पादन जो कृषि से ही प्राप्त होता है, को ही सम्पत्ति का स्रोत मानते थे।
4.	विदेशी व्यापार	सोने, चाँदी को प्राप्त करने के लिए विदेशी व्यापार को बहुत महत्त्व दिया।	विदेशी व्यापार को अनुत्पादक मानते थे।
5.	व्यापार सन्तुलन	अनुकूल व्यापार सन्तुलन के पक्ष में थे।	ये अनुकूल व्यापार सन्तुलन के विपक्ष में थे।
6.	राजकीय हस्तक्षेप	राजकीय हस्तक्षेप को आवश्यक मानते थे।	बिना-हस्तक्षेप (Laissez-Fair) की नीति के समर्थक थे।
7.	उत्पत्ति के साधन	उत्पत्ति के साधनों में भूमि एवं श्रम को महत्त्व दिया।	भूमि को ही उत्पादक माना।
8.	कर-प्रणाली	व्यक्ति से राज्य से प्राप्त किये गये लाभों के आधाार पर ही कर लिया जाना चाहिए।	एक-कर प्रणाली तथा प्रत्यक्ष कर के पक्ष में थे।
9.	ब्याज	ब्याज लेना उचित ठहराया क्योंकि मुद्रा को ब्याज पर देने से निर्धन व्यापारी उन्नति कर सकते हैं।	केवल ऐसी पूँजी पर ब्याज लेना उचित ठहराया जिसका विनियोग कृषि व्यवसाय में वास्तविक उत्पादन प्राप्त करने के लिए किया जाता है।
10.	धन का वितरण	धन के वितरण पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया।	इन्होंने विशेषकर कैने ने 'Tableau Economique' द्वारा धन के वितरण को महत्त्वपूर्ण माना।

TOUCH 'n' PASS

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. वाणिज्यवाद को जन्म देने वाले कारणों का वर्णन कीजिए।
Describe the causes that gave rise to mercantilism.

उत्तर

वाणिज्यवादी को जन्म देने वाले कारण
(Causes that Gave Rise to Mercantilism)

प्रो० हेने ने वाणिज्यवाद को जन्म देने वाले कारणों को मोटे तौर पर दो भागों में वर्गीकृत किया है—
(i) दूर के अभौतिक कारण और (ii) समीप के भौतिक कारण।

(I) दूर के अभौतिक कारण—16वीं शताब्दी के प्रारम्भ में बहुत-से सामाजिक व धार्मिक आन्दोलनों ने वाणिज्यवाद के विकास के लिए अनुकूल वातावरण तैयार कर दिया था। इन आन्दोलनों में सुधारवाद (Reformation) तथा पुनर्जागरण (Renaissance) मुख्य थे।

(i) **सुधारवाद** (Reformation)—यह एक धार्मिक आन्दोलन था जिसने **रोमन कैथोलिक** चर्च के विरुद्ध आवाज उठाई और नए प्रोटेस्टेण्ट चर्च की स्थापना की। कैथोलिक चर्च आवश्यकताओं को कम करने, आत्मसंयम रखने तथा ईमानदारी का जीवन बिताने की सीख देते थे। इनका कहना था कि मूल्य लागत से अधिक नहीं होना चाहिए, ब्याज नहीं लिया जाना चाहिए। ईसा का कथन है कि "धनी आदमी स्वर्ग नहीं पा सकता" आदि। सुधारवाद ने इन विचारों का खण्डन किया और कैथोलिक चर्च के विरुद्ध विद्रोह करके सभी मान्यताओं को हिला दिया। सुधारवाद आन्दोलन फ्रांस के उन नवयुवकों ने चलाया था जो जर्मनी से शिक्षा पाकर लौटे थे। इन्हीं लोगों ने प्रोटेस्टेण्ट धर्म की स्थापना की एवं मुद्रा-प्राप्ति की क्रियाओं को मनुष्य के लिए आवश्यक ठहराया जिसके परिणामस्वरूप **व्यक्तिवाद** को प्रेरणा मिली। उसका मुख्य उद्देश्य वाणिज्य एवं स्वतन्त्र विनिमय-पद्धति को सुगम बनाना था। प्रोटेस्टेण्ट की बातें लोगों को अधिक पसन्द आयीं और वे सोना, चाँदी, व्यापार, लाभ व ब्याज आदि को ठीक समझने लगे। **काल्विन** (1509-1564) तो वाणिज्य को धर्म के अनुकूल ही मानते थे। जहाँ सुधारवादियों ने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के विचारों को बढ़ाया, वहाँ उन्होंने एक शक्तिशाली राज्य के निर्माण पर भी जोर दिया क्योंकि सामन्तशाही व गिरजों की शक्ति समाप्त होने के बाद व्यक्तियों, उद्योग-धन्धों व व्यापार की रक्षा करने वाला कोई नहीं रह गया था। सुधारवाद ने राजकीय गिरजाघर स्थापित किए व राजा को उनका सर्वोच्च अधिकारी बनाया।

हेनरी अष्टम (Henry VIII) ने, जो राज्य का सम्राट था, अपने आपको सब गिरजाघरों का मुख्य अधिकारी घोषित किया। यद्यपि इसके बाद भी दैविक अधिकारों (Divine rights) की चर्चा चलती रही तथापि लोग इस प्रकार के अधिकारों पर प्रमाण के आधार पर प्रश्न उठाने लगे और आर्थिक मामलों में तर्क से काम लेने लगे। संक्षेप में, **सुधारवाद आन्दोलन के फलस्वरूप धर्म का भय एवं प्रभाव कम हो गया तथा आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में परिवर्तन सरल हो गये।**

(ii) **पुनर्जागरण** (Renaissance)—सुधारवाद आन्दोलन से भी अधिक महत्त्वपूर्ण आन्दोलन पुनर्जागरण एवं मानववाद (Humanism) आन्दोलन था। इन आन्दोलनों का जन्म वस्तुत: मध्ययुगीन परिस्थितियों की प्रतिक्रियास्वरूप हुआ था। इन आन्दोलनों ने रूढ़िवादिता तथा पुराने अन्धविश्वासों को समाप्त कर नवीन मार्ग प्रशस्त किया। नवीन विचारकों ने इस बात पर जोर दिया कि स्वर्ग और नरक इस संसार में ही है। यदि हम अपने जीवन को सुखी बनाना चाहते हैं तो इसी संसार में ही बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

इस प्रकार 15-16वीं शताब्दी में ग्रीस और रोम के युग की सांस्कृतिक चेतना का फिर से जागरण हुआ जो कि विश्व के इतिहास में **'रिनैसा'** (Renaissance) के नाम से प्रसिद्ध है। पुनर्जागरण आन्दोलन के विचारकों में **एमसैर, बैकन** तथा **रेबाइस** आदि दार्शनिक, **गैलीलियो, कोपरनिकस, ब्रूनो** व **न्यूटन** आदि वैज्ञानिक तथा **बिशी** एवं **ऐन्जिलों** आदि कलाकार सम्मिलित थे जिन्होंने अपने लेखों, आविष्कारों एवं कला से अज्ञान रूपी अन्धकार का अन्त करके मनुष्यों में नवीन जागरण का संचार किया। इसी युग में मुद्रण का आविष्कार हुआ जिसने ज्ञान-प्रसार को सम्भव बनाया। अर्थशास्त्र

TOUCH 'n' PASS

का क्षेत्र भी उपेक्षित नहीं रहा। आर्थिक क्षेत्र में **पुनर्जागरण आन्दोलन ने व्यापारिक पूँजीवाद** (Commercial Capitalism) की स्थापना को प्रोत्साहित किया।

इस प्रकार मध्य युग से आधुनिक युग के संक्रमण काल में ऐसे बहुत-से परिवर्तन हुए जिन्होंने यूरोप में शक्तिशाली राज्यों का निर्माण किया। इन राज्यों की आपस में एक-दूसरे से अधिक शक्तिशाली होने की भावना ने प्रतियोगिता एवं वैमनस्य को जन्म दिया। तत्कालीन आर्थिक दशाओं में धन को अधिक महत्त्व दिया गया। राज्यों ने भी अपनी शक्ति को बढ़ाने के लिए धन को आवश्यक माना और इन्हीं सब परिस्थितियों ने वाणिज्यवाद को जन्म दिया।

(II) समीप के भौतिक कारण—वाणिज्यवादी विचारधारा को जन्म देने में उस उन्नति का हाथ भी था जो राजनीतिक तथा आर्थिक क्षेत्र में 15वीं शताब्दी के अन्त में हो रही थी। इस उन्नति ने भी राष्ट्रों के निर्माण में योगदान दिया। इसके अन्तर्गत निम्न कारणों का अध्ययन किया जाएगा—

(i) **आर्थिक कारण** (Economic Causes)—आर्थिक कारणों में निम्न बातें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जिन्होंने सांस्कृतिक, धार्मिक व राजनीतिक कारणों के साथ मिलकर वाणिज्यवाद को जन्म दिया।

(क) **सामन्तवादी अर्थव्यवस्था का अन्त**—15वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में सामन्तवाद का पतन आरम्भ हो गया था और साथ ही सामन्तवादी अर्थव्यवस्था के पतन भी परिलक्षित होने लगे थे। सामन्तवादी युग में आत्म-निर्भर अर्थव्यवस्था प्रचलित थी और आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन स्वयं ही करने की चेष्टा की जाती थी। अधिकतर उपभोग्य वस्तुओं का ही उत्पादन किया जाता था तथा व्यापारिक फसलों की खेती नहीं की जाती थी। उत्पादन स्थानीय क्षेत्र में ही किया जाता था—अन्य स्थानों से न कोई वस्तु मँगाई जाती थी और न भेजी जाती थी। फलत: बाजार का क्षेत्र भी बहुत संकुचित था। कृषि-क्षेत्र में भूस्वामियों का आधिपत्य था। इस तरह सामन्तवादी युग में आर्थिक दशाएँ शोचनीय थीं। यह युग शोषण, गरीबी एवं अत्याचार का युग था जिससे कृषक तंग आ चुके थे एवं विद्यमान व्यवस्था को बदलना चाहते थे। अत: सामन्तवाद के साथ ही साथ यह व्यवस्था समाप्त होने लगी।,

(ख) **नये-नये देशों एवं मार्गों की खोज**—इस युग में दिशा-सूचक यन्त्र (Marine Compass) का आविष्कार हुआ जिससे नये-नये देशों एवं मार्गों की खोज करने में नाविकों को बड़ी सुविधा हुई। 1492 में अमेरिका तथा 1497 में भारत के नये मार्गों का पता चला। इन देशों से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हुए, बाजारों का विस्तार हुआ और उत्पादन के पैमाने में वृद्धि हुई। इन बातों ने विदेशी व्यापार को प्रोत्साहित किया।

(ग) **मुद्रा का आविष्कार**—मध्यकालीन युग में लोगों को वस्तु-विनिमय की कठिनाइयाँ महसूस होने लगी थी, अत: मुद्रा की खोज की गई एवं वस्तु-विनिमय की कठिनाइयों को दूर किया गया। इससे क्षेत्रीय निर्भरता ने राष्ट्रीय निर्भरता का रूप धारण कर लिया। मुद्रा के प्रादुर्भाव से विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन मिला। मालिक और मजदूरों के सम्बन्ध व्यक्तिगत-स्तर के स्थान पर मुद्रा पर आधारित होने लगे एवं वस्तुओं के कीमत-निर्धारण में प्रतियोगिता होने लगी।

(घ) **सोने व चाँदी की नई-नई खानों की खोज**—मुद्रा के आविष्कार के कारण सोने या चाँदी की आवश्यकता हुई क्योंकि इन धातुओं में सिक्कों का ढालना प्रारम्भ हो गया था। व्यापार में वृद्धि होने के कारण सोने एवं चाँदी की माँग भी बढ़ने लगी क्योंकि विनिमय के लिए अधिक मात्रा में सिक्कों की आवश्यकता होने लगी। सोने व चाँदी की बढ़ती हुई माँगों को पूरा करने के लिए नई-नई खानों का पता लगाने के प्रयत्न किये गये।

(ङ) **व्यापार का आधिक्य**—यूरोप के प्रत्येक देश में सोने या चाँदी की खानें नहीं थीं। अत: इन धातुओं को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक हो गया कि विदेशी व्यापार आधिक्य पक्ष में रखा जाए और अन्य देशों से भुगतान के रूप में सोने एवं चाँदी को प्राप्त किया जाए किन्तु व्यापार को बढ़ाने के लिए यह आवश्यक था कि वस्तुओं की पूर्ति हो। अत: उद्योग-धन्धों का महत्त्व बढ़ने लगा एवं कृषि का महत्त्व कम होने लगा।

(च) **बैंकिंग का विकास**—व्यापार तथा उद्योग-धन्धों की उन्नति ने बचत एवं विनियोग को प्रोत्साहित किया जिससे बैंकिंग संस्थाओं की स्थापना को बल मिला। बैंकिंग के विस्तार ने स्वयं व्यापार व उद्योग-धन्धों को आगे बढ़ाया—इस प्रकार ये दोनों एक-दूसरे के विकास में पूरक सिद्ध हुए।

(छ) **नये मजदूर-वर्ग का जन्म**—नये-नये उद्योग-धन्धों की स्थापना से एवं कृषि में जागीरदारी प्रणाली समाप्त होने के कारण एक नये मजदूर-वर्ग का जन्म हुआ जिसके साथ कई श्रमिक समस्याओं का भी प्रादुर्भाव हुआ। इनमें वितरण की समस्या प्रमुख थी—यही समस्या आगे चलकर अर्थ-विज्ञान का आधार बनी।

TOUCH 'n' PASS

(ज) **मुद्रा-स्फीति**—मुद्रा की पूर्ति तत्कालीन स्थितियों में सरलता से सम्भव होने के कारण सारा यूरोप भयंकर मुद्रा-स्फीति से पीड़ित हो गया। कीमतें तीव्र गति से बढ़ने लगी जिससे उपभोक्ताओं का कष्ट बढ़ता गया, सरकारी व्यय में वृद्धि हुई और इस बढ़ते हुए व्यय की पूर्ति अधिक करारोपण द्वारा की गई। कीमतों के बढ़ने से उत्पादकों के लाभों में भारी वृद्धि हुई, अत: विनियोग को प्रोत्साहन मिला। वस्तुत: मुद्रा-स्फीति ने प्राचीन अर्थव्यवस्था पर एक कड़ा प्रहार किया।

(ii) **राजनीतिक कारण** (Political Factors)—राजनीतिक परिवर्तनों ने भी वाणिज्यवाद के उदय में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। मध्य युग में शासक को ही सर्वशक्तिमान समझा जाता था एवं प्रजा का कोई महत्त्व नहीं था परन्तु इस युग के बाद राष्ट्रीयता की भावना जोर पकड़ने लगी। यूरोप में सामन्तवाद का पतन होने लगा तथा इसके साथ ही उस विश्व-बन्धुत्व की भावना भी समाप्त होने लगी जिसका विकास मध्ययुग में ईसाई धर्म ने किया था। इसके स्थान पर एक शक्तिशाली केन्द्रीय राज्य एवं प्रभावशाली सरकार की स्थापना की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। इंग्लैण्ड के इतिहास में यह परिवर्तन ट्यूडर-शासकों (Tudors) के रूप में परिलक्षित हुआ। राजाओं की शक्ति में न केवल वृद्धि हुई वरन् वह व्यापक भी हो गई। सैद्धान्तिक रूप से राजा को 'प्रजा का पिता' समझा जाने लगा। एक देश में रहने वाले लोग समान हितों से बँध गये एवं राजा का यह कर्त्तव्य हो गया कि वह इन लोगों के हितों की देखभाल करे एवं उनकी वृद्धि करे। इन सब उद्देश्यों को लेकर इंग्लैण्ड फ्रांस, स्पेन तथा पुर्तगाल आदि शक्तिशाली राष्ट्रों का निर्माण हुआ। आर्थिक दृष्टि से इन राज्यों को मजबूत बनाने के लिए वाणिज्यवादी नीतियों का सहारा लिया गया। इस प्रकार वाणिज्यवाद को प्रोत्साहन मिला।

इसके अतिरिक्त तत्कालीन राजनीतिक विचार भी इसी दिशा में विकसित हुए। महान राजनीतिक विचारक **मेक्यावेली** (Machiavelli, 1469-1527) ने एक शक्तिशाली शासक एवं प्रभावपूर्ण सरकार की स्थापना की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने अपनी पुस्तक 'दी प्रिंस' में एक शक्तिशाली राजा की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने यह भी बताया कि राजा को किस प्रकार शक्तिशाली बनना चाहिए। दूसरे राजनीतिक विचारक **जीन बोडिन** (Jean Bodin, 1520-1576) ने **सम्प्रभुता** (Sovereignty) के विचार का प्रतिपादन किया जो राज्य की सबसे बड़ी शक्ति होती है। इस विचारक का उद्देश्य भी एक शक्तिशाली केन्द्रीय राज्य की स्थापना करना था। इन कारणों ने वाणिज्यवादी विचारधारा को प्रोत्साहित किया क्योंकि उस समय व्यावहारिक समस्याओं के कारण लोग ऐसे साधनों की खोज में थे जिससे राज्य को शक्तिशाली बनाया जा सके। यद्यपि इन साधनों का सम्बन्ध आर्थिक पक्ष से था तथापि इस सम्बन्ध में **प्रो० अलेक्जैण्डर ग्रे** अपने विचर प्रकट करते हुए कहते हैं कि **"वाणिज्यवाद एक साधन ही था जिसका वास्तविक उद्देश्य एक शक्तिशाली सरकार एवं राज्य की स्थापना करना था।"** वाणिज्यवाद की इन्हीं नीतियों के कारण शक्तिशाली राज्यों की स्थापना के साधन के रूप में इसे देशों में स्वीकार कर लिया गया।

प्र.2. वाणिज्यवाद की प्रमुख नीतियों एवं सिद्धान्तों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
Describe in detail the main policies and theories of mercantilism.

उत्तर

वाणिज्यवाद की प्रमुख नीतियाँ एवं सिद्धान्त
(Main Policies and Theories of Mercantilism)

वाणिज्यवादियों लेखकों के विचारों के लिए **'सिद्धान्त'** (theory) शब्द का प्रयोग न करके केवल **'विचार'** (views) ही कहना चाहिए, क्योंकि हमको कोई भी ऐसा विषय नहीं दिखायी देता जिसकी व्याख्या क्रमबद्ध रूप से की गयी हो। संक्षेप में वाणिज्यवाद के प्रमुख लेखकों के **सामान्य आर्थिक** विचारों का अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं—

1. वाणिज्यवाद का **आर्थिक विकास पर दृष्टिकोण** (Views of Mercantilism on Economic Development)
   (i) आर्थिक नियोजन को महत्त्व (Significance of Economic Planning),
   (ii) बहुमूल्य धातुओं व मुद्रा का महत्त्व (Significance of Precious Metals),
   (iii) विदेशी व्यापार का महत्त्व (Significance of Foreign Trade),
   (iv) औद्योगिक तथा व्यापारिक नियमन (Industrial and Commercial Regulation)।
2. जनसंख्या सम्बन्धी विचार (Views on Population),
3. ब्याज का सिद्धान्त (Theory of Interest),
4. मूल्य सम्बन्धी मत (Views on Value),
5. उत्पादन के साधन (Factors of Production),

6. राज्य के कार्य (Role of State),
7. विभिन्न व्यवसायों की उत्पादकता (Productivity of Different Professions),
8. कर प्रणाली (Tax System),
9. मुद्रा का सिद्धान्त (Theory of Money),
10. विनिमय की दर का निर्धारण (Theory of Rate of Exchange)।

1. वाणिज्यवाद का आर्थिक विकास पर दृष्टिकोण
(Views of Mercantilism on Economic Development)

वाणिज्यवाद में आर्थिक विकास का कोई क्रमबद्ध सिद्धान्त प्रस्तुत नहीं किया है, परन्तु उन्होंने देश के हित को सबसे अधिक महत्त्व अपने आर्थिक विचारों में दिया है। वाणिज्यवाद के आर्थिक विकास से सम्बन्धित दृष्टिकोण का अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं—

(i) **आर्थिक नियोजन का महत्त्व** (Significance of Economic Planning)—कुछ विद्वानों के मतानुसार **वाणिज्यवादियों ने अपनी नीतियों का जो स्वरूप प्रस्तुत किया उससे आर्थिक नियोजन के प्रारम्भिक स्वरूप का आभास मिलता है। अतः कहा जा सकता है कि वाणिज्यवादी प्रारम्भिक आर्थिक नियोजक थे।** आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत पूर्व निर्धारित आर्थिक नीतियों के आधार पर देश का आर्थिक विकास किया जाता है। वाणिज्यवादियों ने भी कुछ इसी तरह के प्रयत्न देश को शक्ति सम्पन्न बनाने के लिए किए। आर्थिक नियोजन में वांछनीय उद्देश्य की पूर्ति के लिए सरकार के पास समस्त शक्तियाँ केन्द्रित होती है। वाणिज्यवादियों ने भी कई तरह के नियन्त्रण उद्योगों पर लगाये और विभिन्न कानून बनाये। दूसरे शब्दों में वाणिज्यवादियों ने राज्य में समाजवाद की स्थापना की। अपने देश के कल्याण को बढ़ाने के लिए वे राज्य को उचित साधन समझते थे। देश को एक इकाई माना जाता था। व्यक्तिगत हितों के स्थान पर राष्ट्रीय हितों को प्रमुखता दी जाती थी। इस सम्बन्ध में **प्रो० अलेग्जेण्डर ग्रे** अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि, "वाणिज्यवाद सरकारी कार्यों की सर्वत्र व्याप्त रहने वाली एवं सदैव चलने वाली सरकारी नीति थी। ऐसा कोई कार्य नहीं था जिसे सरकार न कर सके। ऐसा कुछ नहीं था जो सरकार को नहीं करना चाहिए यदि उससे सामान्य कल्याण में वृद्धि होती हो।" देश को समृद्धिशाली बनाने के लिए ही उन्होंने सोने, चाँदी और बहुमूल्य धातुओं की प्राप्ति पर बल दिया तथा इस उद्देश्य से विदेशी व्यापार को प्रोत्साहित किया।

वाणिज्यवादियों ने नियोजित **अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित निम्नलिखित बातों पर जोर दिया**—

(अ) वाणिज्यवादी देश का उत्पादन बढ़ाना चाहते थे ताकि देशवासियों की आय में वृद्धि हो सके।

(ब) वाणिज्यवाद के युग में भी अर्थव्यवस्था पर राज्य का प्रभावशाली नियन्त्रण था और केन्द्रीय शासन, आर्थिक नियोजन व संगठन पर जोर दिया गया था।

(स) वाणिज्यवादियों ने जहाँ निर्यातों को अधिक महत्त्व दिया था वहाँ नियोजित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत निर्यातों के साथ-साथ उचित सीमा तक आयातों को भी आवश्यक समझा जाता है।

(द) वाणिज्यवादी भी योजनाबद्ध कार्य की आवश्यकता को स्वीकार करते हैं, परन्तु वाणिज्यवाद के युग में जो योजनाएँ बनाई गई थी वे बहुत स्पष्ट, विस्तृत और पूर्ण नहीं थी। जबकि वर्तमान योजना युग में योजनाएँ बहुत ही विस्तृत, स्पष्ट एवं पूर्ण ढंग से बनाई जाती हैं।

(ii) **बहुमूल्य धातुओं व मुद्रा का महत्त्व** (Significance of Money and Precious Metals)—वाणिज्यवादियों ने सोना व चाँदी को विशेष महत्त्व दिया है। लगभग सभी लेखक सोने व चाँदी को धन का सबसे महत्त्वपूर्ण रूप समझते थे। उनका कथन था कि एक देश उतना ही उन्नत, शक्तिशाली व समृद्ध होगा जितना अधिक उसके पास सोना-चाँदी व अन्य बहुमूल्य धातुएँ होंगी। उस समय दो प्रमुख नारे लगाये जाते थे—"**अधिक सोना, अधिक धन, अधिक शक्ति** (More Gold, More Wealth, More Power) तथा "**मुद्रा ही वाणिज्य व व्यापार का जीवन है।**" उस समय सभी आर्थिक क्रियाओं का उद्देश्य अधिकाधिक सोने को एकत्रित करना बन गया था।

वाणिज्यवादियों द्वारा बहुमूल्य धातुओं और मुद्रा को जो इतना अधिक महत्त्व प्रदन किया गया, उसके कारण संक्षेप में इस प्रकार हैं—

(अ) उस समय सोना और चाँदी ही ऐसी वस्तुएँ थी जिनको व्यापक रूप में मुद्रा के रूप में स्वीकार किया जा सकता था। **अलेक्जैण्डर ग्रे** के शब्दों में, "धन का एकमात्र रूप जो सबसे अधिक सहनशील, लाभप्रद व साधारणतः स्वीकृत था, वह बहुमूल्य वस्तुओं का खजाना था।"

TOUCH 'n' PASS

(ब) युद्ध को जीतने के लिए "बहुत अधिक, और अधिक तथा बहुत ही अधिक धन" की आवश्यकता थी।
(स) केन्द्रीय संगठित राज्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए करों की वसूली आवश्यक हो गई थी। वस्तु विनिमय के समय में राज्य के लिए वस्तु के रूप में कर वसूल करना कठिन था। इसलिए मुद्रा को महत्त्व दिया गया।
(द) उन दिनों सिल्क, मसालों व शराब आदि का व्यापार मुख्य रूप से किया जाता था। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से मनुष्यों के लिए इन निकृष्ट वस्तुओं के रखने की अपेक्षा सोना व चाँदी रखना अधिक स्वाभाविक था।
(य) वाणिज्यवादियों का विश्वास था कि व्यापार पर्याप्त मुद्रा पर ही निर्भर है। जहाँ मुद्रा की कमी होती है, वहाँ व्यापार ढीला रहता है व जहाँ मुद्रा पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रहती है, वहाँ व्यापार खूब उन्नति करता है।"
(र) उन दिनों में आज के समान मुद्रा के विनियोग करने के अवसर उपलब्ध नहीं थे।

(iii) **विदेशी व्यापार का महत्त्व** (Significance of Foreign Trade)—देश में सोना, चाँदी और बहुमूल्य धातुओं को एकत्रित करने के लिए वाणिज्यवाद में विदेशी व्यापार को महत्त्व दिया गया है। **मन** (Mun) का इस बात में अटूट विश्वास था कि वे सभी देश, जिनके पास बहुमूल्य धातुओं की अपनी खानें नहीं हैं, व्यापार द्वारा विदेशों से स्वर्ण और चाँदी प्राप्त करके धनवान बन सकते हैं। देश में मुद्रा और बहुमूल्य धातुओं की मात्रा बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है कि **अनुकूल व्यापार सन्तुलन** हो अर्थात् आयात की तुलना में निर्यात अधिक किया जाए। इससे विदेशों से अधिक मात्रा में सोना-चाँदी भुगतान के रूप में प्राप्त किया जा सकेगा।

प्रो० हेने के मतानुसार वाणिज्यवादियों ने **अनुकूल व्यापार सन्तुलन** का पक्ष मुख्यत: निम्न चार कारणों से लिया—
(अ) इसके द्वारा देश के बहुमूल्य धातु-कोषों में वृद्धि की जा सकती है।
(ब) इस नीति के द्वारा दूसरे देशों का शोषण करके आर्थिक दृष्टि से उन्हें परतन्त्र बनाया जा सकता है।
(स) किसी देश को विदेशी व्यापार द्वारा कितना सोना एवं चाँदी प्राप्त हुआ है, वह उस देश की व्यापार की मात्रा का मापदण्ड है।
(द) इस नीति के पालन से देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाया जा सकता है।

वाणिज्यवादियों के भुगतान सन्तुलन के सिद्धान्त की आलोचना की गई है क्योंकि बिना आयात किये, दीर्घकाल तक केवल निर्यात करना सम्भव नहीं है। फिर इन्होंने इस सिद्धान्त को लेकर साधन और उद्देश्य में भ्रम उत्पन्न कर दिया है। इसे सम्पत्ति प्राप्त करने का साधन माना गया है परन्तु व्यापार सन्तुलन औद्योगिक क्षमता पर निर्भर रहता है, अत: वह साधन की अपेक्षा एक उद्देश्य है।

(iv) **औद्योगिक तथा व्यापारिक नियमन** (Industrial and Commercial Regulation)—वाणिज्यवादियों ने अपने धन एवं व्यापार सम्बन्धी नीतियों को क्रियान्वित करने के लिए अर्थव्यवस्था के उपयुक्त ढाँचे पर भी बल दिया और उसके लिए सरकारी हस्तक्षेप को आवश्यक माना। विदेशी व्यापार का सन्तुलन देश के पक्ष में रहे, इसके लिए यह आवश्यक था कि उन उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहित किया जाए जो कि निर्यात की वस्तुएँ बनाते हैं और साथ ही आयात की वस्तुओं के उपभोग को निरुत्साहित किया जाए अर्थात् सरकारी कानूनों द्वारा आयात-निर्यात का नियमन किया जाए। देश की उत्पादन-शक्ति में वृद्धि करने और व्यापार सन्तुलन को अनुकूल बनाये रखने के लिए वाणिज्यवादियों ने सरकार द्वारा आवश्यक नियम बनाये जाने का सुझाव दिया जिसमें से कुछ प्रमुख नियम इस प्रकार हैं—
(अ) सरकार द्वारा सामान्यतया **ब्याज की नीची दर** निर्धारित की जानी चाहिए, ताकि व्यापारिक और औद्योगिक उन्नति के लिए अधिक मात्रा में और सस्ती पूँजी उपलबध हो सके।
(ब) विदेशी व्यापार यथासम्भव अपने **देश के जहाजों द्वारा** किया जाना चाहिए। इससे दो लाभ होंगे—प्रथम, व्यय कम पड़ेगा और द्वितीय, अपने देश का धन अपने देश के ही काम आएगा।
(स) सोना, चाँदी आदि बहुमुल्य धातुओं का आयात करना चाहिए परन्तु इनका निर्यात बिलकुल नहीं होना चाहिए।
(द) सरकार को पक्का माल तैयार करने वाले उत्पादकों को यथासम्भव सुविधाएँ प्रदान करनी चाहिए और उनके उद्योग को प्रोत्साहन देने के लिए आवश्यक है कि पक्के माल का आयात बन्द कर देना चाहिए।
(य) परतन्त्र देशों से सोना-चाँदी प्राप्त करने का यह उपाय बताया गया—इन देशों से **अधिकाधिक कच्चे माल का आयात** किया जाना चाहिए और इन्हें पक्के माल का निर्यात किया जाना चाहिए।
(र) विदेशी व्यापार को बढ़ाने के लिए **व्यापारिक एवं राजनीतिकर संधियाँ** करनी चाहिए, कच्चे माल पर कोई कर नहीं लगाना चाहिए और खाद्यान्न के आयात पर नियन्त्रण करना चाहिए।
(ल) निर्मित वस्तुओं के **गुण-नियन्त्रण** की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए।

TOUCH 'n' PASS

(व) **नये उद्योगों को स्थापित करने** में विदेशी मजदूरों को देश में आने की अनुमति प्रदान करनी चाहिए, उत्पादन के हितों को दृष्टि में रखते हुए कीमतों एवं मजदूरी का निर्धारण करना चाहिए व विशेष अधिकार सम्पन्न व्यापारिक कम्पनियों की स्थापना करनी चाहिए।

(श) **बैंक तथा साख-पत्रों का विकास** किया जाए जिससे विदेशी व्यापार उन्नत हो।

(ष) **अनुपजाऊ भूमि** को उत्पादनशील बनाया जाए और प्राकृतिक संसाधनों का शोषण किया जाए।

(ह) कच्चे माल को प्राप्त करने और पक्के माल को खपाने के लिए **उपनिवेशों की खोज** की जाए।

(क्ष) व्यापार की सुविधा के लिए **गणित की शिक्षा का प्रबन्ध** किया जाए।

(त्र) व्यापार के सम्बन्ध में विदेशी नागरिक अपने देशों में आसानी से आ-जा सकें, इसलिए राज्य की ओर से नागरिकों को धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिए।

2. जनसंख्या सम्बन्धी विचार (Views Related to Population)

वाणिज्यवादियों की जनसंख्या सम्बन्धी भी एक निश्चित नीति थी। इसके अन्तर्गत वे जनसंख्या की वृद्धि को प्रोत्साहन देते थे क्योंकि उनकी दृष्टि में जनसंख्या की वृद्धि से जहाँ एक ओर सैनिकों और नाविकों की संख्या में वृद्धि होती थी, वहीं दूसरी ओर, उत्पादक श्रमिकों की संख्या में वृद्धि होती थी। अधिक लोगों को रोजगार देने से राज्य की आय में भी वृद्धि होगी। इसके अतिरिक्त विदेशी वस्तुओं से प्रतियोगिता करने के उद्देश्य से देश में वस्तुओं के उत्पादक के लिए अधिक संख्या में सस्ता श्रम आवश्यक माना गया। अत: कानूनी तौर पर जनसंख्या के बढ़ने को प्रोत्साहन दिया गया। यहाँ विभिन्न वाणिज्यवादियों के विचार उल्लेखनीय हैं—**देवनान्त** के शब्दों में, "एक समुदाय की वास्तविक शक्ति उसकी जनता है।"

3. ब्याज का सिद्धान्त (Theory of Interest)

ब्याज सम्बन्धी विषय पर वाणिज्यवादी लेखकों में हमें तो अनेक प्रकार के लेखक मिलते हैं। **प्रथम**, जो ब्याज लेने के पक्ष में थे और **दूसरे**, जो इसका विरोध करते थे। जो ब्याज लेने के पक्ष में थे, **टामस मन** उन लेखकों में प्रमुख हैं। टॉमस मन ने ब्याज के लेने को इस आधाार पर उचित ठहराया कि इसकी सहायता से व्यापारी असहाय विधवाओं और अवयस्कों आदि का धन प्राप्त कर इसका व्यापार में लाभदायक उपयोग कर पाते हैं। **टॉमस मनले, जॉन लॉक व सर डडले नार्थ** आदि विचारक भी ब्याज लेने के पक्ष में थे परन्तु दूसरी ओर **देवनान्त** उन लोगों के विरुद्ध थे जो ब्याज स्वीकार करते थे। वह ब्याज को एक प्रकार की अनुपार्जित आय मानते थे और ब्याज लेने वाले को एक आलसी पुरुष कहते थे। उनके शब्दों में, "अधिक ब्याज लेने वाले वास्तव में राष्ट्रमण्डल के आलसी मनुष्य हैं जो बिना परिश्रम किये हुए जीवन का आनन्द लूटते हैं और उन पर कर लगने चाहिए।"

यदि हम वाणिज्यवादी लेखकों की ब्याज सम्बन्धी धारणाओं का अध्ययन करें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि इन लेखकों में ब्याज के लेने के विषय पर अधिक मतभेद नहीं था क्योंकि सभी वाणिज्यवादी लेखक इस बात का समर्थन करते थे कि ब्याज लेना चाहिए किन्तु मतभेद केवल इस पर था कि ब्याज की दर क्या हो। **टॉमस मन** व उनके अनुयायियों का विचार था कि ब्याज की ऊँची या नीची दर देश की औद्योगिक दशाओं पर निर्भर करती है। अन्य शब्दों में, देश की औद्योगिक दशाओं के अनुसार ब्याज दर का निर्धारण होना चाहिए। टॉमस मन व जॉन लॉक का विचार था कि जब मुद्रा कम होती है और ऋण लेने वाले अधिक होते है तो ब्याज दर बढ़ जाती है। इसके विपरीत जब मुद्रा की बहुलता होती है और ऋण चाहने वाले कम होते हैं तो ब्याज की दर घट जाती है। सर डडले नार्थ ने भी हालैण्ड में ब्याज दर कम होने का कारण मुद्रा की अत्यधिक पूर्ति माना। अधिकांश वाणिज्यवादी विचारक ऊँची ब्याज दर के पक्ष में नहीं थे। कुछ विचारकों का यह मत था कि कानून द्वारा ब्याज की दर को नीचा रखा जाए।

4. मूल्य सम्बन्धी मत (Views on Value)

वाणिज्यवादियों के लेखों में मूल्य सम्बन्धी विषय पर आधुनिक तथा मध्यकालीन विचारों का एक सुन्दर मिलन दिखाई पड़ता है। अध्ययन की सुविधा के लिए हम कह सकते हैं कि वाणिज्यवादियों ने मूल्य सम्बन्धी निम्न तीन विचार दिये हैं—

(अ) **प्राकृतिक मूल्य**—16वीं शताब्दी के विद्वानों का मत था कि प्रकृति ने वस्तुओं को मनुष्य की आवश्यकताओं को तृप्त करने की शक्ति दी है। अत: वस्तुओं में प्राकृतिक मूल्य होता है अर्थात् वे वस्तुओं में निहित उनकी **आन्तरिक विशेषता** मानते थे। आधुनिक अर्थशास्त्री इसी को उपयोगिता कहते हैं। वाणिज्यवादी वस्तु की इस उपयोगिता को ही आन्तरिक मूल्य कहते हैं।

KOLKATA PASS

(ब) **बाजार मूल्य**—जब मुद्रा का जन्म हुआ और विनिमय युग का शुभारम्भ हुआ, तब मूल्य का अर्थ भी बदल गया। अब वस्तु का प्राकृतिक अथवा आन्तरिक मूल्य मुद्रा में आँका जाने लगा। अत: वस्तु के बाह्य मूल्य पर जोर दिया जाने लगा। यह बाह्य मूल्य वस्तु की उत्पादन लागत पर निर्भर होता था। **पेट्टी** का मत था कि मूल्य **वस्तु की उत्पादन लागत** पर निर्भर करता है। उत्पादन लागत में उन्होंने भूमि और श्रम को सम्मिलित किया। स्पष्ट शब्दों में, मौद्रिक अर्थव्यवस्था के आगमन से वस्तु-विनिमय-मूल्य को ही उसका मूल्य माना जाने लगा। इसे बाजार-मूल्य, कृत्रिम मूल्य व क्रय-शक्ति-मूल्य भी कहा जा सकता है।

(स) **श्रम-मूल्य**—कुछ वाणिज्यवादियों के अनुसार केवल श्रम ही उत्पादन लागत है। जैसे लॉक का विचार था कि वस्तु के उत्पादन में जो व्यय होता है, उसके विश्लेषण से यह प्रतीत होगा कि उस खर्चे का 99% भाग केवल श्रम के कारण ही होता है। अत: उसका विचार था कि **वस्तु का मूल्य श्रम-लागत** के बराबर होता है।

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि वाणिज्यवादियों ने मूल्य सम्बन्धी कोई समान सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया। फिर भी इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वाणिज्यवादियों के इन विचारों ने एडम स्मिथ व आंग्ल परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के लिए कच्चे माल का कार्य किया जिसकी सहायता से उन्होंने मूल्य सिद्धान्त रूपी पक्का माल तैयार किया। **प्रो० हेने** के मतानुसार सर विलियम पेट्टी और लॉक आंग्ल वाणिज्यवादियों के प्रतिनिधि ने जिनके मूल्य सम्बन्धी विचारों के ही आधार पर परम्परावादी और बाद के अर्थशास्त्रियों ने अपने मूल्य सम्बन्धी विचार प्रस्तुत किये।

5. उत्पादन के साधन (Means of Production)

यद्यपि वाणिज्यवादियों ने स्पष्ट रूप से यह नहीं बताया कि उत्पादन के कौन-कौन-से साधन है किन्तु उनके विचारों को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे अपने पूर्वजों की तरह **केवल भूमि को ही उत्पादन का साधन नहीं मानते थे।** उन्होंने श्रम को भूमि से भी अधिक महत्त्व दिया है। **पेट्टी** के शब्दों में, "श्रम सम्पत्ति का पिता एवं सक्रिय कारण है जबकि भूमि उसकी माता है।" **देवनान्त** का कहना था कि समस्त राष्ट्रों की सम्पत्ति मनुष्य के श्रम और उद्योग से उत्पन्न होती है।

6. राज्य के कार्य (Functions of State)

वाणिज्यवादी यह मानते थे कि राज्य अपने नागरिकों के जीवन को नियमित करने और उनकी क्रियाओं को नियन्त्रित करने के लिए सर्वशक्तिमान है। वे सभी नीतियों में राजनीतिक एकता और राष्ट्रीय शक्ति को विशेष महत्त्व देते थे। यह निश्चित है कि जिन परिस्थितियों की प्रतिक्रियास्वरूप वाणिज्यवाद का प्रादुर्भाव हुआ था, उसे दृष्टिगत करते हुए एक शक्तिशाली केन्द्रीय सत्ता की स्थापना अनिवार्य थी, जिसके लिए एक निरंकुश शासक की भी आवश्यकता थी।

7. विभिन्न व्यवसायों की उत्पादकता (Productivity of Different Professions)

वाणिज्यवादियों ने राज्य की शक्ति को बढ़ाने के लिए व्यापार को सबसे अधिक महत्त्व दिया। अत: उनका विश्वास था कि व्यापारी ही देश का सर्वाधिक लाभप्रद सदस्य है। इसके बाद ही **दस्तकार** (Artisan) का क्रम आता है। उत्पादक और अनुत्पादक श्रम के सम्बन्ध में अपने विचार स्पष्ट करते हुए वाणिज्यवादी लेखक **सर जोसिया चाइल्ड** का कथन है कि "इस बात से सब सहमत है कि व्यापारी, कारीगर एवं भूमि के कृषक, ऐसे तीन वर्ग के लोग है जो अपने परिश्रम से देश में विदेशों से धन लाते हैं; अन्य प्रकार के लोग, जैसे—अभिजात-वर्ग, वकील, डॉक्टर, सब तरह के विद्वान एवं दुकानदार उसे (धन) देश में एक हाथ से दूसरे हाथ में हस्तान्तरित करते हैं।"

वाणिज्यवादियों ने व्यवसायों की उत्पादकता के सम्बन्ध में जो उपर्युक्त क्रम स्थापित किया है, उसका आर्थिक विचारों के इतिहास में महत्त्व है। प्रथम तो उस परिवर्तन को स्पष्ट करता है जो प्राचीन एवं मध्यकाल की तुलना में हुआ है जबकि कृषि को प्राथमिकता दी जाती थी। द्वितीय, इन विचारों को **एडम स्मिथ** एवं प्रकृतिवादियों के विचारों से भी सम्बन्धित किया जाता है जिन्होंने कुछ वर्गों को अनुत्पादक माना।

8. कर-प्रणाली (Tax System)

सामान्य तौर पर, कर-प्रणाली के सम्बन्ध में वाणिज्यवादियों का विचार यह था कि राज्य से लाभ प्राप्त करने के आधार पर ही लोगों से कर लिया जाना चाहिए। उनका यह विचार सामाजिक समझौते (Social Contract) पर आधारित था।

अन्य वाणिज्यवादियों ने भी कर-प्रणाली के सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत किये एवं व्यावहारिक सिद्धान्तों का निर्माण किया। संक्षेप में, वाणिज्यवादियों के करारोपण सम्बन्धी मुख्य विचार इस प्रकार थे—(अ) प्रत्येक व्यक्ति से उतना ही कर वसूल किया

जाना चाहिए जितना कि उसे सरकार से लाभ प्राप्त हुआ हो; (ब) व्यक्तियों से उनके खर्चे के अनुपात में कर वसूल किये जाने चाहिए; (स) उत्पादन-कर अधिक मात्रा में लिया जाना चाहिए व आयात निर्यात-कर सीमित मात्रा में; (द) ब्याज पर कर वसूल किया जाना चाहिए एवं (य) कर-प्रणाली में समानता पर बल दिया जाना चाहिए।

9. मुद्रा का सिद्धान्त (Theory of Money)

लॉक ने लिखा है कि मूल्य स्तर चलन में मुद्रा की मात्रा द्वारा निर्धारित होता है। मुद्रा की मात्रा बढ़ने से क्रयशक्ति कम होती है अर्थात् कीमतें बढ़ती है। यह बात कैण्टीलौन ने भी लिखी है तथा ह्यूम ने भी ऐसा ही लिखा है। यह मुद्रा परिणाम सिद्धान्त (Quantity Theory of Money) का प्रारम्भिक रूप है।

10. विनिमय की दर का सिद्धान्त (Theory of Rate of Exchange)

इसी युग में विनिमय की टकसाली समता दर (Mint Par of Exchange) के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया यद्यपि वह प्रारम्भिक रूप में ही था। इसका सूत्रपात मैलाइन्स (Malynes) तथा हेल्स (Hales) के द्वारा हुआ। ऐरिक रोल ने लिखा है कि मैलाइन्स ने अपनी मध्ययुगीन मान्यता के द्वारा इसका प्रतिपादन किया और उसका उपचार नैतिक आधार पर स्थापित किया।

वाणिज्यवाद के प्रतिनिधि लेखक (Representative Writers of Mercantilism)

जिन वाणिज्यवादियों के आर्थिक विचारों के आधार पर वाणिज्यवाद की स्थापना हुई, उनमें प्रमुख हैं—**टामस मन, रिचार्ड कैण्टिलन, जे० चाइल्ड, जेम्स स्टुअर्ट, जे०बी० कालबर्ट, हौर्निक** तथा **एण्टोनियो सिरा**।

प्र.3. थॉमस मुन का जीवन-परिचय दीजिए तथा मुन के आर्थिक विचारों का वर्णन कीजिए।

Give the life sketch of Thomas Munn and explain the economic thoughts of Munn.

उत्तर

थॉमस मुन
(Thomas Munn)

सर थॉमस मुन अर्थशास्त्र पर एक अंग्रेजी लेखक थे और उन्हें अक्सर प्रारम्भिक व्यापारियों में से अन्तिम के रूप में जाना जाता है। विशेष रूप से उन्हें ईस्ट इण्डिया कम्पनी के निदेशक के रूप में कार्य करने के लिए जाना जाता है। राज्य में अपने दृढ़ विश्वास और एक व्यापारी के रूप में अपने पूर्व अनुभव के कारण मुन ने 1620 में शुरू हुई आर्थिक मन्दी के दौरान एक प्रमुख भूमिका निभाई। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की रक्षा करने और इंग्लैण्ड की आर्थिक स्थिरता हासिल करने के लिए मुन ने '**ए डिस्कोर्स ऑफ ट्रेड**' प्रकाशित किया।

जीवन-परिचय—थॉमस मुन सेन्ट एन्ड्यू हबर्ड के आस-पास के क्षेत्र में स्थित लन्दन के एक बड़े परिवार की तीसरी सन्तान थे, जहाँ उनका जन्म 17 जून, 1571 को हुआ था। उनके पिता का नाम जॉन मुन था जो इंग्लैण्ड के शाही टकसाल में धन उगाहने वाले थे। अपने पारिवारिक सम्बन्धों के माध्यम से यह माना जा सकता है कि थॉमस ने मुद्रा और समग्र रूप से अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित मामलों में अन्तर्दृष्टि प्राप्त की। इक्तालीस साल की उम्र में थॉमस ने उर्सुला मैल्कोट से शादी की।

उनकी शिक्षा के बारे में कुछ कहा नहीं गया है लेकिन एक व्यापारी के रूप में थॉमस का अपना करियर 1596 के आस-पास शुरू हुआ, जहाँ वह मर्सर की कम्पनी के सदस्य थे और विशेष रूप से इटली और मध्य पूर्व के साथ भूमध्यसागरीय व्यापार में लगे हुए थे। वह एक व्यवसायी के रूप में सफल रहे और एक बड़ी सम्पत्ति अर्जित करने में सक्षम हुए। 1615 में, अपनी समृद्धि के कारण, मुन को ईस्ट इण्डिया कम्पनी के निदेशक के रूप में चुना गया और 1622 में व्यापार पर स्थायी आयोग के सदस्य के रूप में नियुक्त किया गया। उनका शेष पेशेवर करियर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हितों की वकालत करने और उन्हें बढ़ावा देने में बीता और 21 जुलाई, 1641 को उनका निधन हो गया।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के निदेशक के रूप में भूमिका—ब्रिटिश क्राउन के साथ, द ईस्ट इण्डिया कम्पनी एक व्यापारिक व्यवसाय था जिसे नई भूमि का उपनिवेश बनाने और ईस्ट इण्डीज के साथ व्यापार करने के लिए स्थापित किया गया था। 1615 में मुन को कम्पनी के निदेशक के रूप में चुना गया और यह सुनिश्चित करने के लिए निर्धारित किया गया कि यह पूरी क्षमता से काम कर रहा है। इसे प्राप्त करने का मतलब था कि धन को अधिकतम किया जाएगा और निर्यात में वृद्धि की जाएगी। 1620 में, अवसाद की शुरुआत क दौरान, अर्थव्यवस्था के भीतर मुन की भूमिका काफी बढ़ गई थी। उन्हें न केवल ईस्ट इण्डिया कम्पनी

TOUCH 'n PASS

और उसकी प्रथाओं का बचाव करने के लिए मजबूर होना पड़ा, बल्कि अर्थव्यवस्था को ठीक करने में सरकार की सहायता भी करनी पड़ी।

व्यापार संकट जो अन्ततः दो अलग-अलग घटनाओं से उपजा अवसाद का कारण बना। पहला, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के माध्यम से, इंग्लैण्ड भारत से निर्यात की तुलना में बहुत अधिक दर पर आयात कर रहा था। व्यापार के इस नकारात्मक सन्तुलन, या व्यापार घाटे का मतलब था कि इंग्लैण्ड जितना पैसा ला रहा था, उससे अधिक पैसा भेज रहा था, जो कि व्यापारिकता के सिद्धान्तों के अनुसार अर्थव्यवस्था के लिए एक स्पष्ट नुकसान था। दूसरा, अपने सभी आयातों का भुगतान करने के लिए, इंग्लैण्ड ने भारत को कीमती धातुएँ भेजीं। 1600 के दशक में समृद्धि के एकमात्र वास्तविक निर्धारक के रूप में, इस तथ्य के कारण कि उत्तरी यूरोप में कागजी मुद्रा का उपयोग अभी तक नहीं हुआ था, कीमती धातुओं का निर्यात आमतौर पर अनसुना था। हालाँकि, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लिए सर्राफा पर निर्यात प्रतिबन्ध कम कर दिए गए थे। इस शर्त के कारण, विलासिता के लिए चाँदी के आदान-प्रदान ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी पर बहुत अधिक नकारात्मक ध्यान आकर्षित किया, नागरिकों का मानना था कि यह आर्थिक मन्दी का एक बड़ा कारक था। इस प्रकार मुन को उद्यम के प्रतिनिधि के रूप में सामने रखा गया। उनका काम अपने ग्राहकों और आम जनता को आश्वस्त करते हुए अपनी कम्पनी का नाम साफ करना था, कि की गई कार्यवाही अन्ततः सर्वश्रेष्ठ के लिए थी। उन्होंने अपनी पहली प्रकाशित पुस्तक, ए डिस्कोर्स ऑफ ट्रेड फ्रॉम इंग्लैण्ड अनटू द ईस्ट इण्डीज के माध्यम से अपने विचार व्यक्त किए।

थॉमस मुन के आर्थिक विचार (Economic Thoughts of Thomas Munn)

थॉमस मुन ने मुद्रा एवं समग्र रूप से अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित मामलों में अन्तर्दृष्टि प्राप्त की थी। उनके आर्थिक विचारों को निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है—

1. **वित्तीय नीतियाँ**—मुन के अनुसार, किसी राष्ट्र की सम्पत्ति बढ़ाने के लिए विदेशी व्यापार सबसे अच्छा तरीका था। अधिक विशेष रूप से, निर्यात के लिए आयात से अधिक होना आवश्यक था। अन्य सभी सुधारात्मक आर्थिक नीतियाँ गौण थी। जैसा कि वे इंग्लैण्ड के ट्रेजर बाय फॉरेन ट्रेड में कहते हैं, हमें "अजनबियों को सालाना अधिक बेचना चाहिए।"
2. **व्यापार सन्तुलन का सिद्धान्त**—थॉमस मुन, अर्थशास्त्र पर अंग्रेजी लेखक जिन्होंने व्यापार सन्तुलन के सिद्धान्त का पहला स्पष्ट और जोरदार बयान दिया।

   1620 की आर्थिक, मन्दी के दौरान इंग्लैण्ड में मुन सार्वजनिक रूप से प्रमुखता में आया। कई लोगों ने आर्थिक मन्दी के लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी को दोषी ठहराया था क्योंकि कम्पनी ने प्रत्येक यात्रा पर सराफा में £ 30,000 का निर्यात करके अपने व्यापार को वित्तपोकषित किया था।

   इंग्लैण्ड से ईस्ट इण्डीज (1621) तक व्यापार के एक व्याख्यान में, मुन ने तर्क दिया कि जब तक इंग्लैण्ड के कुल निर्यात दृश्यमान व्यापार की प्रक्रिया में अपने कुल आयात से अधिक हो गए, तब तक बुलियन का निर्यात हानिकारक नहीं था। उन्होंने बताया कि पुनः निर्यात किए गए ईस्ट इण्डिया सामानों की बिक्री पर अर्जित धन मूल रूप से निर्यात किए गए बुलियन की राशि से अधिक था, जिसके साथ उन सामानों को खरीदा गया था। तर्क स्वार्थ में दिया गया हो सकता है—मुन ईस्ट इण्डिया कम्पनी से सम्बद्ध था और 1622 में व्यापार पर स्थायी आयोग में नियुक्त किया गया था।

   मुन पहले व्यापारीवादियों में से एक थे। दूसरे शब्दों में, उनका मानना था कि किसी देश की सोने की होल्डिंग उसके धन का मुख्य उपाय है और देश के लिए और अधिक सोना हासिल करने के लिए सरकारों को आयात से अधिक निर्यात का उत्पादन करने के लिए व्यापार को विनियमित करना चाहिए। बाद में एडम स्मिथ के अर्थशास्त्रियों ने दिखाया कि व्यापार स्व-विनियमन है और जो सरकारें सोने या अन्य कठोर मुद्राओं की जमा करना चाहती है, वे अपने देशों को बदतर बना देंगी। मुन के विचारों का एक और विकास इंग्लैण्ड के ट्रेजर बाय फॉरेन ट्रेड में प्रकट होता है, एक किताब जो उनकी मृत्यु के दशकों बाद 1664 तक प्रकाशित नहीं हुई थी।
3. **व्यापार अधिशेष की व्याख्या**—व्यापार सन्तुलन, किसी देश के आयात और वस्तुओं और सेवाओं के निर्यात के बीच की अवधि में मूल्य में अन्तर, आमतौर पर किसी विशेष देश या आर्थिक संघ की मुद्रा की इकाई में व्यक्त किया जाता है (उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए डॉलर, पाउण्ड स्टर्लिंग के लिए यूनाइटेड किंगडम या यूरोपीय संघ के लिए यूरो)। व्यापार का सन्तुलन एक बड़ी आर्थिक इकाई का हिस्सा है, भुगतान सन्तुलन (दुनिया भर में एक देश और

TOUCH 'n PASS

उसके व्यापारिक भागादारों के बीच सभी आर्थिक लेन-देन का कुल योग), जिसमें पूँजी आन्दोलनों (उच्च ब्याज दरों का भुगतान करने वाले देश में बहने वाला धन) शामिल है। वापसी, ऋण चुनौती, पर्यटकों द्वारा व्यय, भाड़ा और बीमा शुल्क और अन्य भुगतान।

यदि किसी देश का निर्यात उसके आयात से अधिक हो जाता है, तो कहा जाता है कि देश का व्यापार सन्तुलन या व्यापार अधिशेष है। इसके विपरीत, यदि आयात निर्यात से अधिक हो जाता है, तो व्यापार का एक प्रतिकूल सन्तुलन या व्यापार घाटा मौजूद होता है। 16वीं से 18वीं शताब्दी तक यूरोप में प्रचलित व्यापारिकता के आर्थिक सिद्धान्त के अनुसार, व्यापार का एक अनुकूल सन्तुलन देश की विदेशी वस्तुओं की खरीद और उसके निर्यात व्यापार को बनाए रखने के लिए एक आवश्यक साधन था। यह उन उपनिवेशों की स्थापना द्वारा प्राप्त किया जाना था जो मातृभूमि के उत्पादों को खरीदेंगे और कच्चे माल (विशेष रूप से कीमती धातुओं) का निर्यात करेंगे, जिन्हें देश के धन और शक्ति का एक अनिवार्य स्रोत माना जाता था।

18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के शास्त्रीय आर्थिक सिद्धान्त द्वारा व्यापारिकता की धारणाओं को चुनौती दी गई थी, जब एडम स्मिथ जैसे दार्शनिकों और अर्थशास्त्रियों ने तर्क दिया कि मुक्त व्यापार व्यापारिकता की संरक्षणवादी प्रवृत्तियों की तुलना में अधिक फायदेमन्द है और किसी देश को एक समान विनिमय बनाए रखने की आवश्यकता नहीं है या, उस मामले के लिए, अपने व्यापार सन्तुलन (या इसके भुगतान सन्तुलन में) में एक अधिशेष का निर्माण करें।

एक निरन्तर अधिशेष, वास्तव में, कम उपयोग किए गए संसाधनों का प्रतिनिधित्व कर सकता है जो अन्यथा किसी देश के धन में योगदान दे सकते हैं तो क्या उन्हें वस्तुओं या सेवाओं की खरीद या उत्पादन के लिए निर्देशित किया जाना था। इसके अलावा, किसी देश (या देश के समूह) द्वारा जमा किए गए अधिशेष में उन देशों की अर्थव्यवस्थाओं में अचानक और असमान परिवर्तन पैदा करने की क्षमता हो सकती है जिनमें अधिशेष अन्ततः खर्च किया जाता है।

आमतौर पर, विकासशील देशों (जब तक कि किसी महत्त्वपूर्ण वस्तु पर उनका एकाधिकार न हो) को अधिशेष बनाए रखने में विशेष कठिनाई होती है क्योंकि मन्दी की अवधि के दौरान व्यापार की शर्तें उनके खिलाफ काम करती है; अर्थात्, उन्हें अपने द्वारा आयात किए गए तैयार माल के लिए अपेक्षाकृत अधिक कीमत चुकानी पड़ती है, लेकिन कच्चे माल या अधूरे माल के अपने निर्यात के लिए अपेक्षाकृत कम कीमत प्राप्त होती है।

निष्कर्ष—व्यापारिक सिद्धान्तों के माध्यम से, मुन ने "एक साम्राज्य को समृद्ध करने के साधन" का एक प्रस्तावित सेट बनाया, जो यह सुनिश्चित करने पर केन्द्रित था कि निर्यात आयात से अधिक हो। दूसरे शब्दों में, मुन ने व्यापार के सकारात्मक सन्तुलन को प्राप्त करने की वकालत की जिससे इंग्लैण्ड की सम्पत्ति में लगातार वृद्धि होगी। थॉमस मुन को व्यापक रूप से एक परिष्कृत विचारक माना जाता है और वे आर्थिक सिद्धान्त के इतिहास का एक बेहद महत्त्वपूर्ण हिस्सा मान गये हैं।

प्र.4. "प्रकृतिवाद को यद्यपि इससे अधिक समझा जाता है, इसे वणिकवाद के विरुद्ध फ्रांसीसी क्रांति के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है।"
इस कथन की प्रकृतिवादियों के मुख्य सिद्धान्तों के सन्दर्भ में सविस्तार व्याख्या कीजिए।
"Though physiocracy is thought to be much more, it may be also be defined and French revolt against Mercantilism."
Give a detailed discussion of this statement in the context of the main theories of physiocrats.

उत्तर

प्रकृतिवाद के प्रमुख आर्थिक सिद्धान्त
(Major Economic Principles of the Physiocracy)

प्रकृतिवाद के तीन प्रमुख आर्थिक सिद्धान्त है जिनकी व्याख्या नीचे की गई है—

(1) प्राकृतिक व्यवस्था (Natural Order)

प्राकृतिक व्यवस्था प्रकृतिवाद का सार अथवा आत्मा है। प्रकृतिवादियों की विचारधारा का केन्द्र बिन्दु प्राकृतिक व्यवस्था ही है तथा उसकी सम्पूर्ण विचारधारा इसी नियम पर आधारित है।

डिपॉन्ट डिने मूर के अनुसार, "प्रकृतिवाद की प्राकृतिक अवस्था एक ऐसी आदर्श अवस्था है जो प्राकृतिक नियमों के अनुसार स्थापित होती है। यह मनुष्यकृत अवस्था के विपरीत है। मनुष्य द्वारा स्थापित की गयी व्यवस्था अपूर्ण होती है क्योंकि वह मनुष्य द्वारा बनाये गये नियमों पर आधारित होती है। दूसरे प्रकृतिवादियों का यह अटल विश्वास था कि प्राकृतिक अर्थव्यवस्था की

TOUCH 'n' PASS

स्थापना से मनुष्य के कल्याण में वृद्धि होती है। प्राकृतिक अर्थव्यवस्था को देखा नहीं जा सकता वरन् इसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है।

यहाँ पर दो प्रश्न महत्त्वपूर्ण है—

(क) प्राकृतिक व्यवस्था से क्या आशय है; और

(ख) प्राकृतिक व्यवस्था को कैसे प्राप्त किया जा सकता है।

(क) **प्राकृतिक व्यवस्था से आशय**—प्राकृतिक व्यवस्था के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न विचार व्यक्त किये हैं। कुछ विद्वानों के मतानुसार प्राकृतिक व्यवस्था का अभिप्राय उस पुरानी व्यवस्था से है जिसमें मनुष्य एक सामाजिक प्राणी के रूप में न रहकर एक पशु के सदृश्य जीवनयापन करता है परन्तु यह मत उचित नहीं है। इसी कारण इस मत को अधिक मान्यता प्राप्त नहीं हो पायी है। **दूसरा** मत है कि प्राकृतिक व्यवस्था से अभिप्राय यह है कि मानव समाज भी उसी प्रकार के प्राकृतिक नियमों से संचिलित एवं नियन्त्रित होता है जिस प्रकार के नियम पशु समाज एवं वनस्पति जीवन को संचालित करते हैं। **कैने** के शब्दों में, "प्राकृतिक व्यवस्था ऐसी शारीरिक संरचना है जिसे स्वयं ईश्वर ने संसार को प्रदान किया है।" इसी विचारधारा के एक अन्य लेखक **रिवेर** ने लिखा है, "प्राकृतिक व्यवस्था की स्थापना मनुष्य द्वारा न होकर ईश्वर के द्वारा होती है। इसको ईश्वर उसी प्रकार स्थापित करता है। जिस प्रकार भौतिक व्यवस्था की अन्य शाखाओं को।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि **प्राकृतिक व्यवस्था वह व्यवस्थाएँ हैं जिसे ईश्वर ने स्वयं मनुष्यों के हित के लिए बनाया है और जब यह ईश्वर की देन है तो यह विश्वव्यापी, चिरस्थायी और सभी मनुष्यों के लिए एक है।**

प्राकृतिक व्यवस्था की विशेषताएँ (Features of Natural Order)—प्राकृतिक व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) यह **सार्वभौमिक** एवं शाश्वत है।

(ii) यह **मनुष्य द्वारा निर्मित** नहीं है बल्कि भगवान ने स्वयं संसार के लिए बनाया है।

(iii) प्राकृतिक विधान मनुष्य और समाज को **आनन्द** की ओर ले जाता है।

(iv) इसे बदला या **समाप्त नहीं किया** जा सकता।

(v) इस विधान का ज्ञान हमें अपने **अन्दर निरीक्षण** करने से हो सकता है। यह स्वयं प्रकार है, उसका प्रमाण नहीं दिया जा सकता है।

(ख) **प्राकृतिक व्यवस्था को कैसे प्राप्त किया जाए**—प्राकृतिक व्यवस्था को पहचानने और उसे प्राप्त करने के लिए 'अन्तर्दर्शन' ही एकमात्र विधि है। प्रकृति के आदेशों को अन्तर्ज्ञान द्वारा ही जाना जा सकता है। **प्रो० जोड** के शब्दों में, "प्राकृतिक व्यवस्था बाह्य तथ्यों का कोई अनुभवसिद्ध उल्लेख नहीं है वरन् यह तो हृदय के अन्तरतम का प्रकटीकरण मात्रा है।" इसे प्राप्त करने के सम्बन्ध में **डॉ० कैने** का मत है, "मनुष्य को उस शिक्षा और संस्कृति को ग्रहण करना चाहिए जो कि प्रकृति के क्रियात्मक स्वरूप को देखने में सहायक होती है। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए क्योंकि वे जो भी कार्य करेंगे, प्रकृति के अनुरूप होंगे तथा वे कार्य सम्पूर्ण जगत के लिए कल्याणकारी होंगे। **डॉ० कैने** के ही शब्दों में, "प्राकृतिक व्यवस्था मनुष्य की स्वतन्त्रता में किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाती है वरन् वह मनुष्य की स्वतन्त्रता को और अधिक व्यापक बनाती है।"

संक्षेप में, प्राकृतिक व्यवस्था को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए गए—

1. **शिक्षा प्रणाली** इस तरह की हो कि सब व्यक्ति प्राकृतिक विधान से परिचित हो सकें। कैने ने शिक्षा प्रणाली को बहुत महत्त्व दिया है।
2. **व्यक्तिगत सम्पत्ति** का सिद्धान्त विधान में सहायक है।
3. **सामाजिक तथा राजनीतिक** नियम कम-से-कम हों। जो भी नियम हों, वे प्राकृतिक विधान के पालन में सहायक हो।
4. प्रकृतिवाद के सिद्धान्त पर **प्राकृतिक अधिकार** (Natural Right) का सिद्धान्त भी आधारित है।
5. समाज में व्यवस्था और शान्ति (Law and Order) रहना आवश्यक है। यदि अशान्ति होगी तो प्राकृतिक विधान समाप्त हो जाएगा।

Touch 'n' PASS

6. शासन शक्तिशाली हो परन्तु जो कार्य अच्छा हो रहा है, उसमें वह हस्तक्षेप न करे किन्तु जो काम खराब हो रहा है, उसको दण्ड द्वारा ठीक करे।
7. **मनुष्य की स्वतन्त्रता** में हस्तक्षेप न हो। **क्वेने** ने कहा था, "प्राकृतिक विधान मनुष्य की स्वतन्त्रता में बाधा नहीं डालते बल्कि उसे और अधिक स्वतन्त्र बनाने में सहायक है।"

प्राकृतिक व्यवस्था की आलोचनाएँ (Criticisms of Natural Order)—प्राकृतिक व्यवस्था के सन्दर्भ में निम्नलिखित आलोचनाएँ की गई हैं—

1. **त्रुटिपूर्ण मान्यताएँ** (Wrong Assumptions)—प्रकृतिवादियों की यह मान्यता कि व्यक्ति और समाज के हित में कोई विरोध नहीं है। व्यावहारिकता की कसौटी पर सत्य नहीं उतरती क्योंकि एक व्यक्ति का हित दूसरे व्यक्ति के हितों में बाधक बनता है। **दूसरे,** प्रकृतिवादियों का यह कथन भी त्रुटिपूर्ण है कि व्यक्ति अपने हित-अहित को अच्छी तरह समझता है। **तीसरे,** उनकी 'स्वजन हिताय' तथा 'बहुजन हिताय की धारणा' भी त्रुटिपूर्ण है।
2. **मत विभिन्नता** (Difference of Opinion)—प्रकृतिवादियों के विचारों में पर्याप्त भिन्नता पाई जाती है। इस कारण सामान्य व्यक्ति इस विचारधारा को समझने में असमर्थ रहते हैं।
3. **अस्पष्ट धारणा** (Ambiguous Concepts)—सभी प्रकृतिवादी यह मानते हैं कि प्राकृतिक व्यवस्था सर्वत्र विद्यमान है परन्तु उसके स्वभाव और नियमों के सम्बन्ध में सभी विचारक एकमत नहीं है। कुछ विचारक इसे प्राकृतिक राज्य की संज्ञा देते हैं तो कैने इसे भौतिक व्यवस्था मानते हैं परन्तु ये दोनों विचार उचित नहीं है।
4. **अन्य कठिनाइयाँ** (Other Difficulties)—(i) प्राकृतिक व्यवस्था सम्बन्धी विचार दर्शनशास्त्र तथा अध्यात्मवाद पर आधारित होन के कारण अस्पष्ट है।
   (ii) प्राकृतिक व्यवस्था का ज्ञान होना सर्वसामान्य के लिए सम्भव नहीं है।
   उपर्युक्त आलोचनाओं के होते हुए भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रकृतिवादियों ने अपने प्राकृतिक व्यवस्था द्वारा कुछ महत्त्वपूर्ण विचार दिए है जो निम्नलितखत है—
   (अ) इन्होंने **सामाजिक व्यक्ति** के पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं जो समाजशास्त्र की एक अमूल्य निधि है।
   (ब) उन्होंने आर्थिक स्वतन्त्रता का महत्त्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किया। जिसको आगे चलकर एडम स्मिथ और उनके अनुयायियों ने स्वीकार किया तथा अपने आर्थिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन उसके आधार पर किया।

(2) वास्तविक या शुद्ध उत्पादन (Net Product)

प्रकृतिवादियों का वास्तविक या शुद्ध उत्पादन (Net Product) का विचार एक महत्त्वपूर्ण आर्थिक सिद्धांत है। इस विचार के माध्यम से उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि कृषि ही सर्वश्रेष्ठ व्यवसाय है जिसमें वास्तविक उत्पादन प्राप्त होता है अर्थात् उनकी दृष्टि में उत्पादन के साधन के रूप में भूमि सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। प्राकृतिक व्यवस्था मूल रूप से वाणिज्यवादी विचारधारा की एक विरोधी प्रतिक्रिया थी जिसमें सरकार द्वारा सामाजिक जीवन पर काफी नियन्त्रण था, जबकि प्रकृतिवादियों ने हस्तक्षेप मुक्त (Laissez faire) की नीति अपनाकर सरकार के कार्यों को काफी सीमित कर दिया।

अर्थ (Meaning)—**वास्तविक या शुद्ध उत्पादन** का अर्थ स्पष्ट करते हुए **प्रो० जीड** एवं **रिस्ट** कहते हैं कि नई सम्पत्ति के निर्माण में कुछ-न-कुछ व्यय अवश्य होता है जिसे नई सम्पत्ति में से घटा दिया जाता है और जो अतिरिक्त अन्तर होता है, उसे प्रकृतिवादियों ने वास्तविक या शुद्ध उत्पादन कहकर सम्बोधित किया। यही वास्तविक उत्पादन या शुद्ध उपज ही किसी राष्ट्र की वास्तविक आय होती है। प्रकृतिवादियों के अनुसार श्रम दो प्रकार का होता है—**उत्पादक एवं अनुत्पादक**। उत्पादक श्रम वही है जो अतिरेक (Surplus) का निर्माण कर सके अर्थात् उत्पाद करने में समर्थ होने के लिए, उपभोग किये गये पदार्थों के अतिरिक्त और अधिक उत्पादन कर सके।

प्रकृतिवादियों के अनुसार **अतिरेक या वास्तविक उत्पादन केवल कृषि में ही उपलब्ध होता है** क्योंकि कृषि में उत्पन्न होने वाला धन व्यय होने वाले धन की तुलना में अधिक होता है। अत: उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि कृषि ही एकमात्र उत्पादक व्यवसाय है। इस सम्बन्ध में **कैन** का मत है कि "कृषि राज्य की समस्त सम्पत्ति एवं समस्त नागरिकों की सम्पत्ति का स्रोत है।" अन्य

TOUCH 'n' PASS

प्रकृतिवादी लेखक **दूपों** कहते हैं कि मानवजाति की समृद्धि अधिकतम वास्तविक उत्पादन से सम्बन्धित है। कृषि में वास्तविक उत्पादन की इस विचित्र शक्ति के कारण ही अर्थव्यवस्था सम्भव हो सकी और सभ्यता एक तथ्य बन सकी। उनका विश्वास था कि यह अतिरिक्त उत्पादन वाणिज्य या यातायात इत्यादि में सम्भव नहीं है क्योंकि वहाँ मानवीय श्रम कुछ वास्तविक उत्पादन न कर, पहले से ही उत्पादित वस्तुओं का हस्तान्तरण करता है। निर्माण उद्योग में भी, जहाँ केवल कच्चे माल का रूप बदलकर उसे पक्का माल बनाया जाता है, वास्तविक उत्पादन नहीं किया जाता।

प्रकृतिवादी इस तथ्य से परिचित थे कि वास्तविक उत्पादन पर बाजार की दशाओं का प्रभाव पड़ता है, यहाँ तक कि कीमत बहुत गिरने से अतिरेक उत्पादन भी समाप्त हो जाता है। उनके मत में कीमत, जिससे अतिरिक्त उत्पादन की प्राप्ति होती है, प्राकृतिक व्यवस्था का सामान्य प्रभाव था। जब कीमत उत्पादन लागत के बराबर हो जाती है तो इसका यह अर्थ है कि प्राकृतिक व्यवस्था में बाधा उपस्थित हो गई है।

वास्तविक उत्पादन के विचार की आलोचनाएँ (Criticisms of Net Product Concept)—कई अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रकृतिवादियों के वास्तविक उत्पादन के सिद्धान्त की आलोचना की गई है और इसे भ्रामक एवं कल्पित निरूपित किया गया है।

1. **उत्पादन का गलत अर्थ**—उन्होंने 'उत्पत्ति' शब्द का जो अर्थ लिया, वह त्रुटिपूर्ण था। उनका विचार था कि उत्पत्ति का अर्थ केवल भौतिक पदार्थों का निर्माण करना है लेकिन उत्पादन का अर्थ वस्तु का निर्माण नहीं वरन् उसमें मूल्य की वृद्धि करना है। प्रकृतिवादी यह नहीं समझ पाये कि मनुष्य न तो पदार्थ उत्पन्न कर सकता है और न ही नष्ट कर सकता है—उत्पादन का वैज्ञानिक अर्थ केवल उपयोगिता का सृजन करना है। उनके भ्रम का कारण यह था कि उन दिनों सामन्त एवं पादरी भूमि के लगान पर आश्रित थे। यदि भूमि से अतिरेक उत्पादन प्राप्त न होता तो उनका विलासितापूर्ण जीवन सम्भव न हो पाता। **प्रो० जीड** एवं **रिस्ट** ने प्रकृतिवादियों की अतिरेक की धारणा पर चुटकी लेते हुए कहा है कि यदि कृषकों की अपेक्षा व्यापारी वर्ग, उद्योग एवं वाणिज्य से अच्छी आय प्राप्त कर सुखपूर्वक जीवन बिता रहा होता तो प्रकृतिवादियों को कृषि की अपेक्षा उद्योगों में वास्तविक उत्पादन प्राप्त होता।
2. **उद्योग अनुत्पादक नहीं होते**—प्रकृतिवादियों ने उद्योगों को अनुत्पादक ठहराया जो बिलकुल भ्रमपूर्ण था। आज यह सिद्ध हो चुका है कि उद्योग, वाणिज्य एवं अन्य व्यवसाय भी उत्पादक होते हैं और देश के आर्थिक विकास में इन उद्योगों का उतना ही महत्त्वपूर्ण हाथ होता है जितना कि कृषि का होता है। आलोचकों का कहना है कि कृषि का अतिरेक वाला सिद्धान्त उद्योग एवं व्यापार में भी लागू होता है। और यदि हम प्रकृतिवादियों के कथन को ही मान लें कि इन उद्योगों में उतना ही उत्पादन होता है जितना कि वे उपभोग करते हैं तो भी इस आधार पर उन्हें अनुत्पादक नहीं कहा जा सकता। **बादन** के शब्दों में, "अनुपयोगी होना तो दूर रहा, ये वे कलाएँ हैं जो जीवन की विलासिता सम्बन्धी एवं आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति करती हैं और इन पर मानव जाति की सुरक्षा एवं कल्याण निर्भर रहता है।"
3. **वास्तविक उत्पादन का विरोध**—**रिकार्डो** के लगान सिद्धान्त ने भी वास्तविक उत्पादन के सिद्धान्त का विरोध किया। प्रकृतिवादियों ने बताया कि कृषि में वास्तविक उत्पादन की प्राप्ति प्रकृति की दयालुता के कारण होती है परन्तु रिकॉर्डो ने बताया कि अतिरेक उत्पादन प्रकृति का आशीर्वाद न होकर, भूमि के सीमित विस्तार एवं उत्पत्ति ह्रास नियम के क्रियाशील होने का परिणाम है। यही **वास्तविक उत्पादन** बाद में लगान कहलाने लगा।
4. **भूमि सदैव अतिरेक नहीं देती**—जैसा, कि स्पष्ट किया जा चुका है, भूमि में सदैव ही अतिरेक उत्पादन प्राप्त नहीं होता। यदि भूमि की उपज का मूल्य गिर जाए तो यह अतिरेक की स्थिति भी समाप्त हो सकती है।
5. **उत्पादक व अनुत्पादक का भ्रम**—प्रकृतिवादियों ने जो भेद उत्पादक एवं अनुत्पादक श्रम में किया, वह भी भ्रमात्मक है। स्वयं एडम स्मिथ ने यह सिद्ध कर दिया है कि समाज के सभी वर्ग उत्पादक होते हैं।

वास्तविक उत्पादक धारणा का महत्त्व (Importance of Net Production Concept)—परन्तु उक्त आलोचना का यह अर्थ नहीं है कि वास्तविक उत्पादन-सिद्धान्त का कोई महत्त्व नहीं है। (i) वास्तव में, यह वाणिज्यवादियों के सिद्धान्त को खुली चुनौती थी। वाणिज्यवादी मानते थे कि केवल उपनिवेशों का शोषण कर एवं निर्यात करके ही सम्पत्ति प्राप्त की जा सकती है लेकिन प्रकृतिवादियों ने उसका विरोध करते हुए बताया कि देश के अन्दर ही कृषि से सम्पत्ति का निर्माण हो सकता है। (ii) प्रकृतिवादियों ने अपने इस सिद्धान्त द्वारा तत्कालीन राजनीति पर भी प्रभाव डाला। उन्होंने जो महत्त्व कृषि को दिया, वह आज भी शाश्वत है। निश्चित ही उद्योग की अपेक्षा कृषि में जीवन को शक्ति देने का गुण है। (iii) वास्तविक उत्पादन के सिद्धान्त ने

आर्थिक विश्लेषण के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया क्योंकि इसी के आधार पर उपभोक्ता की बचत इत्यादि सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया। (iv) उन्होंने उद्योग-धन्धों एवं कृषि के अन्दर को स्पष्ट किया। (v) रोबर्ट्स एवं मार्क्स आदि के विचारों में प्रकृतिवादियों द्वारा प्रतिपादित बचत (Surplus) के विचार ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

(3) धन का परिभ्रमण या आर्थिक सारणी (Circulation of Wealth or Tableau Economique)

कैने, प्रथम प्रकृतिवादी विचारक थे जिन्होंने इस बात का विश्लेषण करने का प्रयत्न किया कि समाज के विभिन्न वर्गों में धन का वितरण किस प्रकार होता है। उन्होंने यह जानने का प्रयत्न किया कि यह धन का परिभ्रमण सदैव एक ही मार्ग से क्यों प्रवाहित होता रहता है। उनकी यह खोज निश्चित ही सराहनीय थी। इसका महत्त्व प्रतिपादित करते हुए प्रकृतिवादी **लेखक तरगो (Turgot)** कहते हैं कि "धन का यह निरन्तर परिभ्रमण आर्थिक विज्ञान के लिए उसी प्रकार जीवन-प्राण था जिस प्रकार शरीर के लिए रक्त-संचालन।"

प्रसिद्ध प्रकृतिवादी विचारक **कैने** ने रक्त-परिभ्रमण की जैविक खोज का प्रयोग सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में अपने *'Tableau Economique'* में वितरण समझाने के लिए किया जो धन के वितरण का रेखाचित्रीय चित्रण है। इस सारणी की खोज ने उस समय आर्थिक विज्ञान के क्षेत्र में एक नई जिज्ञासा पैदा की। इसके महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए प्रसिद्ध विचारक **मिराब्यू (Mirabeau)** का कथन उद्धृत करते हुए **प्रो० जीड** एवं **रिस्ट** कहते हैं कि "विश्व के प्रारम्भ होने के बाद तीन बड़ी खोजें हुई हैं जिन्होंने राजनीतिक समुदायों को स्थिरता प्रदान की है। इनमें प्रथम है लेखन की खोज, द्वितीय है मुद्रा का आविष्कार और तृतीय है **आर्थिक सारणी** (Tableau Economique), जो अन्य दोनों का परिणाम है और उन दोनों के उद्देश्यों को मजबूत कर उन्हें पूर्ण करती है।" आगे चलकर **मिराब्यू** कहते हैं कि "धन के परिभ्रमण की खोज को आर्थिक समुदायों में आर्थिक विज्ञान के इतिहास में वही स्थान प्राप्त है जो जीव-विज्ञान के इतिहास में रक्त के परिभ्रमण की खोज को प्राप्त है।"

आर्थिक सारणी को समझाते हुए **कैने** ने समाज को तीन वर्गों में विभाजित किया है जो निम्न प्रकार हैं—

(A) **उत्पादक वर्ग** (Productive Class)—जिसके अन्तर्गत कृषक आते हैं। इस वर्ग में मछली मारने वालों एवं खानों में कार्य करने वालों को भी सम्मिलित किया जा सकता है।

(B) **सम्पत्ति-स्वामी वर्ग** (Proprietory Class)—जिसके अन्तर्गत भूमिपति एवं अन्य प्रभुत्व सम्पन्न व्यक्तियों को शामिल किया जाता है। **प्रो० हेने** ने इस वर्ग को आंशिक रूप से उत्पादक बताया है।

(C) **अनुत्पादक वर्ग** (Sterile Class)—जिसके अन्तर्गत उद्योगपति, व्यापारी, मजदूर एवं अन्य व्यवसायों के सदस्य आते हैं। इनके द्वारा निर्मित माल समाज में उपयोग में आता है।

चूँकि प्रकृतिवादियों ने कृषक वर्ग को ही उत्पादक माना, अत: कैने का विश्वास था कि समाज में परिभ्रमण होने वाले सम्पूर्ण धन की पूर्ति इसी वर्ग द्वारा की जाती है। मान लो, यह कुल धन ₹ 500 करोड़ के बराबर है। इसमें से ₹ 200 करोड़ कृषक वर्ग एवं कृषि उत्पादन के लिए आवश्यक है, अत: इस अंश का परिभ्रमण नहीं होता। शेष ₹ 300 करोड़ की उपज का विक्रय किया जाता है। अब कृषक वर्ग के पास जो ₹ 200 करोड़ की उपज है, वह उनकी तमाम आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त नहीं है। उन्हें अन्य वस्तुओं एवं कपड़ों की भी जरूरत होती है जिसे वे ₹ 100 करोड़ के बदले में औद्योगिक वर्ग अनुत्पादक वर्ग से प्राप्त करते हैं। यह अंश निकल जाने के बाद अब इस वर्ग के पास ₹ 200 करोड़ बचते हैं जो भूमिपति और सरकार के पास क्रमश: लगान और कर के रूप में जाते हैं। इन ₹ 200 करोड़ में सम्पत्ति स्वामी वर्ग अच्छी तरह से अपना जीवन-यापन कर लेता है। इनमें से वह अनाज प्राप्त करने के बदले में ₹ 100 करोड़ कृषक वर्ग को दे देता है एवं शेष ₹ 100 करोड़ अन्य वस्तुएँ प्राप्त करने के लिए अनुत्पादक वर्ग को दे देता है।

जहाँ तक अनुत्पादक वर्ग का प्रश्न है, वह प्रकृतिवादियों की दृष्टि में कुछ भी उत्पादन नहीं करता। उसे निर्मित वस्तुओं के बदले में ₹ 200 करोड़ प्राप्त होते है—₹ 100 करोड़ कृषक वर्ग से एवं ₹ 100 करोड़ सम्पत्ति स्वामी वर्ग से। इन ₹ 200 करोड़ का उपयोग यह उत्पादक वर्ग जीवन की आवश्यक वस्तुओं एवं कच्चे माल को क्रय करने में करता है और चूँकि कृषक वर्ग ही इन वस्तुओं का उत्पादन करता है, अत: ये ₹ 200 करोड़ पुन: कृषक वर्ग के पास पहुँच जाते हैं। अब यदि इसमें वह ₹ 100 करोड़ भी मिला दिया जाए जो सम्पत्ति-स्वामी वर्ग अनाज प्राप्त करने के बदले कृषक वर्ष को देता है तो हम देखते हैं कि कुल ₹ 300 करोड़ पुन: कृषक वर्ग के पास आ जाता है। इस प्रकार यह कुल धन का चक्र समाप्त हो जाता है जो निरन्तर चलता रहता है।

TOUCH 'n' PASS

कैने की आर्थिक सारणी के अनुसार धन के परिभ्रमण का जो वर्णन ऊपर किया गया है, उसे नीचे दी गई सारणी द्वारा सरलता से समझा जा सकता है—

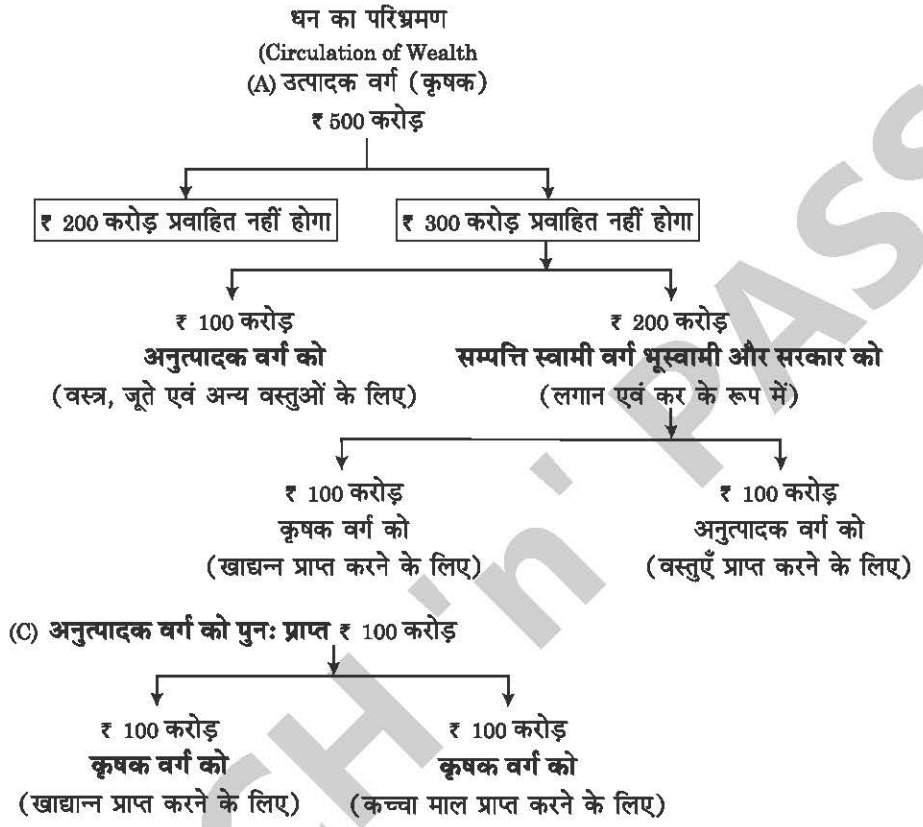

इस प्रकार प्रवाहित होने वाला **₹ 300 करोड़** (₹ 100 करोड़ भू-स्वामी व सरकार से तथा ₹ 200 करोड़ अनुत्पादक वर्ग से) पुनः कृषक वर्ग को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार समाज में धन का परिभ्रमण निरन्तर चलता रहता है।

प्र.5. आर्थिक सारणी के महत्त्व एवं दोष का उल्लेख कीजिए। प्रकृतिवाद के व्यावहारिक पहलूओं पर भी प्रकाश डालिए।
Mention the importance and demerits of economic table. Throw light on behavioural aspects of physiocracy.

उत्तर

आर्थिक सारणी का महत्त्व
(Importance of Economic Table)

आर्थिक सारणी का आविष्कार संसार के तीन महान आविष्कारों में से एक है। इसके महत्त्व तथा भावी अर्थशास्त्रियों पर पड़ने वाले प्रभाव को निम्नवत् स्पष्ट किया जा सकता हैं—

(i) **कार्ल मार्क्स** ने आर्थिक सारणी की विश्लेषण पद्धति के आधार पर पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में आय, व्यय तथा बचत और विनियोग का विश्लेषण किया है।
(ii) सामाजिक लेखा, समाज में धन का परिभ्रमण और आदान-प्रदान विश्लेषण का प्रारम्भिक आधार डॉ० **कैने** की आर्थिक सारणी ही रही है।
(iii) आर्थिक सारणी की सहायता से 'सन्तुलन' के विचार को सरलता से समझा जा सकता है।
(iv) सारणी में 'निजी सम्पत्ति' के बारे में स्पष्ट व्याख्या की गई है।

TOUCH 'n' PASS

(v) सारणी में यह स्पष्ट किया गया है कि कर भू-स्वामी वर्ग से वसूल किया जाना चाहिए।

(vi) आर्थिक सारणी अंक-सिद्धान्त के विकास की सम्भावनाएँ प्रस्तुत करती है। इसी आधार पर 'अर्थमिति' का विकास हुआ है।

आर्थिक सारणी के दोष (Defects of Economic Table)

आर्थिक सारणी के उपर्युक्त महत्त्व के होते हुए भी उसमें कुछ दोष पाये जाते हैं।

(i) प्रकृतिवादियों द्वारा समाज का **तीन वर्गों में विभाजन** अवैज्ञानिक तथा त्रुटिपूर्ण है जिस कारण धन परिभ्रमण सिद्धान्त भी निराधार है।

(ii) **शुम्पीटर** आर्थिक सारणी की आलोचना करते हुए लिखते हैं कि आर्थिक सारणी के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि पहले कुछ उत्पादन किया जाता है और फिर उसका समाज के विभिन्न वर्गों में वितरण होता है अर्थात् उत्पादन और वितरण दो अलग-अलग प्रक्रियाएँ है परन्तु यह धारणा दोषपूर्ण है क्योंकि समाजवादी समाज में तो उत्पादन और वितरण दो भिन्न रूप होते हैं किन्तु पूँजीवादी व्यवस्था में वे एक ही क्रिया के दो रूप होते हैं।

(iii) प्रकृतिवादियों ने भू-स्वामी वर्ग **को उत्पादक** कहकर अत्यन्त उच्च स्थान प्रदान किया है जो कि न्यायसंगत नहीं है क्योंकि यह वर्ग उत्पादन में कुछ भी योग नहीं देता। इसके विपरीत उन्होंने कारीगरों और व्यापारियों को अनुत्पादक घोषित किया है। इस प्रकार के निर्णय से स्पष्ट होता है कि प्रकृतिवादी किसी वस्तु की उपयोगिता का सृजन करने को उत्पत्ति नहीं मानते थे।

(iv) प्रकृतिवादियों ने **श्रम के महत्त्व** को ठीक-ठीक नहीं समझा। यही कारण है कि उन्होंने भू-स्वामियों को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया है तथा कारीगरों एवं श्रमिकों को कम महत्त्व दिया है।

(v) प्रकृतिवादियों ने **'शुद्ध उत्पादन'** के वितरण सम्बन्धी जो आँकड़े प्रस्तुत किये हैं, वे भी काल्पनिक प्रतीत होते हैं। आधुनिक अर्थशास्त्रियों का मत है कि इन आँकड़ों (कि $\frac{2}{5}$ भाग भू-स्वामी को तथा $\frac{1}{5}$ भाग अनुत्पादक वर्ग को मिलेगा) के निश्चय पर प्रकृतिवादी किस प्रकार पहुँचे है, उसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह आँकड़े उनकी कल्पना की उड़ान मात्र है जो वास्तविकता से कोसो दूर है।

(vi) प्रकृतिवादियों के सिद्धान्त में **विरोधाभास** भी पाया जाता है। उदाहरण के लिए, एक स्थान पर वे श्रम को इतना अधिक महत्त्व प्रदान करते हैं कि कहते हैं कि यदि कृषक वर्ग श्रम न करे तो उत्पादन नहीं होगा परन्तु दूसरी ओर वे यह कहते हैं कि प्रारम्भिक पूँजी का उपयोग यदि भू-स्वामियों द्वारा न किया जाए तो उत्पादन सम्भव नहीं होगा। इस प्रकार प्रकृतिवादी स्वयं ही एक वस्तु का महत्त्व एक स्थान पर बताकर दूसरे स्थान पर उसके महत्त्व को कम कर देते हैं।

प्रकृतिवाद का व्यावहारिक पहलू (Behavioural Aspects of Physiocracy)

प्रकृतिवादियों के कुछ विचार ऐसे भी है, जो व्यावहारिक नीतियों के रूप में महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए और जिन्होंने बाद में आने वाले अर्थशास्त्रियों के विचारों तथा सरकार की नीतियों को प्रभावित किया। इस सम्बन्ध में प्रकृतिवाद के मुख्य विचार अग्रलिखित हैं—

(1) **व्यापार** (Trade)—जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है, प्रकृतिवादियों ने केवल कृषि को ही उत्पादक माना। इसके अतिरिक्त किसी भी अन्य प्रकार के विनिमय को वे अनुत्पादक मानते थे क्योंकि उसमें समान मूल्य का हस्तान्तरण होता था। यदि विनिमय करने वाले व्यक्ति को विनिमय में उतना ही प्राप्त होता है जितना कि वह देता है तो सम्पत्ति का उत्पादन नहीं होता। हाँ, यह सम्भव है कि असमान शक्ति वाले दो दलों में से विनिमय करने वाले एक दल को लाभ प्राप्त हो परन्तु यह दूसरे दल के नुकसान के आधार पर होगा। चूँकि व्यापार में भी विनिमय होता है, अत: प्रकृतिवादियों ने देशी-विदेशी व्यापार को अनुत्पादक माना और बताया कि उससे वास्तविक धन का उत्पादन नहीं होता। व्यापार को अनुत्पादक बताते हुए **मर्सियर डिला रिवेयर** कहते हैं कि "आईने के समान व्यापारी भी वस्तुओं को बहुगुणित करके बताते हैं लेकिन वे केवल बाह्य रूप को छलते है।" अर्थात् आईने में दिखने वाला प्रतिबिम्ब वास्तविक नहीं है। अन्य लेखकों ने भी विनिमय के माध्यम से होने वाले व्यापार को अनुत्पादक बताया है। फिर भी वे व्यापार के सीमित महत्त्व को स्वीकार करते थे क्योंकि इससे समाज के सभी सदस्यों को आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त होती है।

आलोचना (Criticisms)—प्रकृतिवादियों ने व्यापार को अनुत्पादक बताते हुए यह गलती की कि तुष्टिगुण को भुला दिया। उन्होंने इस तथ्य पर ध्यान नहीं दिया कि विनिमय से दोनों पक्षों को लाभ होता है।

फिर उनकी 'उत्पादक' शब्द की व्याख्या भी गलत थी। किसी वस्तु को भौतिक रूप में बनाना ही उत्पादन नहीं है। आधुनिक व्याख्या के अनुसार किसी वस्तु में उपयोगिता का सृजन करना ही उत्पादन है और इस अर्थ में कृषि के अतिरिक्त अन्य उद्योगों में

भी उत्पादन होता है। इसी कारण अन्य प्रकृतिवादियों से हटकर अपने विचार व्यक्त करते हुए **तरगो** (Turgot) कहते हैं कि उद्योग एवं वाणिज्य पूर्ण रूप से अनुत्पादक नहीं हैं।

परन्तु उक्त आलोचना के पश्चात् भी व्यापार के क्षेत्र में प्रकृतिवादियों का अपना स्थान है। उन्होंने वाणिज्यवादियों की व्यापार सन्तुलन नीति की आलोचना की एवं स्वतन्त्र व्यापार को महत्त्व प्रदान किया। उन्होंने कृषि के महत्त्व को भी स्थापित किया।

(2) **राज्य के कार्य** (Functions of State)—वे अराजकतावादी (Anarchist) नहीं थे, 'अधिकतम सत्ता और न्यूनतम विधान' के पक्ष में थे। एक प्रकार से वे निरंकुश के ही समर्थक थे। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को मानते हुए भी शासन में जनमत के पक्षपाती नहीं थे। फिर भी प्रकृतिवादियों ने अपने राज्य के निम्न कार्य निर्धारित किये—

(i) **प्राकृतिक व्यवस्था की रक्षा**—शासक का प्रथम कार्य **प्राकृतिक व्यवस्था की रक्षा** करना और उसके आधार पर निजी सम्पत्ति को, अनभिज्ञ एवं उल्लंघन करने वाले व्यक्तियों के आक्रमण से सुरक्षा प्रदान करना है।

(ii) शासक के दूसरे कार्य सम्बन्ध में प्रकृतिवादियों ने **शिक्षा** पर जोर दिया। *Baudeau* के अनुसार सार्वभौमिक शिक्षा प्रथम एवं एकमात्र सामाजिक बन्धन है। **कैने** ने भी प्राकृतिक व्यवस्था सम्बन्धी शिक्षा के प्रसार को बहुत महत्त्व दिया। उनका यह मत था कि विस्तृत शिक्षा सम्पन्न एवं शिक्षा प्रसार लोकमत के द्वारा ही निजी निरंकुशता से बचा सकता है।

(iii) तीसरे कार्य के क्षेत्र मे **लोक-निर्माण के कार्यों** पर भीर जोर दिया गया क्योंकि अच्छी सड़कों एवं नहरों की व्यवस्था से कृषि में उन्नति होती है।

प्रकृतिवादियों का विश्वास था कि राजनीतिक विकास एवं वैज्ञानिक अध्ययन के हित में सब वर्ग-भेद समाप्त होना चाहिए एवं अन्तर्राष्ट्रीय बन्धनों को तोड़ा जाना चाहिए।

(3) **कर प्रणाली** (Taxation System)—प्रकृतिवादियों ने राज्य के कर्त्तव्यों को सीमित कर दिया है, फिर भी ऐसे राज्य में सार्वजनिक कार्यों पर व्यय करने की दृष्टि से कुछ करों की आवश्यकता बतायी है। **डॉ० फ्रांसिस कैने** के शब्दों में, "सरकार को जनता की समृद्धि के लिए आवश्यक कार्यों पर व्यय करने के कर्त्तव्य की अपेक्षा बचत करने के कार्यक्रम सम्बन्ध रखना चाहिए। यह भारी व्यय देश के समृद्धशाली होने पर समाप्त हो जाएगा।" उनके **कर सम्बन्धी विचार** निम्नलिखित है—

(i) करों का भुगतान प्रत्येक व्यक्ति द्वारा उदारतापूर्वक किया जाना चाहिए।

(ii) करों का भुगतान 'शुद्ध उपज' में से किया जाना चाहिए। उनके अनुसार कर की मात्रा शुद्ध उपज का लगभग 30% होना चाहिए।

(iii) यह एक प्रकार का एकाकी कर (Single Tax) तथा प्रत्यक्ष कर (Direct Tax) है जिसका भुगतान करने से बचा नहीं जा सकता है। प्रकृतिवादियों की भूमि पर एकाकी कर प्रणाली ने भावी करारोपण के विचारों को एक बड़ी सीमा तक प्रभावित किया है। इसी ने अमरीका में हेजरी जार्ज द्वारा संचालित भूमि राष्ट्रीयकरण आन्दोलन को प्रेरणा प्रदान की थी।

आलोचनाएँ (Criticisms)—कर प्रणाली की आलोचना निम्न बिन्दुओं के आधार पर की जाती हैं—

(i) कर का अनुपात अर्थात् वास्तविक उत्पादन का 30 प्रतिशत केवल काल्पनिक है।

(ii) एक कर लगाने से राज्य की आय कम व सीमित रहेगी और इससे जनकल्याणकारी कार्यों की पूर्ति नहीं हो सकती।

(iii) यह अशुद्ध कर प्रणाली है क्योंकि उत्पादन का अर्थ लगाने में त्रुटि की गई है।

(iv) केवल प्रत्यक्ष कर द्वारा सरकार के व्ययों की पूर्ति सम्भव नहीं है।

(v) वर्तमान अर्थशास्त्री इस प्रकार प्रणाली से सन्तुष्ट नहीं हैं।

(4) **मूल्य** (Value)—प्रकृतिवादियों ने अपने आर्थिक विश्लेषण में मूल्य के सिद्धान्त पर बहुत ही कम ध्यान दिया। इसका एक कारण यह भी था कि उन्होंने अपना सारा ध्यान उत्पादन पर ही केन्द्रित किया परन्तु उनके विचारों से मूल्य के सम्बन्ध में कुछ जानकारी अवश्य मिलती है।

उनके अनुसार दो प्रकार के मूल्य हो सकते थे—(i) **आधारभूत मूल्य** (Fundamental Price), जो कि लागत पर आधारित था। बाद में इस मूल्य को सामान्य मूल्य (Normal Price) माना गया।

(ii) **प्रचलित मूल्य** (Prix Courant or Current Price), यह बाजार मूल्य था "दुर्लभता और प्रचुरता के कारण अर्थात् क्रेताओं और विक्रेताओं की स्पर्द्धा पर निर्भर था।" यहाँ माँग और पूर्ति का संकेत मिलता है।

उन्होंने सर्वप्रथम उपयोग मूल्य या उपयोगिता (Value in Use or USUELIE) तथा विनिमय मूल्य Value in Exchange or (VENALE) का अन्तर स्पष्ट किया।

TOUCH 'n' PASS

मूल्य (Value) और **कीमत** (Price) दोनों को वे एक ही मानते थे क्योंकि कैने के अनुसार, "जो मूल्य है, वही कीमत है।" उनके अनुसार धन वही है जिसमें विनिमय मूल्य रहता है। उन्होंने विनिमय मूल्य को ही अधिक महत्त्व दिया परन्तु उन्होंने उन शक्तियों पर विशेष ध्यान नहीं दिया जिनसे विनिमय मूल्य निर्धारित होता है। उनका विश्वास था कि आपस में विनिमय होने वाली वस्तुओं का मूल्य बराबर होता है।

प्रकृतिवादियों के अनुसार, सामान्य रूप से, मूल्य विनिमय का बाजार अनुपात है जो लागत से अधिक हो सकता है। **कैने** एवं अन्य प्रकृतिवादियों ने इस बात पर महत्त्व दिया कि मौलिक कीमत प्रतियोगिता द्वारा स्थापित होती है। इसके साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि बाजार कीमत, उत्पादन की सीमितता या अधिकता पर निर्भर रहती है अथवा क्रेता और विक्रेताओं की प्रतियोगिता पर जो माँग और पूर्ति का ही स्वरूप है। **कैने** के शब्दों में, "विनिमय-योग्य वस्तुओं का मूल्य उसे उत्पादन करने में लगने वाले श्रम द्वारा निर्धारित नहीं होता परन्तु उस वस्तु की माँग एवं बाजार के विस्तार द्वारा निर्धारित होता है।" उन्होंने प्राकृतिक कीमत का भी उल्लेख किया परन्तु वे यह स्पष्ट न कर सके कि वह निर्धारित कैसे होती है?

उपर्युक्त व्याख्या के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि प्रकृतिवादी मूल्य को लागत द्वारा निर्धारित मानते थे। यद्यपि वे यह चाहते थे कि कीमत में आवश्यक लागत भी सम्मिलित की जानी चाहिए परन्तु इसके आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने मूल्य के लागत सिद्धान्त (Cost Theory of Value) का प्रतिपादन किया।

(5) **मजदूरी, ब्याज एवं जनसंख्या** (Wage, Interest and Population)—मजदूरी के सम्बन्ध में प्रकृतिवादियों का कोई योगदान नहीं है। उनके मत में श्रमिक को जीवन-निर्वाह-योग्य ही मजदूरी मिलनी चाहिए परन्तु यह कितनी होनी चाहिए, इसका विश्लेषण उन्होंने नहीं किया। **तरगो** (Turgot) के अनुसार मजदूरी, मजदूरों के जीवन निर्वाह व्यय के बराबर होती है जिसमें कुछ विलासिता का व्यय एवं बचत भी शामिल रहती है। प्रकृतिवादियों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने मजदूरी को कोई समस्या ही नहीं माना।

यद्यपि प्रकृतिवादियों ने जनसंख्या का कोई सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किया, उन्होंने जनसंख्या के आधिक्य की सम्भावना व्यक्त की परन्तु वे उससे भयभीत नहीं थे। उनका विश्वास था कि यदि कृषि उत्पादन में वृद्धि नहीं होती तो जनसंख्या सीमित हो जाती है। उस समय फ्रांस में प्रचलित दृष्टिकोण के अनुसार जनसंख्या की वृद्धि प्राकृतिक व्यवस्था का आवश्यक अंग थी, अत: वह आशावाद की सूचक थी। **रिवेयर** (Revere) के शब्दों में, "यह प्राकृतिक व्यवस्था में निहित है कि इस प्रकार समाज में संयुक्त रूप से रहने वाले व्यक्ति द्रुत गति से बढ़ते हैं।"

पूँजी और ब्याज के सम्बन्ध में प्रकृतिवादियों ने महत्त्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किये। **उन्होंने मुद्रा और पूँजी में भेद स्पष्ट किया तथा पूँजी को बचत का परिणाम बताया। कृषि पूँजी के सम्बन्ध में उनका विश्वास था कि इससे वास्तविक लाभ होना चाहिए** अन्यथा इसका प्रयोग अन्यत्र होने लगेगा। उन्होंने बताया कि चूँकि भूमि से वास्तविक उत्पादन प्राप्त होता है, अत: उसके निमित्त लिए जाने वाले ऋण पर ब्याज लेना या देना सम्भव है। वे यह भी मानते थे कि ब्याज की दर में परिवर्तन होता रहता है जो वास्तविक उत्पादन की मात्रा एवं अनाज के मूल्य पर निर्भर रहता है। **कैने** के शब्दों में, जिस प्रकार भूमि से प्राप्त होने वाली आय प्राकृतिक नियम के अधीन होती है, उसी प्रकार ब्याज की उत्पादकता का सिद्धान्त प्रतिपादित किया यद्यपि उन्होंने उसे विकसित नहीं किया। उनके अनुसार ब्याज इसलिए दिया जाता है क्योंकि पूँजीपति, पूँजी को भूमि में विनियोग कर सकता है।

प्र.6. पेटी, ह्यूम एवं लॉक के आर्थिक विचारों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

Describe in detail the economic thoughts of Petty, Hume and Locke.

उत्तर

1. विलियम पेटी
(William Petty)

पेटी का जन्म हैम्पशायर में 16 दिसम्बर, 1623 को हुआ था। पेटी को राजनीतिक अर्थव्यवस्था और सांख्यिकीय विधि का संस्थापक माना जाता है। वह आर्थिक सिद्धान्त के क्षेत्र में अपने योगदान के लिए याद किये जाते रहेंगे। वे परिमाणात्मक रुचि रखते थे तथा उन्होंने आर्थिक अन्वेषण में पहली बार यथार्थ-खोज धारणा का विकास किया।

सांख्यिकीकर्त्ता के रूप में पेटी ने केवल परिमाणात्मक आँकड़ों का ही प्रयोग किया तथा सांख्यिकीय तकनीक के रूप में साधारण औसत का उपयोग किया। अर्थशास्त्र के क्षेत्र में पेटी को जो अलग करता है वह सांख्यिकीय विधि नहीं वरन् आर्थिक विचार है जो उन्होंने अपने सांख्यिकी अनुसन्धानों से प्राप्त किये। उनके आर्थिक विचार समय और देश की वास्तविक समस्याओं पर अत्यधिक

TOUCH 'n' PASS

चिन्तन के परिणाम थे। पेटी का आर्थिक सिद्धान्त में सबसे बड़ा योगदान प्राकृतिक समता का सिद्धान्त था जिसमें उसके लगान तथा मूल्य सम्बन्धी विचार भी सम्मिलित हैं।

पेटी के आर्थिक कार्य एवं सिद्धान्त–सिंहावलोकन
(Petty's Economic Work and Theories : Overview)

विलियम पेटी के आर्थिक सिद्धान्तों को महत्त्वपूर्ण रूप से दो व्यक्तियों ने प्रभावित किया। पहले थॉमस हॉब्स थे, जिनके लिए पेटी ने निजी सचिव के रूप में काम किया। हॉब्स के अनुसार सिद्धान्त को "नागरिक शान्ति और भौतिक प्रचुरता" के लिए तर्कसंगत आवश्यकताओं को निर्धारित करना चाहिए। जैसा कि हॉब्स शान्ति पर केन्द्रित था, पेटी ने समृद्धि को चुना। द्वितीय फ्रांसिस बेकन थे, जिनका प्रभाव भी गहरा था। बेकन और हॉब्स ने यह दृढ़ विश्वास रखा कि गणित और इन्द्रियाँ सभी तर्कसंगत विज्ञानों का आधार होना चाहिए। सटीकता के लिए इस जुनून ने पेटी को प्रसिद्ध रूप से घोषित किया कि उनका विज्ञान का रूप केवल मापने योग्य एवं तुलनात्मक या अतिशयोक्ति पर भरोसा करने के बजाय मात्रात्मक सटीकता की तलाश करेगा। उन्होंने एक नया विषय उत्पन्न किया जिसे उन्होंने राजनीतिक अंकगणित नाम दिया। इस प्रकार पेटी ने थॉमस मुन या योशिय्याह चाइल्ड जैसे व्यापारी पत्रकों एवं जॉन लोक जैसे अर्थशास्त्री पर कभी-कभी चर्चा करने वाले दार्शनिक वैज्ञानिकों के बीच पहले समर्पित आर्थिक वैज्ञानिक के रूप में खुद के लिए एक जगह बनायी।

पेटी ने अर्थशास्त्र पर तीन मुख्य कार्यों को लिखा है—

(i) करों एवं योगदान का ग्रन्थ (1662), (ii) वर्बम सेपिएंटी [Verbum Sapienti (1665)] एवं (iii) मुद्रा के सम्बन्ध में (Quantitum cheque) (1682)। 1690 के दशक में इन कार्यों पर बहुत ध्यान दिया गया।

पेटी ने भविष्य के अर्थशास्त्र के कई क्षेत्रों की ओर रुख किया। करों के बारे में विलियम पेटी के विचार, राष्ट्रीय आय गणना सांख्यिकी, मुद्रा आपूर्ति और संचालन दर, मूल्य और ब्याज का सिद्धान्त, लोक प्रशासन, विनिमय दर विनियमन और व्यापार पूर्ण रोजगार, श्रम का विभाजन और कई अन्य विषयों में कार्य किया एवं उनके आर्थिक विचारों ने कई प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों के विचारों को प्रभावित किया। एक अर्थ में एडम स्मिथ, कार्ल मार्क्स और जॉन मेनार्ड कीन्स जैसे महान अर्थशास्त्री उनके अनुयायी बन गये।

पेटी के आर्थिक विचार (Economic Thoughts of Petty)

पेटी के आर्थिक विचारों को हम निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन कर सकते हैं—

कर, सांख्यिकी और राष्ट्रीय आय लेखांकन—पेटीएम के समय, इंग्लैण्ड में मर्केंटिलिज्म प्रमुख अवधारणा थी। इंग्लैण्ड हॉलैण्ड के साथ युद्ध में था और उसे पैसे की जरूरत थी। इसलिए पेटीएम कराधान के सही सिद्धान्तों की तलाश में था। वे युद्ध के संचालन के लिए ताबूतों को भरने में मदद करने वाले थे। पेटीएम ने संग्रह के छह क्षेत्रों को चुना। उनका मानना था कि उन्हें नियमित और आनुपातिक होना चाहिए। पेटीएम ने न केवल कीमती धातुओं, बल्कि धन के रूप में कर संग्रह की वकालत की। राष्ट्रीय आय की गणना करते समय उन्होंने इसी सिद्धान्त का उपयोग किया। उनका मानना था कि राज्य की सम्पत्ति न केवल सोने और चाँदी में है, बल्कि धन में भी है। उनकी गणना के अनुसार 1660 के दशक में इंग्लैण्ड की राष्ट्रीय आय 667 मिलियन पाउण्ड थी।

आँकड़ों में पेटीएम ने औसत का उपयोग किया। हालाँकि उस समय यह एक बड़ी उपलब्धि थी। वस्तुत: उससे पहले किसी ने भी मात्रात्मक संकेतकों का उपयोग नहीं किया था। आयरलैण्ड से जनगणना के आँकड़े भी प्राप्त करना बहुत मुश्किल था। इसलिए पेटीएम लोगों की संख्या का अनुमान लगाने के अपने तरीके के साथ आया। उनका मानना था कि 30% के निर्यात में वृद्धि से जनसंख्या में आनुपातिक वृद्धि होती है और हर साल तीस में से एक व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। इसलिए लन्दन के निवासियों की संख्या का अनुमान लगाया। पेटीएम ने सुझाव दिया कि पूरे देश में आठ गुना अधिक लोग थे। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि एक वैज्ञानिक के जीवन के दौरान इस पद्धति की आलोचना की गयी थी।

मूल्य और ब्याज का सिद्धान्त—पेटी विलियम ने अरस्तू द्वारा शुरू की गयी चर्चा को जारी रखा। उन्होंने मूल्य के सिद्धान्त को जारी रखा, जो उत्पादन पर खर्च किये गये संसाधनों पर आधारित था। उन्होंने दो कारक निकाले—भूमि और श्रम। दोनों कर योग्य आय के स्रोत थे। पेटीएम एक समीकरण बनाना चाहता था जिसके परिणामस्वरूप माल की सही लागत होगी। एक महत्त्वपूर्ण घटक, उन्होंने समग्र प्रदर्शन पर भी विचार किया। पेटीएम ने किराये की गणना के मूल्य के अपने सिद्धान्त को लागू किया। ब्याज दर के रूप में उन दिनों में कई अभी भी इस तरह के लाभ को पापी मानते हैं। हालाँकि, पेटीएम इस व्याख्या से सहमत नहीं था। वह उधारकर्त्ता से पैसे का उपयोग करने से इंकार करने के लिए इनाम की अवधारणा का परिचय देता है।

विलियम पेटी को अक्सर पहला वास्तविक अर्थशास्त्री कहा जाता है। उनके शोध की गहराई ने उन्हें थॉमस मैन, जोशिया चाइल्ड और जॉन लोक से ऊपर रखा। पेटीएम के काम से पहले राजनीतिक अर्थव्यवस्था थी। उनके सबसे प्रसिद्ध सिद्धान्त कराधान, राष्ट्रीय धन, धन की आपूर्ति और इसकी संचलन दर, मूल्य, ब्याज दर, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और सार्वजनिक निवेश से सम्बन्धित है। मर्दान्तवादी विचारों के खिलाफ बोलने वाले पहले पेटीएम में से एक था। उनका मानना था कि किसी भी उत्पाद की लागत उसके उत्पादन पर खर्च किये गये श्रम पर आधारित होनी चाहिए। देश की राष्ट्रीय सम्पत्ति, उनकी राय में, न केवल सोने और चाँदी में शामिल है और न केवल पैसे की कमी है, बल्कि उनका अधिशेष भी हानिकारक है।

विलियम पेटी रॉयल सोसाइटी के संस्थापक और सदस्य हैं। सबसे अधिक, वह आर्थिक इतिहास और आँकड़ों पर अपने काम के लिए जाना जाता है। आधुनिक जनगणना तकनीकों के संस्थापक विलियम पेटी है। वैज्ञानिक के कार्यों में निम्नलिखित कार्य शामिल हैं—

'करो और शुल्क पर समझौत' (1662)।

'राजनीतिक अंकगणित' (1676)।

वर्बम सपिएंटी (1664)।

'आयरलैण्ड का राजनीतिक शरीर रचना विज्ञान' (1672)।

'पैसे के बारे में' (1682)।

'मानव जाति के गुणन पर निबन्ध' (1682)।

गैर-हस्तक्षेप के सिद्धान्त पर आधारित प्रबन्धन—पेटी विलियम ने अपने काम में जिन महत्त्वपूर्ण विषयों को उठाया, उनमें से एक है सरकार में लॉजेज-फेयर का दर्शन। यहाँ उन्होंने एक स्वस्थ जीव के काम में गैर-हस्तक्षेप के चिकित्सा सिद्धान्त पर भरोसा किया। उन्होंने इसे एकाधिकार पर लागू किया और धन के निर्यात को नियन्त्रित करने के लिए और वस्तुओं में व्यापार करने के लिए। उनका मानना था कि सरकारी नियमन अच्छे से करता है।

2. डेविड ह्यूम
(David Hume)

डेविड ह्यूम का जन्म 26 अप्रैल, 1711 को स्कॉटलैण्ड के एडिनबर्ग में हुआ। इनके पिता जोसेफ ह्यूम जो डेविड के जन्म के दो वर्ष बाद चल बसे थे। माता कैथरीन ने डेविड ह्यूम एवं इनके भाई-बहिन की परवरिश की। डेविड ह्यूम ने अपना ज्यादातर बचपन बाइनवेल्स में बिताया। डेविड ह्यूम की मृत्यु 25 अगस्त, 1776 को हुई। उसी समय एडम स्मिथ की पुस्तक "Wealth of Nation" प्रकाशित हुई थी।

डेविड ह्यूम के आर्थिक विचार (Economic Thoughts of David Hume)

डेविड ह्यूम का मानना था कि किसी भी राज्य का व्यापार एवं कर प्रणाली ही राज्य के राजा को शक्तिशाली बनाती है एवं राज्य की प्रजा भी राजा से खुश रहती है।

हालाँकि डेविड ह्यूम ने अर्थशास्त्र से सम्बन्धित कोई पुस्तक तो नहीं लिखी है लेकिन उसकी एक पुस्तक जिसका नाम 'पॉलिटिकल डिस्कोर्सस' है। इसमें उन्होंने अर्थशास्त्र से सम्बन्धित एक निबन्ध लिखा है जिसके आधार पर हम उनके अर्थशास्त्र एवं आर्थिक विचारों की अवधारणा को समझ सकते हैं जिसकी व्याख्या निम्नलिखित शीर्षकों में व्यक्त की गयी है—

(i) **अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार**—ह्यूम ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सन्दर्भ में बताया कि दो देशों के बीच अगर मुक्त व्यापार होता है तो निर्यात अधिक होता है एवं लाभ भी और जो आयातकर्त्ता देश है उन्हें हानि होती है। ये विचार उस समय का है, जिस समय **वाणिकवाद** का चलन बहुत जोरों पर था, उस समय ये माना जाता था कि जो भी राष्ट्र या देश जितना अधिक सोना-चाँदी जमा करेगा वह उतना ही अधिक शक्तिशाली होगा परन्तु डेविड ह्यूम का विचार हम थोड़ा अलग देखते हैं। उनका मानना था कि अगर कोई देश में निर्यात अधिक होता है तो परिणामस्वरूप उस देश में सोने-चाँदी जैसे अधिक मुद्राओं की प्राप्ति होती है, जिससे उस देश में मुद्रा की पूर्ति बढ़ जाती है और नतीजा स्फीतिक दशाएँ उत्पन्न होने लगती है एवं कीमतें बढ़ जाती हैं। निर्यात पहले की तुलना में अधिक महँगा हो जाता है और अन्य देशों में उसका निर्यात अधिक नहीं हो पाता है।

डेविड ह्यूम का दूसरा तर्क यह है कि जब मुद्रा की पूर्ति बढ़ जाती है तो लोगां की आय एवं लाभ में भी बढ़त होती है जिससे विदेशी वस्तुओं का आयात भी बढ़ जाता है। आय एवं लाभ का एक बड़ा भाग आयात करने के कारण विदेशों को

TOUCH 'n' PASS

वापस चला जाता है, जिससे उस देश का आर्थिक विकास जितना होना चाहिए, उतना नहीं हो पाता है। इस प्रकार आयात-एवं निर्यात में स्वत: सन्तुलन स्थापित हो जाता है।

(ii) **मुद्रा के परिमाण का सिद्धान्त**—इस सिद्धान्त में डेविड ह्यूम ने बताया कि बहुत अधिक निर्यात करके कोई भी देश मुद्रा की पूर्ति को बढ़ा सकता है लेकिन आर्थिक विकास नहीं कर सकता। ऐसे में डेविड ह्यूम का मानना था कि निर्यात के द्वारा जो भी मुद्राएँ देश अर्जित करता है तो उनका उपयोग विदेशी व्यापार के अतिरिक्त अन्य उत्पादक कार्यों में भी लगाना चाहिए जिससे कीमतों में नियन्त्रण होगा और उस देश के लोगों की आय बढ़ेगी एवं उस देश के आर्थिक विकास को एक गति मिलेगी।

(iii) **श्रम की महत्ता का सिद्धान्त**—डेविड ह्यूम ने श्रम को भी बहुत महत्त्वपूर्ण माना है। उन्होंने श्रम को दो भागों में विभाजित किया, **पहला**—उत्पादक श्रम, जिसके अन्तर्गत व्यापारी वर्ग एवं उत्पादक श्रमिकों व किसानों को रखा गया। दूसरा, अनुत्पादक श्रम, जिसके अन्तर्गत पेशेवर वकील, डॉक्टर व अन्य लोगों को रखा गया। डेविड ह्यूम का मानना था कि किसी भी देश के लोग अपने श्रम से ही अपना अपने देश का आर्थिक विकास सम्भव कर पाते हैं।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवरण के आधार पर स्पष्ट होता है कि डेविड ह्यूम ने किसी भी देश की आर्थिक गतिविधियों के दोनों पक्षों (लाभ एवं हानि) को स्पष्ट किया है। उन्होंने निर्यात के माध्यम से अर्जित मुद्रा को जमा करने से आर्थिक विकास उतना सम्भव नहीं हो पाता है लेकिन एक हिसाब से यह सही भी है क्योंकि युद्ध के दौरान एवं अन्य आपदाओं के दौरान यह उन्हें मजबूत बनाये रखता है। इस प्रकार डेविड ह्यूम के आर्थिक विचारों को महत्त्वपूर्ण आर्थिक विचारों में माना जा सकता है।

(3) जॉन लॉक
(John Locke)

जॉन लॉक का जन्म 29 अगस्त, 1632 को ब्रिस्टल से लगभग 12 मील दूरी पर सामरसेंट शायर के रिंगटन में हुआ था। जॉन लॉक के माता-पिता प्यूरिटन थे। लॉक के पिता एक वकील थे जिन्होंने च्यू मैग्ना में जस्टिस ऑफ द पीस के क्लर्क के रूप में और अंग्रेजी गृहयुद्ध के शुरूआती भाग के दौरान संसदीय बलों के लिए घुड़सवार सेना के कप्तान के रूप में कार्य किया। उनकी माँ एग्नेस कीने थी।

लॉक को फरवरी 1656 में स्नातक की डिग्री और जून 1658 में मास्टर डिग्री से सम्मानित किया गया। उन्होंने फरवरी 1675 में चिकित्सा स्नातक की उपाधि प्राप्त की। ऑक्सफोर्ड में अपने समय के दौरान इस विषय का व्यापक अध्ययन किया और लोअर के अलावा, रॉबर्ट बॉयल, थॉमस विलिस और रॉबर्ट हुक जैसे प्रसिद्ध वैज्ञानिकों और विचारकों के साथ काम किया। 1666 में वह एंथनी एशले कूपर, लॉर्ड एशले से मिले, जो एक जिगर के संक्रमण के इलाज के लिए ऑक्सफोर्ड आये थे। एशले लॉक से प्रभावित हुए और उन्हें अपने अनुचर का हिस्सा बनने के लिए राजी किया।

लॉक करियर की तलाश में थे और 1667 में अपने निजी चिकित्सक के रूप में काम करने के लिए लन्दन के एक्सेटर हाउस में एशले के घर चले गये। लन्दन में लॉक ने थॉमस सिडेनहैम के संरक्षण में अपनी चिकित्सा की पढ़ाई फिर से शुरू की। सिडेनहैम का लॉक की प्राकृतिक दार्शनिक सोच पर एक बड़ा प्रभाव पड़ा—एक ऐसा प्रभाव जो मानव समझ के सम्बन्ध में था।

महत्त्वपूर्ण रचनाएँ
(Important Works)

हॉलैण्ड से लौटकर लॉक ने लेखन कार्य प्रारम्भ किया। लॉक ने राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, शिक्षा, दर्शनशास्त्र आदि विषयों पर 30 से अधिक ग्रन्थ लिखे।

जॉन लॉक के आर्थिक विचार (Economic Thoughts of John Locke)

जॉन लॉक ने चेतना की निरन्तरता के माध्यम से स्वयं को परिभाषित करने वाले पहले व्यक्ति थे। जॉन लॉक के आर्थिक विचारों को निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन किया गया है—

(i) **मूल्य एवं सम्पत्ति का सिद्धान्त**—लॉक ने सम्पत्ति की अवधारणा को व्यापक तथा संकीर्ण दोनों रूपों में उपयोग किया है। इनमें से अधिकतम मानव हित एवं इनकी इच्छाओं की शृंखला शामिल है। लॉक का कथन है कि सम्पत्ति एक प्राकृतिक अधिकार है, जो श्रम से प्राप्त होता है। लॉक ने अपने दूसरे ग्रन्थ में यह तर्क प्रस्तुत किया कि प्रकृति अपने आप में समाज को बहुत कम मूल्य प्रदान करती है, जिसका अर्थ है कि माल के निर्माण में खर्च किया गया श्रम उन्हें अपना

मूल्य देता है। इस प्रकार इसे मूल्य के लिए एक श्रम सिद्धान्त के रूप में समझा जाता है। "लॉक ने सम्पत्ति का एक श्रम सिद्धान्त भी विकसित किया, जिसके द्वारा सम्पत्ति का स्वामित्व श्रम के अनुप्रयोग द्वारा निर्मित होता है। इसके अलावा उनका मानना था कि सम्पत्ति सरकार से पहले होती है और सरकार मनमाने ढंग से विषयों की सम्पदा का निपटारा नहीं कर सकती।" कार्ल मार्क्स ने बाद में अपने सामाजिक सिद्धान्त में लॉक के सम्पत्ति के सिद्धान्त की आलोचना की थी।

(ii) **संचय की सीमा का सिद्धान्त**—लॉक के अनुसार, "अप्रयुक्त सम्पत्ति बेकार है एवं प्रकृति के खिलाफ अपराध है। लेकिन टिकाऊ वस्तुओं की शुरूआत के साथ ही मनुष्य अपने अत्यधिक खराब होने वाले वस्तुओं का आदान-प्रदान कर सकते हैं, जो लम्बे समय तक चलेंगे और इस तरह प्राकृतिक कानून व नियमों का उल्लंघन नहीं होगा। लॉक के अनुसार धन की शुरूआत ने इस प्रक्रिया की गति को चिह्नित किया, जिससे सम्पत्ति का असीमित संचय सम्भव हो गया। लॉक सोने व चाँदी को पैसे के रूप में शामिल करते हैं क्योंकि वे "बिना किसी को चोट पहुँचाये जमा किये जा सकते हैं"—क्योंकि वे मालिक के हाथों खराब या सड़ते नहीं हैं। उनके विचार में धन का परिचय संचय की सीमा को समाप्त कर देता है। लॉक इस बात पर जोर देते हैं कि असमानता पैसे के उपयोग पर मौन समझौते से आयी है न कि नागरिक समाज की स्थापना करने वाले सामाजिक अनुबन्ध या सम्पत्ति को नियन्त्रित करने वाले भूमि के कानून द्वारा। लॉक असीमित संचय से उत्पन्न समस्या से अवगत है लेकिन वे इसे अपना कार्य नहीं मानते हैं। उनका तात्पर्य यह है कि सरकार सम्पत्ति के असीमित संचय और धन के लगभग समान वितरण के बीच संघर्ष को नियन्त्रित करने के लिए कार्य करेगी। वह यह नहीं पहचानते कि इस समस्या को हल करने के लिए सरकार को किन सिद्धान्तों को लागू करना चाहिए। हालाँकि उनके विचार के सभी तत्त्व एक सुसंगत सम्पूर्ण नहीं है। उदाहरण के लिए, सरकार के दो सन्धियों में मूल्य का श्रम सिद्धान्त मूल्य और माँग और आपूर्ति सिद्धान्त के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर खड़ा है, जिसका शीर्षक उन्होंने एक पत्र में लिखा है, जिसका शीर्षक है **ब्याज के कम होने के परिणाम पर कुछ विचार और धन की वृद्धि का मूल्य**। इसके अलावा लॉक श्रम में सम्पत्ति का लंगर डालता है लेकिन अन्त में धन के असीमित संचय को बनाये रखता है।

(iii) **मूल्य एवं मूल्य का सामान्य सिद्धान्त**—लॉक का मूल्य एवं मूल्य का सामान्य सिद्धान्त एक माँग एवं आपूर्ति का सिद्धान्त है, जिसे 1691 में संसद के एक सदस्य को लिखे गये एक पत्र में निर्धारित किया गया था, जिसका शीर्षक था, "ब्याज के कम होने एवं धन के मूल्य को बढ़ाने के परिणामों पर कुछ विचार।" इसमें वह आपूर्ति को मात्रा के रूप में एवं माँग को किराये के रूप में सन्दर्भित करते हैं। लॉक का मानना है कि, "किसी भी वस्तु की कीमत क्रेताओं एवं विक्रेताओं की संख्या के अनुपात में बढ़ती या घटती है एवं जो वस्तु की कीमत को नियन्त्रित करता है, उस वस्तु के किराये के अनुपात में उस वस्तु की मात्रा के अलावा कुछ नहीं है।

धन के मात्रा का सिद्धान्त इस सामान्य सिद्धान्त को विशेष बनाता है। लॉक के अनुसार, धन सभी चीजों का जवाब देता है या धन का किराया हमेशा पर्याप्त है या पर्याप्त से अधिक है, पर स्थिर है एवं बहुत कम परिवर्तित होता है। लॉक ने निष्कर्ष निकाला कि जहाँ तक धन का सम्बन्ध है माँग है इसकी मात्रा द्वारा विशेष रूप से विनियमित किया जाता है, भले ही धन की माँग या असीमित या स्थिर हो। वह माँग एवं आपूर्ति के निर्धारकों की भी जाँच करता है एवं आय के प्रवाह को उत्पन्न करने की उसकी क्षमता के आधार पर वस्तुओं की माँग की व्याख्या करता है। इस आधार पर लॉक ने पूँजीकरण का एक प्रारम्भिक सिद्धान्त विकसित किया। लॉक ने धन की माँग को लगभग भूमि की माँग के समान माना है क्योंकि भूमि, जिसका मूल्य होता है और वही बिक्री योग्य वस्तुओं के निरन्तर उत्पादन से एक निश्चित वार्षिक आय अर्जित करती है लेकिन वह इस बात पर निर्भर करता है कि भूमि, मुद्रा विनिमय के माध्यम के रूप में वांछित है या नहीं। विनिमय के एक माध्यम के रूप में लॉक का कथन है कि, "धन हमें जीवन की आवश्यकताओं या सुविधाओं की खरीद के बदले में सक्षम है एवं ऋण योग्य धन के लिए यह एक निश्चित वार्षिक आय अर्थात् ब्याज अर्जित करके भूमि के जैसे ही समान प्रकृति का हो जाता है।

(iv) **मौद्रिक विचार**—लॉक धन के दो कार्यों को अलग करता है पहला मूल्य को मापने के लिए एक काउण्टर के रूप में और दूसरा माल पर दावा करने की प्रतिज्ञा के रूप में। उनका मानना है कि कागजी मुद्रा के विपरीत चाँदी और सोना अन्तर्राष्ट्रीय लेन-देन के लिए उपयुक्त मुद्रा है। उनका कहना है कि चाँदी और सोना सभी मानवता द्वारा समान मूल्य के रूप में जाना जाता है और इस प्रकार इसे किसी के द्वारा प्रतिज्ञा के रूप में माना जा सकता है, जबकि कागजी धन का मूल्य केवल उस सरकार के तहत् मान्य होता है जो इसे जारी करती है।

TOUCH 'n' PASS

लॉक का तर्क है कि एक देश को व्यापार के अनुकूल सन्तुलन की तलाश करनी चाहिए, ऐसा न हो कि वह अन्य देशों से पीछे हो जाए और उसके व्यापार में नुकसान हो। चूँकि विश्व मुद्रा भण्डार लगातार बढ़ता है एक देश को लगातार अपने स्वयं के स्टॉक को बढ़ाने की कोशिश करनी चाहिए। लॉक ने विदेशी मुद्रा के अपने सिद्धान्त को विकसित किया, कमोडिटी आन्दोलनों के अलावा देश के धन के स्टॉक में भी आन्दोलन होते हैं और पूँजी की गति विनिमय दर निर्धारित करती है। वह बाद वाले को कमोडिटी मूवमेंट की तुलना में कम महत्त्वपूर्ण और कम अस्थिर मानते हैं। जहाँ तक किसी देश के मुद्रा भण्डार का सम्बन्ध है, यदि यह अन्य देशों के सापेक्ष बड़ा है, तो उनका कहना है कि इससे देश का विनिमय सममूल्य से ऊपर उठेगा जैसा कि निर्यात सन्तुलन करेगा।

वह विभिन्न आर्थिक समूहों (भूमिधारकों, मजदूरों और दलालों) के लिए नकद आवश्यकताओं का अनुमान भी तैयार करता है। प्रत्येक समूह में वह मानता है कि नकद आवश्यकताएँ वेतन अवधि की लम्बाई से निकटता से सम्बन्धित है। उनका तर्क है कि दलालों, बिचौलियों—जिनकी गतिविधियाँ मौद्रिक सर्किट को बढ़ाती है और जिनके लाभ मजदूरों एवं जमींदारों की कमाई को खा जाते हैं, उनका व्यक्तिगत और सार्वजनिक अर्थव्यवस्था दोनों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, जिसमें वे कथित रूप से योगदान करते हैं।

(v) **धार्मिक सहिष्णुता का सिद्धान्त**—लॉक ने धर्म के यूरोपीय युद्धों के बाद अपने लेटर्स कंसर्निंग टॉलरेशन (1689-1692) को लिखते हुए धार्मिक सहिष्णुता के लिए एक उत्कृष्ट तर्क तैयार किया, जिसमें तीन केन्द्रीय तर्क हैं—

(a) सांसारिक न्यायाधीश, विशेष रूप से राज्य और सामान्य रूप से मनुष्य, प्रतिस्पर्धी धार्मिक दृष्टिकोणों के सत्य दावों का भरोसेमन्द मूल्यांकन नहीं कर सकते हैं।

(b) हिंसा से विश्वास को मजबूर नहीं किया जा सकता है, भले ही वे एक सच्चे धर्म को लागू करने के लिए हो, उसका वांछित प्रभाव नहीं होगा।

(c) विविधता की अनुमति देने की तुलना में धार्मिक एकरूपता में बाध्य करने से अधिक सामाजिक अव्यवस्था उत्पन्न होगी।

धार्मिक सहिष्णुता पर अपनी स्थिति के सम्बन्ध में जैन लॉक स्मिथ और थॉमस, हेलविस जैसे बैपटिस्ट धर्मशास्त्रियों से प्रभावित थे, जिन्होंने 17वीं शताब्दी की शुरूआत में अन्तरात्मा की स्वतन्त्रता की माँग करते हुए ट्रैक्ट प्रकाशित किये। बैपटिस्ट धर्मशास्त्री रोजर विलियम्स ने 1636 में रोड आइलैण्ड के उपनिवेश की स्थापना की, जहाँ उन्होंने असीमित धार्मिक स्वतन्त्रता के साथ एक लोकतान्त्रिक संविधान को जोड़ा। उनका ट्रैक्ट द ब्लॉडी टेनेंट ऑफ परसेक्यूशन फॉर कॉज ऑफ कॉन्शियस (1644) जिसे मातृ देश में व्यापक रूप से पढ़ा गया था, जो पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता और चर्च और राज्य के पूर्ण अलगाव के लिए एक भावुक दलील थी। ❐

TOUCH 'n' PASS

UNIT-IV

प्रतिष्ठित काल के प्रमुख अर्थशास्त्री

Prominent Economists of Classical Period

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र क्या है?

What is classical economics?

उत्तर प्रकृतिवाद के समाप्त होने के सौ वर्ष बाद इंग्लैण्ड में जिन सिद्धान्तों का बोलबाला रहा, उन्हें प्रतिष्ठित अथवा परम्परावादी अर्थशास्त्र के नाम से सम्बोधित किया जाता है। प्रतिष्ठित सिद्धान्त एडम स्मिथ और उसके अनुयायियों द्वारा 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा उसके बाद के काल में प्रतिपादित किये गये थे। एडम स्मिथ को प्रतिष्ठित सम्प्रदाय का नेता और प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र का पिता या संस्थापक माना जाता है।

प्र.2. वेल्थ ऑफ नेशन्स क्या है?

What is wealth of nations?

उत्तर एडम स्मिथ की यह महान् पुस्तक जिसका पूरा नाम *'An Enquiry into the Nature and Causes of the Wealth of Nations'* है, एक क्रान्तिकारी रचना है जिसका प्रकाशन सन् 1776 में हुआ। एक विश्लेषणात्मक कृति के रूप में असम्बद्ध एवं विषयान्तर होने के बावजूद भी यह पुस्तक अपने नाम के अनुरूप ही है। वास्तव में यह पुस्तक राष्ट्रों की सम्पत्ति के कारणों और उनकी प्रकृति का अनुसन्धान है। यद्यपि स्मिथ को अपनी पहली ही पुस्तक *'Theory of Moral Sentiments'* के कारण काफी प्रसिद्धि मिल चुकी थी किन्तु **'वेल्थ ऑफ नेशन्स'** ने उन्हें ख्याति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा दिया।

प्र.3. स्मिथ पर वाणिज्यवादियों का क्या प्रभाव पड़ा?

What was the impact of the mercantilists on Smith.

उत्तर वाणिज्यवाद के अन्तिम चरण के लेखकों द्वारा स्मिथ विशेष रूप से प्रभावित हुए। **डडले नार्थ** द्वारा संरक्षण के विरोध में दी गयी दलीलों को स्मिथ ने अपना स्वतन्त्र व्यापार का आधार बनाया। मौद्रिक सिद्धान्त की व्याख्या में स्मिथ ने वाणिज्यवादी लेखक **ह्यूम, लॉक** और **स्टुअर्ट** से विचार ग्रहण किये हैं। राजस्व के सिद्धान्तों के लिए **स्मिथ विलियम पेटी** एवं **स्टुअर्ट** के प्रति ऋणी हैं क्योंकि वे इनसे बहुत प्रभावित हुए। अपने मूल्य सिद्धान्त के विश्लेषण में भी स्मिथ उपर्युक्त दो लेखकों के अतिरिक्त केंटलिन से भी प्रभावित हुए।

प्र.4. स्मिथ पर प्रकृतिवादियों का क्या प्रभाव पड़ा?

What was the impact of the physiocrats on Smith?

उत्तर प्रकृतिवादियों ने स्मिथ को बहुत अधिक प्रभावित किया। यह स्पष्ट किया जा चुका है कि अपनी यूरोप की यात्रा के समय स्मिथ, प्रकृतिवाद के प्रमुख लेखक **केने** एवं **तरगो** से मिल चुके थे तथा उनके विचारों को जानकर उनसे प्रभावित हो चुके थे। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि स्मिथ को स्वहित (Self-interest) की प्रेरणा प्रकृतिवादी लेखक **मेन्डेविले** से प्राप्त हुई। स्मिथ ने अपनी पुस्तक *'Wealth of Nations'* में **कैने** एवं **मर्सियर डिला रिवेयर** का उल्लेख किया है। स्मिथ के बहुत-से विचार प्रकृतिवादियों से मिलते-जुलते हैं। स्मिथ का प्रकृतिवाद (Naturalism) एवं आधिक्य का विचार—दोनों प्रकृतिवादियो के अनुरूप ही है।

TOUCH 'n PASS

प्र.5. रिकार्डो के करारोपण सम्बन्धी विचार को लिखिए।
Write the views of taxation of Ricardo.

उत्तर रिकार्डो ने यद्यपि अपनी पुस्तक में विभिन्न स्थानों पर कराधान का विवेचन किया है किन्तु वह इस विषय पर अपने विचारों को अधिक विकसित नहीं कर सके। करारोपण के सम्बन्ध में रिकार्डो के विचार संक्षेप में इस प्रकार हैं—(अ) कर मुख्य रूप से **लगान पर होना** चाहिए क्योंकि लगान ही वास्तविक बचत है और प्राकृतिक नि:शुल्क उपहार है। (ब) कर पूँजी पर नहीं, **आय पर लगाना** चाहिए क्योंकि यदि पूँजी पर कर लगाया जाएगा तो देश के उद्योग और व्यापार पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। (स) मजदूरी को उन्होंने **कर से मुक्त** रखने के लिए कहा क्योंकि मजदूरी जीवन निर्वाह के बराबर होती है और यदि उस पर कर लगाया जाएगा तो मजदूरों की निर्धनता बढ़ेगी। (द) लाभ पर भी एक सीमा तक कर लगाया जा सकता है।

प्र.6. रिकार्डो के प्रावैगिक विकास के सिद्धान्त की कमियाँ लिखिए।
Write the demerits of dynamic theory of development of Ricardo.

उत्तर यद्यपि रिकार्डो का आर्थिक विकास का सिद्धान्त **'प्रावैगिक इतिहास का सिद्धान्त'** (Dynamic Aggregative Theory of Development) का एक अच्छा उदाहरण है परन्तु इसमें निम्न कमियाँ हैं—

(i) रिकार्डो ने प्राविधिक प्रगति की सम्भावनाओं का समुचित अनुमान नहीं लगाया।
(ii) रिकार्डो का सिद्धान्त माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त तथा उत्पादन ह्रास नियम पर आधारित है परन्तु ये दोनों ही सिद्धान्त त्रुटिपूर्ण सिद्धान्त हो चुके हैं।
(iii) रिकार्डो का विश्लेषण अवास्तविक मान्यता पर आधारित है।

प्र.7. रिकार्डो की आर्थिक विकास की अवस्थाएँ बताइए।
State the stages of economic development of Ricardo.

उत्तर रिकार्डो ने आर्थिक विकास की निम्नलिखित अवस्थाएँ बतायी हैं—

आर्थिक विकास की पहली अवस्था में (अ) भूमिपतियों को लगान नहीं मिलता; (ब) श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी मिलती है और (स) पूँजीपतियों को अधिक लाभ प्राप्त होते हैं।

आर्थिक विकास की **दूसरी अवस्था** में (अ) भूमिपतियों को पहली बार लगान मिलने लगता है; (ब) मजदूरों की मजदूरी में वृद्धि हो जाती है; (स) पूँजीपतियों के लाभ कम हो जाते हैं।

विकास की **तीसरी अवस्था** में (अ) भूमिपतियों के लगान बढ़ते रहते हैं; (ब) मजदूरों की मजदूरी गिर जाती है; (स) पूँजीपतियों के लाभ पूर्ववत् रहते हैं या बढ़ जाते हैं।

चौथी अवस्था जिसे रिकार्डो ने **दीर्घकालीन स्थिर दशा** कहा है, की विशेषताएँ इस प्रकार हैं—(अ) विकास की दर शून्य होगी। (ब) लाभ शून्य या लगभग शून्य के बराबर होगा। (स) मजदूरी जीवन-निर्वाह स्तर पर स्थिर हो जाएगी। (द) लगान की दर ऊँची होगी।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. एडम स्मिथ का अर्थशास्त्र के संस्थापक के रूप में जीवन परिचय दीजिए।
Give the life sketch of Smith as a propounder of Economics.

उत्तर

एडम स्मिथ अर्थशास्त्र के संस्थापक के रूप में
(Adam Smith as a Propounder of Economics)

इस सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में मतभेद है कि अर्थशास्त्र का वास्तविक संस्थापक कौन है। यद्यपि आर्थिक विचारों के इतिहास में **'वाणिज्यवादियों'** का नाम सर्वप्रथम आता है लेकिन फिर भी इस विचारधारा का कोई महत्त्व नहीं है क्योंकि उनके विचार अपूर्ण, अवैज्ञानिक तथा क्रमबद्ध नहीं थे। इसके पश्चात् **'प्रकृतिवादी'** का नाम आता है। इनके विचारों में क्रम तथा वैज्ञानिकता है और बहुत सीमा तक इनको पूर्ण भी कहा जा सकता है। वास्तव में, आर्थिक विचारों के इतिहास में इसी सम्प्रदाय को ही प्रथम सम्प्रदाय माना जाना चाहिए।

संक्षेप में, एडम स्मिथ को अर्थशास्त्र का संस्थापक कहे जाने के सम्बन्ध में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं—

(i) एडम स्मिथ वे प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने आर्थिक विचारों को क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया।

TOUCH 'n' PASS

(ii) यद्यपि एडम स्मिथ की प्रसिद्ध पुस्तक 'वेल्थ ऑफ नेशन्स' में लगभग सभी पूर्ववर्ती विचारकों के विचारों का समावेश है तथापि स्मिथ की आधारभूत विशेषता यह है कि उन समस्त बिखरे हुए विचारों को इस रूप में प्रस्तुत किया है कि वे सब उनके ही मौलिक विचार प्रतीत होने लगे हैं। स्मिथ की भाषा अपनी है जो बहुत ही रोचक है एवं विचारों को प्रतिपादित करने का ढंग भी अनूठा है जिसमें आर्थिक दृष्टिकोण के साथ-ही-साथ जीवन के तत्त्व ज्ञान की भी चर्चा की गयी है।

(iii) एडम स्मिथ की **'वेल्थ ऑफ नेशन्स'** पुस्तक प्रकाशित हो जाने के पश्चात् ही अर्थशास्त्र का अध्ययन एक पृथक् विज्ञान के रूप में किया जाने लगा।

(iv) स्मिथ ने अनेक ऐसे नवीन विचारों का प्रतिपादन किया जिनके आधार पर भावी अर्थशास्त्रियों ने नवीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। आर्थिक विचारों के सभी सम्प्रदायों को उनसे प्रेरणा मिली है। समाजवादी, इतिहासवादी, नवप्रतिष्ठित तथा अन्य सभी सम्प्रदाय किसी-न-किसी रूप में उनके ऋणी हैं। उदाहरणार्थ, एडम स्मिथ के जनसंख्या सिद्धान्त के आधार पर माल्थस ने अपना जनसंख्या का सिद्धान्त प्रतिपादित किया।

जीवन परिचय (Life Sketch)

प्रो० एडम स्मिथ अपने युग के महानतम दार्शनिकों में से थे। इंग्लैण्ड के राजनीतिक अर्थविज्ञान के इतिहास में प्रथम महान नाम स्मिथ का ही है।

एडम स्मिथ के जीवन परिचय को संक्षेप में निम्नलिखित रूप में **क्रमबद्ध** किया जा सकता है—

1. एडम स्मिथ का जन्म 5 जून, 1723 को किरकेल्डी (Kirkacldy pronounced as Kirkawady) स्कॉटलैण्ड में हुआ था। इनके पिता एक सरकारी अधिकारी थे किन्तु स्मिथ के जन्म के पूर्व ही उनकी मृत्यु हो गयी तथा उनकी माताजी ने ही उनका पालन-पोषण किया।
2. प्रारम्भिक शिक्षा के बाद वे ग्लासगो विद्यालय में पढ़ने गये और 1737 से 1740 तक वहाँ रहे। यहीं पर उनका परिचय प्रो० फ्रांसिस हचेसन से हुआ जो नीतिशास्त्र के आचार्य थे। इनका प्रभाव स्मिथ पर जीवनपर्यन्त रहा।
3. 1740 से 1746 तक स्मिथ ने ऑक्सफोर्ड में शिक्षा पायी। इनके प्रधान विषय दर्शन, नीतिशास्त्र तथा न्यायशास्त्र (Logic) थे।
4. 1751 से 1764 तक वे ग्लासगो विश्वविद्यालय में नीतिशास्त्र के आचार्य नियुक्त हुए।
5. 1759 में उनकी प्रथम पुस्तक *'The Theory of Moral Sentiments'* प्रकाशित हुई जिससे उन्हें उस समय के उच्च कोटि के अंग्रेजी दार्शनिकों की श्रेणी में स्थान मिल गया और उन्हें काफी ख्याति भी मिली। इससे प्रभावित होकर तत्कालीन प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ Charles Townshend ने स्मिथ को सन् 1763 में बकल्यूश के ड्यूक (Duke of Buccleusch) का शिक्षक नियुक्त कर दिया जिसके साथ स्मिथ ने सन् 1764 में फ्रांस की तीन साल की यात्रा की। इसी यात्रा के दौरान स्मिथ ने अपनी महान पुस्तक **'वेल्थ ऑफ नेशन्स'** (Wealth of Nations) का लेखन आरम्भ किया। इस पुस्तक के लेखन में कुल 12 वर्ष लगे एवं वह सन् 1776 में प्रकाशित हुई।
6. सन् 1766 में अपनी यूरोप की यात्रा समाप्त कर स्मिथ लन्दन होते हुए किरकेल्डी चले गये जहाँ वे अपनी महान पुस्तक की रचना में लगे रहे। जनवरी सन् 1778 में स्मिथ को एडिनबरा में सीमा शुल्क-पदाधिकारी बना दिया गया जिस पद पर वे अपनी मृत्यु के समय अर्थात् सन् 1790 तक रहे।

प्र.2. स्मिथ के विचारों को प्रभावित करने वाले कारकों का उल्लेख कीजिए।
Mention the factors influencing the thinkings of Smith.

उत्तर

स्मिथ के विचारों को प्रभावित करने वाले कारक
(Factors Influencing the Thinking of Smith)

स्मिथ पर पड़ने वाले प्रभाव का वर्णन करते हुए **प्रो० हेने** कहते हैं कि "एडम स्मिथ वाणिज्यवादियों के लेखन, सत्रहवीं एवं अठारहवीं सदी के दार्शनिक प्रकृतिवादियों से परिचित थे और उनकी नींव पर ही स्मिथ ने अपना भवन निर्मित किया है।"

स्मिथ पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है—

1. **पूर्ववर्ती विचारकों का प्रभाव** (Impact of Former Thinkers)—स्मिथ के विचार अपने पूर्ववर्ती विचारकों एवं लेखकों से प्रभावित है और स्मिथ ने कहीं-कहीं इनका उल्लेख भी किया है लेकिन इनके प्रति कृतज्ञता कहीं भी प्रकट नहीं की है परन्तु यह स्वीकार करना होगा कि इन्हीं विचारकों के स्फुट विचार ही 'वेल्थ ऑफ नेशन्स' का आधार है। इन

TOUCH 'n PASS

विद्वानों में निम्नलिखित नाम उल्लेखनीय हैं—फ्रांसिस हचेसन (Francis Hutchison), डेविड ह्यूम (David Hume), बर्नार्ड डि मेन्डेविले (Bernard Mendeville)।

2. **वाणिज्यवादियों का प्रभाव** (Impact of Mercantilists)—वाणिज्यवाद के अन्तिम चरण के लेखकों द्वारा स्मिथ विशेष रूप से प्रभावित हुए। **डडले नार्थ** द्वारा संरक्षण के विरोध में दी गयी दलीलों को स्मिथ ने अपना स्वतन्त्र व्यापार का आधार बनाया। मौद्रिक सिद्धान्त की व्याख्या में स्मिथ ने वाणिज्यवादी लेखक **ह्यूम, लॉक** और **स्टुअर्ट** से विचार ग्रहण किये हैं। राजस्व के सिद्धान्तों के लिए **स्मिथ विलियम पेटी** एवं **स्टुअर्ट** के प्रति ऋणी हैं क्योंकि वे इनसे बहुत प्रभावित हुए। अपने मूल्य सिद्धान्त के विश्लेषण में भी स्मिथ उपर्युक्त दो लेखकों के अतिरिक्त केंटलिन से भी प्रभावित हुए।
3. **प्रकृतिवादियों का प्रभाव** (Effects of Physiocrats)—प्रकृतिवादियों ने स्मिथ को बहुत अधिक प्रभावित किया। यह स्पष्ट किया जा चुका है कि अपनी यूरोप की यात्रा के समय स्मिथ, प्रकृतिवाद के प्रमुख लेखक **कैने** एवं **तरगो** से मिल चुके थे तथा उनके विचारों को जानकर उनसे प्रभावित हो चुके थे। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि स्मिथ को स्वहित (Self-interest) की प्रेरणा प्रकृतिवादी लेखक **मेन्डेविले** से प्राप्त हुई। स्मिथ ने अपनी पुस्तक *'Wealth of Nations'* में **कैने** एवं **मर्सियर डिला रिवेयर** का उल्लेख किया है। स्मिथ के बहुत-से विचार प्रकृतिवादियों से मिलते-जुलते हैं। स्मिथ का प्रकृतिवाद (Naturalism) एवं आधिक्य का विचार—दोनों प्रकृतिवादियों के अनुरूप ही है।
4. **क्लब** (Clubs)—क्लबों एवं गोष्ठियों में होने वाली विवेचना ने भी स्मिथ की विचारधारा को प्रभावित किया। ग्लासगो एवं एडिनबर्ग में स्मिथ ने कुछ क्लबों में भाग लिया जहाँ वे कई लेखकों एवं विद्वानों के सम्पर्क में आये एवं उनके विचारों से परिचित हुए। ग्लासगो में स्मिथ का सम्बन्ध 'राजनीतिक एवं आर्थिक क्लब' से था। वे पोकर क्लब (Poker Club) के सदस्य थे। इन क्लबों में व्यापार एवं तत्कालीन आर्थिक विषयों पर विचार-विमर्श करते थे जिनसे स्मिथ लाभान्वित एवं प्रभावित हुए।
5. **आर्थिक पर्यावरण** (Economic Environment)—जिस युग में स्मिथ ने जन्म लिया, ब्रिटेन की उस युग की स्थिति एवं आर्थिक वातावरण का चित्रण पहले किया जा चुका है। उससे यह समझने में पर्याप्त सहायता मिलती है कि तत्कालीन वातावरण ने स्मिथ को लिखने के लिए पर्याप्त प्रेरणा दी। उन दिनों इंग्लैण्ड में जो औद्योगिक क्रान्ति हो रही थी, उसने ही स्मिथ को प्रकृतिवादियों द्वारा पूर्व में कृषि को महत्त्व दिये जाने के विरोध में उद्योगों एवं उससे सम्बन्धित विषयों पर लिखने के लिए बाध्य किया। व्यापार के प्रतिबन्धों को हटाने के उद्देश्य से स्मिथ ने स्वतन्त्र व्यापार का समर्थन किया। इसी प्रकार स्मिथ ने तत्कालीन वातावरण को ध्यान में रखते हुए आर्थिक स्वतन्त्रता पर बहुत बल दिया।

वेल्थ ऑफ नेशन्स (Wealth of Nations)

एडम स्मिथ की यह महान् पुस्तक जिसका पूरा नाम *'An Enquiry into the Nature and Causes of the Wealth of Nations'* है, एक विश्लेषणात्मक कृति के रूप में असम्बद्ध एवं विषयान्तर होने के बावजूद भी यह पुस्तक अपने नाम के अनुरूप ही है। वास्तव में, यह पुस्तक राष्ट्रों की सम्पत्ति के कारणों और उनकी प्रकृति का अनुसन्धान है। यद्यपि स्मिथ को अपनी पहली ही पुस्तक *'Theory of Moral Sentiments'* के कारण काफी प्रसिद्धि मिल चुकी थी किन्तु **'वेल्थ ऑफ नेशन्स'** ने उन्हें ख्याति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा दिया।

प्र.3. एडम स्मिथ एवं वाणिज्यवादियों के विचारों में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
Explain the difference between the views of Adam Smith and Mercantilists.

उत्तर

एडम स्मिथ एवं वाणिज्यवादी
(Adam Smith and Mercantilists)

पिछले पृष्ठों में स्वतन्त्र व्यापार पर स्मिथ के विचारों को व्यक्त करते समय स्मिथ एवं वाणिज्यवादी विचारकों का सम्बन्ध स्पष्ट किया जा चुका है फिर भी हम यहाँ कुछ विस्तार में इसका वर्णन करेंगे।

स्मिथ ने अपनी चौथी पुस्तक **'राजनीतिक अर्थ विज्ञान की प्रणालियों'** में वाणिज्यवादी नीतियों की कटु आलोचना की है। आलोचना के प्रमुख दो आधार हैं—**मुद्रा के कार्य** तथा **व्यापारिक नीति**। वाणिज्यवादी मानते थे कि मुद्रा ही धन का प्रमुख रूप है तथा स्वर्ण-चाँदी से ही देश की सम्पन्नता में वृद्धि होती है परन्तु स्मिथ ने बताया कि स्वर्ण और चाँदी वैसी ही वस्तुएँ हैं जैसे कि

अन्य। उन्होंने तो यहाँ तक कहा कि ये धातुएँ, अन्य वस्तुओं से कम अवश्य हैं—यदि उपभोग की वस्तुओं की कमी है तो लोग भूखें मरेंगे—सोने-चाँदी का उपभोग नहीं कर सकते। मुद्रा तो देश के उत्पादन का वह छोटा भाग है जिसका उपयोग विदेशों से वस्तुएँ प्राप्त करने के लिए किया जाता है। स्मिथ ने मुद्रा के सही कार्यों की व्याख्या की तथा विनिमय की प्रकृति का सही विश्लेषण किया। स्मिथ ने मुद्रा के आयात-निर्यात पर लगे नियन्त्रणों को बेकार बताया क्योंकि अन्य वस्तुओं के समान मुद्रा भी उसी ओर प्रवाहित होगी जहाँ उसकी माँग होगी। **प्रो० ग्रे** के अनुसार, "इस प्रकार स्मिथ ने अपनी विवेचना से यह स्पष्ट कर दिया है कि यह वाणिज्यवादियों का भ्रम था कि मुद्रा में कुछ जादुई गुण हैं—वह तो एक ऐसी वस्तु के समान है जो गौण महत्त्व की है।"

इसी प्रकार स्मिथ ने वाणिज्यवादी **अनुकूल व्यापार सन्तुलन के सिद्धान्त** की आलोचना की। स्मिथ ने स्वतन्त्र व्यापार के पक्ष में तथा संरक्षण के विरोध में अपने तर्क प्रस्तुत किये हैं। स्मिथ का स्वतन्त्र व्यापार का समर्थन मुख्य रूप से दो बातों पर आधारित है—**मुद्रा का कार्य** एवं **श्रम-विभाजन**। वाणिज्यवादी यह मानते थे कि बिना आयात किये हुए लगातार निर्यात कर व्यापार सन्तुलन की अनुकूल स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है परन्तु स्मिथ ने इसकी आलोचना की और बताया कि कोई भी देश बिना आयात किये हुए दीर्घकाल तक निर्यात नहीं कर सकता। वास्तव में, वाणिज्यवादी प्रणाली ने अपने उद्देश्य को स्वयं विफल कर दिया। यदि एक निश्चित समय तक अनुकूल व्यापार सन्तुलन प्राप्त किया जा सकता है और आयात की तुलना में अधिक निर्यात किया जाता है तो धन (Bullion) की प्रचुरता से मुद्रा की कीमत घट जाएगी और वस्तुओं की कीमतें बढ़ जायेंगी जिसका परिणाम यह होगा कि विदेशों से मुद्रा मँगाने की अपेक्षा वस्तुओं का आयात किया जायेगा और देश की मुद्रा बाहर चली जाएगी। स्मिथ का कथन है कि व्यापार सन्तुलन की अपेक्षा वार्षिक उत्पादन एवं उपभोग ज्यादा महत्त्वपूर्ण है और यह समृद्धि की वास्तविक जाँच है। बिना विदेशी व्यापार के भी देश में ऐसी समृद्धि मौजूद रह सकती है। आगे स्मिथ कहते हैं कि एक देश उपभोग की तुलना में उत्पादन का सन्तुलन प्राप्त कर सकता है यद्यपि वाणिज्यवादी गणना के आधार पर उसका व्यापार सन्तुलन प्रतिकूल रह सकता है। इस प्रकार स्मिथ ने वाणिज्यवादी मौद्रिक एवं विदेशी व्यापार की नीतियों को गलत विचारों का प्रतिनिधित्व करने वाला बताया परन्तु इस प्रकार वाणिज्यवादी नीतियों को आलोचना का शिकार बनाने में उसके लेखकों का इतना दोष नहीं है जितना कि उसके गैर-जिम्मेदार समर्थकों का।

प्र.4. प्रकृतिवादियों के शुद्ध उत्पादन तथा रिकार्डो के लगान में अन्तर बताइए।
State the difference between pure production of physiocrats and rent of Ricardo.

उत्तर प्रकृतिवादियों के शुद्ध उत्पादन तथा रिकार्डो के लगान में अन्तर
(Difference between Pure Production of Physiocrats and Rent of Ricardo)

रिकार्डो के लगान सिद्धान्त और प्रकृतिवादियों द्वारा प्रस्तुत शुद्ध उत्पादन सम्बन्धी धारणा में मुख्यत: निम्न अन्तर हैं—

क्र०सं०	प्रकृतिवादी	रिकार्डो
1.	**परिभाषा**—शुद्ध उत्पादन एक अतिरेक है जो नवीन धन में से उसको उत्पादित करने में व्यय किये धन को घटाने से कृषि व्यवसाय में प्राप्त होती है।	**परिभाषा**—लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो भूमिपति को भूमि की मौलिक एवं अविनाशी शक्तियों के प्रयोग के लिए दिया जाता है।
2.	**सामाजिक कल्याण**—प्रकृतिवादियों के मतानुसार समाज का कल्याण अधिकतम शुद्ध उत्पादन करता है।	**परस्पर विरोधी हित**—रिकार्डो के कथनानुसार लगान की वृद्धि समाज-कल्याण में वृद्धि नहीं करती क्योंकि इससे केवल भूमिपति को लाभ होता है। "भूमिपति का हित सदैव उपभोक्ता तथा विनिर्माता के विरुद्ध होता है।"
3.	**प्रकृति की उदारता**—प्रकृतिवादियों के अनुसार प्रकृति दयालु है और उसकी दया के कारण ही शुद्ध उत्पादन की प्राप्ति होती है।	**प्रकृति की कृपणता**—लगान प्रकृति की कृपा अथवा उदारता का परिणाम न होकर उसकी कृपणता का फल है अर्थात् लगान भूमि की अधिकता के कारण नहीं वरन् दुर्लभता के कारण उदय होता है।
4.	**शुद्ध उत्पादन की प्राप्ति**—यह सभी कृषकों को प्राप्त होता है।	**लगान की प्राप्ति**—यह केवल उन भूमिपतियों को प्राप्त होता है जिनकी भूमि सीमान्त भूमि से अधिक उपजाऊ होती है।

TOUCH 'n' PASS

5.	**पारस्परिक संघर्ष का अभाव**—शुद्ध उत्पादन को लेकर समाज के विभिन्न वर्गों में किसी प्रकार का कोई संघर्ष नहीं होता।	**पारस्परिक संघर्षों की विद्यमानता**—लगान में वृद्धि के कारण भूमि स्वामी उपभोक्ता एवं पूँजीपति में पारस्परिक संघर्ष उत्पन्न हो जाता है।
6.	**श्रम का वर्गीकरण**—प्रकृतिवादियों ने शुद्ध उत्पादन की धारणा पर श्रमिकों को उत्पादक और अनुत्पादक वर्गों में विभाजित किया है।	**ऐसे वर्गीकरण का अभाव**—रिकार्डो इस प्रकार का कोई वर्गीकरण नहीं करते हैं।
7.	**अर्जित आय**—शुद्ध उत्पादन को प्रकृतिवादियों ने अर्जित आय माना है।	**अनार्जित आय**—रिकार्डो के अनुसार लगान एक अनार्जित आय है क्योंकि इसकी प्राप्ति के लिए भूमिपति को कोई परिश्रम नहीं करना पड़ता है।
8.	**कृषि रीतियों में सुधार**—प्रकृतिवादियों का विचार है कि कृषि रीतियों में सुधार करने से शुद्ध उत्पादन बढ़ जाएगा।	**कृषि रीतियों में सुधार**—रिकार्डो का विचार है कि कृषि सम्बन्धी रीतियों में सुधार करने से लगान कम हो जाएगा।
9.	**शुद्ध उत्पादन तथा मूल्य**—प्रकृतिवादियों ने शुद्ध उत्पादन और मूल्य में कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं किया है।	**लगान तथा मूल्य**—रिकार्डो ने दोनों के मध्य सम्बन्ध स्थापित करते हुए बताया कि लगान का प्रभाव कीमतों पर नहीं पड़ता बल्कि कीमतों का प्रभाव लगान पर पड़ता है।
10.	**जनसंख्या तथा शुद्ध उत्पादन**—प्रकृतिवादियों ने जनसंख्या की वृद्धि का शुद्ध उत्पादन से कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं किया है।	**जनसंख्या एवं लगान**—रिकार्डो ने दोनों के मध्य सम्बन्ध स्थापित किया है और बताया कि जैसे-जैसे जनसंख्या में वृद्धि होती है, घटिया किस्म की भूमियों पर खेती आरम्भ कर दी जाती है जिसके कारण अच्छी किस्म की भूमियों पर लगान बढ़ जाता है।
11.	**उत्पादन की समस्याओं का अध्ययन**—प्रकृतिवादियों ने शुद्ध उत्पादन की समस्याओं का अध्ययन करते हुए दिया है।	**वितरण की समस्याओं का अध्ययन**—रिकार्डो ने लगान सिद्धान्त की स्थापना वितरण सम्बन्धी समस्याओं के अध्ययन के पश्चात् की है।

प्र.5. रिकार्डो के विचारों को प्रभावित करने वाले कारकों को लिखिए।
Mention the factors influencing the thinkings of Ricardo.

उत्तर

रिकार्डो के विचारों को प्रभावित करने वाले कारक
(Factors Influencing the Thinkings of Ricardo)

रिकार्डो पर समय तथा तत्कालीन विचारों का काफी प्रभाव पड़ा है। एडम स्मिथ ने युग से रिकार्डो के युग तक आते-आते ही आर्थिक परिस्थितियों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आ चुके थे। सामान्यत: उनके विचारों को निर्मित तथा परिवर्तित करने में निम्न तथ्यों ने अपना योग प्रदान किया—

1. **औद्योगिक क्रान्ति** (Industrial Revolution)—वह पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था जिसका एडम स्मिथ के साथ सूत्रपात हुआ था, रिकार्डो के समय तक पूर्ण रूप से विकसित हो चुकी थी। फलत: आर्थिक क्षेत्र में नये-नये परितर्वन दृष्टिगोचर हो रहे थे, जैसे—(i) नये-नये कारखाने स्थापित किये जा रहे थे जिस कारण कारखाना पद्धति का विकास हो रहा था। (ii) मील के मालिकों तथा मजदूरों के पारस्परिक झगड़े शुरू हो गये थे जिससे लोग यह सोचने को बाध्य हो गये थे कि सब वर्गों के हित एक दूसरे से पूरक नहीं है। (iii) समाज में धीरे-धीरे गरीबी और बेरोजगारी की समस्या पर जोर पकड़ती जा रही थी। यह एक नया रूप था जिसे समझना आवश्यक था। (iv) उद्योगपतियों में पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा काफी बढ़ चुकी थी। (v) कारखानों के शहरों में होने के कारण ग्रामीण जनता शहरों की ओर बढ़ रही थी। रिकार्डो औद्योगिक प्रगति के इन प्रभावों को समझने व इन नव-विकास से उत्पन्न समस्याओं का समाधान ढूँढ़ निकालने के लिए आगे बढ़े।
2. **कीमतों में वृद्धि** (Increase in Prices)—नेपोलियन युद्ध व अन्य कारणों से सरकार ने मुद्रा की मात्रा में काफी वृद्धि कर दी थी। परिणामत: वस्तुओं की कीमतें काफी ऊँची हो गयी थीं। इस महँगाई ने पूर्ण समाज को विचलित कर दिया था।
3. **जनसंख्या में वृद्धि** (Increase in Population)—जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि के कारण अनाज महँगा हो रहा था। खाद्यान्न की पूर्ति करने के लिए घटिया भूमियों पर भी खेती की जाने लगी थी जिससे अच्छी भूमियों के स्वामियों को ऊँचा लगान मिलने लगा था।

TOUCH 'n PASS

4. **वितरण की समस्या** (Problem of Distribution)—लगान में वृद्धि, अधिक मजदूरी की माँग तथा अधिकतम लाभार्जन के उद्देश्य से उद्योगपतियों द्वारा श्रमिकों का शोषण आदि आर्थिक घटनाएँ वितरण की समस्या को अत्यधिक प्रभाव में लायीं।
5. **विरोधी हित व मूल्य निर्धारण की समस्या** (Conflicting Interest and Problem of Price Determination)—एक ओर तो मिल मालिक अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए यह चाहते थे कि कच्चे माल की कीमतें नीची रहें, दूसरी ओर भूमि-स्वामी यह चाहते थे कि खाद्यान्न तथा कच्चे माल की कीमतें ऊँची रहे। इन विरोधी हितों ने मूल्य निर्धारण की समस्या को बल प्रदान किया।
6. **रिकार्डो से पूर्ववर्ती** (Predecessors of Ricardo)—अर्थशास्त्रियों, प्रकृतिवादियों, एडम स्मिथ तथा माल्थस के विचार काफी प्रचलित थे। पर इन अर्थशास्त्रियों के विचित्र विचार विद्वत् वर्ग में विशेष रूप से आलोचना का विषय बने हुए थे क्योंकि नव विकास से उत्पन्न अधिकतम समस्याओं का समाधान उन विचारों से नहीं हो सका था। रिकार्डो इस स्थिति से भी प्रभावित हुआ और अपने नवीन विचार प्रस्तुत किये।

उक्त विभिन्न कारणों से अपना पृथक्-पृथक् प्रभाव तथा सामूहिक प्रभाव डालकर रिकार्डो को प्रभावित किया और उसे समस्याओं को सुलझाने के लिए आर्थिक विचार प्रस्तुत करने को बाध्य किया।

प्र.6. माल्थस पर पर्यावरण के प्रभाव का उल्लेख कीजिए।
Mention the impact of environment on Malthus.

उत्तर

माल्थस पर पर्यावरण का प्रभाव
(Impact of Environment on Malthus)

माल्थस के जितने भी आर्थिक विचार मिलते हैं, वे सब समय की देन कहे जा सकते हैं। उस समय इंग्लैण्ड की जो दशा थी, उस दशा ने माल्थस के विचारों को बहुत प्रभावित किया था। संक्षेप में, उनके विचारों पर प्रभाव डालने वाली बातें निम्नलिखित थीं—

1. **जनसंख्या में वृद्धि** (Increase in Population)—अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इंग्लैण्ड की कृषि उन्नत अवस्था में थी परन्तु इसी शताब्दी के अन्त में इतना अधिक आर्थिक संकट विद्यमान हो गया था कि देश की जनसंख्या इतनी अधिक प्रतीत होने लगी कि जिसका भरण-पोषण इंग्लैण्ड की भूमि नहीं कर सकती थी। गेहूँ का मूल्य प्रतिवर्ष बढ़ता जा रहा था। लोग बेकार, भूखे और नंगे दिखाई पड़ रहे थे। बीमारी, महामारी और निर्धनता का साम्राज्य चारों ओर था। स्थिति सुधार करने के लिए '**अनाज नियम लागू**' किये जा रहे थे परन्तु स्थिति बिगड़ती ही जा रही थी।
2. **औद्योगिक क्रान्ति** (Industrial Revolution)—माल्थस का काल औद्योगिक क्रान्ति के तुरन्त बाद का काल था जिसमें एक ओर तो पूँजीपति वर्ग था और दूसरी ओर श्रमिक वर्ग। माल्थस ने देखा कि ज्यों-ज्यों औद्योगिक विकास होता जा रहा है, त्यों-त्यों एक ओर पूँजीपतियों और प्रतिभाशाली व्यक्तियों का प्रभुत्व बढ़ता जा रहा था परन्तु दूसरी ओर श्रमिक और निर्धन वर्गों में बेरोजगारी, बीमारी और निर्धनता बढ़ती जा रही थी।
3. **वणिकवादियों व निर्बाधावादियों के विचारों की प्रतिक्रिया** (Reactions of Thoughts of Mercantilists)—वणिकवादियों द्वारा देश की सम्पदा व शक्ति को बढ़ाने के लिए जनसंख्या की वृद्धि पर जोर दिया गया। एडम स्मिथ के समय में औद्योगिक क्रान्ति के दुष्परिणाम सम्मुख न आने के कारण उनका ध्यान भी इस ओर न जा सका था। देश की समृद्धि के लिए जनसंख्या की वृद्धि समय फेर के कारण अनुपयुक्त दिखाई पड़ रही थी।
4. **माल्थस के समकालीन विचारों का प्रभाव** (Impact of Contemporary Thinks on Malthus)—उपरोक्त बातों के अतिरिक्त माल्थस पर उस समय के विचारकों का भी प्रभाव पड़ा है। माल्थस के समकालीन विचारक नये-नये विचार दे रहे थे। उदाहरण के लिए, **डेविड ह्यूम** ने अपनी पुस्तक *'Essay on the Population at Ancient Nation'* में कुछ प्राचीन देशों की जनसंख्या का अनुमान लगाया था। **टाउनसैण्ड** (Townsend) ने *'Dissertation on the Poor Law'* (1786) नामक पुस्तक में लिखा था, "जब तक मानवीय विवेक क्रियाशील नहीं होने पाता है, समृद्धि के पश्चात् अत्यधिक जनसंख्या, प्रभाव तथा ऊँची मृत्यु दर का आगमन होता है।" **सर वाल्टर रेले** (Sir Walter Releigh) ने अपनी पुस्तक *'History of the World'* (1952) में यह तर्क दिया, "यदि युद्ध व बीमारियाँ नियन्त्रण न लगातीं तो जनसंख्या इतनी बढ़ जाती कि उसका भरण-पोषण कठिन हो जाता।"

TOUCH 'n' PASS

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि माल्थस के विचारों पर तात्कालिक आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों का समकालीन विद्वानों के विचारों का प्रभाव पड़ा है। उनके जनसंख्या के सिद्धान्त में इसका काफी सबूत मिलता है।

प्र.7. थॉमस रॉबर्ट माल्थस का जीवन परिचय दीजिए।
Give a life sketch of Thomas Robert Malthus.

उत्तर

माल्थस का जीवन परिचय
(Life Sketch of Malthus)

थॉमस रॉबर्ट माल्थस का जन्म इंग्लैण्ड (England) के **दी सकेरी काउण्टी सरे** में सन् 1776 में हुआ था। इनके पिता **थॉमस डेनिअल माल्थस** स्वयं एक वकील थे और डेविड ह्यूम और प्रसिद्ध दार्शनिक रूसो के मित्र थे। माल्थस ने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा प्राप्त की जहाँ उन्होंने ग्रीक तथा लैटिन भाषाओं व गणितशास्त्र में पुरस्कार प्राप्त किये। 1791 ई० में इन्होंने एम० ए० की उपाधि प्राप्त की। तत्पश्चात् उन्होंने अपने जन्म-स्थान सकेरी के गिरजाघर में कार्य करना आरम्भ कर दिया तथा 31 वर्ष की आयु में पादरी बने। माल्थस ने 21 वर्ष की आयु (1797) में अपना प्रथम निबन्ध *'The Crisis, a View of the Recent Interesting State of the Great Britain'* नामक शीर्षक लिखा जिसमें पिट की शासन की आलोचना की गयी थी किन्तु यह निबन्ध अप्रकाशित ही रहा। 1798 ई० में उनका जनसंख्या पर एक गुमनाम निबन्ध प्रकाशित हुआ जिसका शीर्षक था **'जनसंख्या के सिद्धान्त पर निबन्ध जैसे कि यह समाज के भावी विकास को प्रभावित करती है'** (An essay on the Principle of Population as it affects the Future Improvement of Society)। इस निबन्ध ने सारे संसार में सनसनी मचा दी और तब से जनसंख्या की समस्या ने विश्वव्यापी ध्यान आकर्षित किया और एक निश्चित सिद्धान्त का रूप धारण किया। चूँकि यह निबन्ध गुमनाम था, इसलिए निबन्ध के पाठक अनूठी जिज्ञासा और उत्सुकता के साथ निबन्ध के लेखक की खोज करने लगे। 1803 में इस निबन्ध का द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ जिसमें लेखक का नाम **थॉमस राबर्ट माल्थस** दिया हुआ था। इस निबन्ध का शीर्षक था—"जनसंख्या के सिद्धान्त पर एक निबन्ध अथवा मानवीय खुशी पर इसके भूतकाल एवं वर्तमान प्रभावों का विचार (Essay on the Principle of Population or View of its Past and Present Effects on Human Happiness.)

1799 में माल्थस यूरोप का भ्रमण करने के लिए गये किन्तु यूरोप में अशान्ति होने के कारण केवल फ्रांस, रूस, नार्वे, स्वीडन तथा स्विट्जरलैण्ड की यात्रा करके स्वदेश लौट आये। 1804 में उन्होंने विवाह किया। 1805 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी (East India Company) के एक कॉलेज में इतिहास और राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्राध्यापक नियुक्त किये गये। इस पद पर उन्होंने मृत्युपर्यन्त कार्य किया। सन् 1834 में माल्थस का स्वर्गवास हो गया।

जनसंख्या के सिद्धान्त के निबन्ध के अतिरिक्त माल्थस की अन्य रचनाएँ इस प्रकार हैं—

(i) राजनीतिक अर्थव्यवस्था के सिद्धान्त (Principles of Political Economy),
(ii) अनाज नियमों के सन्दर्भ में अल्प अध्ययनों की एक श्रेणी (A Series of Short Studies Dealing withCorn Laws),
(iii) लगान पर (On Rent),
(iv) दरिद्र अधिनियम (The Poor Laws) एवं
(v) राजनीतिक अर्थव्यवस्था में परिभाषाएँ (Definitions in Political Economy)।

माल्थस एडम स्मिथ के अनुयायी होने के कारण प्रतिष्ठित शाखा के महत्त्वपूर्ण सदस्य माने जाते हैं।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. एडम स्मिथ के 'आर्थिक विकास' के सम्बन्ध में विचारों को समझाइए।
Explain the thoughts of Adam Smith regarding 'Economic Growth'.

उत्तर

एडम स्मिथ के आर्थिक विकास के सम्बन्ध में विचार
(Thoughts of Adam Smith Regarding Economic Growth)

स्मिथ ने 'वेल्थ ऑफ नेशन्स' में जिन आर्थिक विचारों को व्यक्त किया है, उनमें से कुछ का अध्ययन यहाँ पर किया जा रहा है—

1. श्रम का महत्त्व एवं श्रम-विभाजन (Importance of Labour and Division of Labour),

2. मूल्य का सिद्धान्त (Theory of Value),
3. स्वतन्त्र व्यापार नीति (Free Trade Policy),
4. पूँजी एवं विनियोग सिद्धान्त (Capital and Investment Theory),
5. वितरण का सिद्धान्त (Theory of Distribution)

1. श्रम का महत्त्व एवं श्रम विभाजन
(Importance of Labour and Division of Labour)

हमने देखा है कि प्रकृतिवादियों ने कृषि को ही उत्पादक एवं धन का स्रोत माना था परन्तु स्मिथ ने सम्पत्ति के वास्तविक स्रोत के रूप में **श्रम को ही अधिक महत्त्व** दिया और इसे उन्होंने अपनी पुस्तक के प्रथम वाक्य में ही स्पष्ट किया है। उन्हीं के शब्दों में, "प्रत्येक राष्ट्र का वार्षिक श्रम ही वह कोष है जो मूल रूप में उसकी सम्पूर्ण आवश्यक एवं सुविधाजनक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है और जिसका उपभोग प्रतिवर्ष राष्ट्र द्वारा किया जाता है और जिसका निर्माण उस श्रम द्वारा उत्पन्न की गयी तात्कालिक वस्तुओं द्वारा या उस उत्पादन सामग्री द्वारा विदेशों से क्रय की जाने वाली वस्तुओं द्वारा होता है।" इस प्रकार प्रारम्भ में ही स्मिथ ने धन के स्रोत पर प्रकृतिवादी विचारधारा से स्पष्ट भेद किया है। उसका मत है कि प्रतिवर्ष उपभोग की जाने वाली वस्तुओं का उत्पादन मानवीय क्रिया द्वारा किया जाता है, न कि प्राकृतिक शक्तियों द्वारा। इसी आधार पर स्मिथ ने कृषि वर्ग सहित अन्य सब उत्पादन करने वाले वर्गों को उत्पादक माना है क्योंकि उनके सहयोग से ही धन का उत्पादन होता है। स्मिथ के अनुसार श्रमिक का उत्पादन मुख्य रूप से उसकी कुशलता, दक्षता और उस निर्णय पर निर्भर रहता है जिसके अनुसार उसका प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार सबके सहयोग से श्रम-विभाजन का सूत्रपात होता है।

श्रम-विभाजन स्पष्ट करते हुए स्मिथ कहते हैं कि यह एक विशेष प्रकार के सामाजिक सहयोग का स्वयं आभास हो जाने के कारण उत्पन्न हुआ है। स्वभाव से ही मनुष्य उस कार्य को करना पसन्द करता है जिसके लिए वह सबसे अधिक उपयुक्त है। **श्रम-विभाजन एक प्रकार की सामाजिक सहकारिता है जिसके अन्तर्गत राष्ट्रीय आय को उत्पन्न करने के लिए विभिन्न आर्थिक क्रियाओं में समन्वय स्थापित किया जाता है।**

2. मूल्य का सिद्धान्त (Theory of Value)

एडम स्मिथ ने **मूल्य का सिद्धान्त** भी अपनी पुस्तक **'राष्ट्र का धन'** में प्रतिपादित किया है। एडम स्मिथ ने मूल्य को दो भागों में विभाजित किया है—**उपयोग मूल्य** (Value in Use) तथा **विनिमय मूल्य** (Value in Exchange)। उपयोग मूल्य का अर्थ उपयोगिता से है। जिस वस्तु में जितनी अधिक उपयोगिता होगी, उस वस्तु का उतना ही अधिक मूल्य होगा। इसके विपरीत उपयोगिता कम होने पर वस्तु का मूल्य भी कम होगा। विनिमय मूल्य से तात्पर्य किसी वस्तु की विनिमय शक्ति से है जिसके बदले वह अन्य वस्तुओं का क्रय कर सकती है। एडम स्मिथ के शब्दों में, "मूल्य शब्द दो विरोधी अर्थ रखता है, एक को प्रयोग मूल्य कह सकते हैं तथा दूसरे को विनिमय मूल्य। जिन वस्तुओं का प्रयोग मूल्य अधिक होता है, उनका विनिमय मूल्य बहुत कम अथवा लेशमात्र होता है तथा इसके विपरीत जिन वस्तुओं का विनिमय मूल्य अत्यधिक होता है, उनका प्रयोग मूल्य बहुत कम अथवा लेशमात्र होता है।" उदाहरण के लिए, जल का प्रयोग मूल्य बहुत अधिक है जबकि विनिमय मूल्य नहीं के बराबर है, हीरे का विनिमय मूल्य बहुत अधिक है जबकि उपयोगिता होने के कारण इसका प्रयोग मूल्य बहुत कम है।

एडम स्मिथ के अनुसार विनिमय मूल्य अस्थिर है क्योंकि वह माँग की पूर्ति की अस्थिरता तथा क्रेता-विक्रेताओं की सोदा करने की प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप निरन्तर बदलता रहता है। अत: परिवर्तनशील विनिमय मूल्य या बाजार मूल्य का आधार किसी वस्तु का वास्तविक या प्राकृतिक मूल्य होता है जिसके ऊपर या नीचे विनिमय मूल्य विचरित होता रहता है। प्राकृतिक मूल्य के निर्धारण की दृष्टि से एडम स्मिथ ने दो सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया है—

(i) **श्रम का मूल्य सिद्धान्त** (Labour Theory of Value)—एडम स्मिथ के मतानुसार, "किसी वस्तु का वास्तविक मूल्य उसके उत्पादन में लगे श्रम के बराबर होता है। इस प्रकार श्रम ही समस्त वस्तुओं के विनिमय मूल्य का मापक है।" यदि एक वस्तु पर दूसरी वस्तु की अपेक्षा उत्पादन में दुगुना श्रम लगता है तो प्रथम वस्तु का मूल्य भी दूसरी वस्तु के मूल्य का दुगुना होता है। स्मिथ के अनुसार, प्राकृतिक या वास्तविक मूल्य का मापक श्रम ही है। **प्रो० जीड** और **रिस्ट** के शब्दों में, "स्मिथ का प्रथम सिद्धान्त दर्शाता है कि किसी वस्तु का मूल्य श्रम की मात्रा या उस वस्तु के उत्पादन में लगे प्रयास पर निर्भर करता है।" एडम स्मिथ के इस सिद्धान्त को भविष्य में कार्ल मार्क्स ने अपनाकर समाजवादी विचारधारा का आधार बनाया।

आलोचनाएँ (Criticisms)—यह सिद्धान्त अपूर्ण तथा दोषयुक्त है। इसके द्वारा वास्तविक मूल्य का ज्ञान होना सम्भव नहीं है क्योंकि किसी वस्तु के उत्पादन में न केवल श्रम का प्रयोग होता है वरन् भूमि, पूँजी तथा प्रबन्ध की भी आवश्यकता होती है। अत: अकेले श्रम द्वारा मूल्य का निर्धारण नहीं हो सकता।

(ii) **मूल्य का उत्पत्ति लागत सिद्धान्त** (Cost of Production Theory of Value)—एडम स्मिथ ने उत्पत्ति लगान सिद्धान्त के अनुसार किसी वस्तु का वास्तविक मूल्य उसके उत्पादन में लगे समस्त साधनों (भूमि, श्रम, पूँजी, व्यवस्था एवं साहस) के पुरस्कार (मजदूरी, ब्याज, लगान, लाभ आदि) के योग के बराबर होता है।

वस्तु का वास्तविक मूल्य = उत्पादन लागत;

उत्पादन लागत = लगान + मजदूरी + ब्याज।

स्मिथ के शब्दों में, "प्रत्येक समाज में प्रत्येक वस्तु का मूल्य अन्तिम रूप से इन किसी एक या दूसरे अथवा तीनों से निश्चित होता है किन्तु प्रत्येक विकसित समाज में अधिकांश वस्तुओं के मूल्य इन तीनों से ही मिलकर बनते हैं।"

आलोचनाएँ (Criticisms)—मूल्य का उत्पादन लागत सिद्धान्त भी दोष-रहित नहीं है। आलोचकों के अनुसार स्मिथ विभिन्न साधनों के पारितोषिक को निर्धारित करने में असफल रहे हैं।

एडम स्मिथ के मूल्य सम्बन्धी दोनों सिद्धान्त यद्यपि दोषपूर्ण है परन्तु आर्थिक विचारों की दृष्टि से इनके महत्त्व को कम नहीं कर सकते क्योंकि श्रम के मूल्य सिद्धान्त ने समाजवाद के लिए आधार की नींव का कार्य किया, तत्पश्चात् अन्य अर्थशास्त्रियों ने मूल्य-निर्धारण का आधुनिक सिद्धान्त प्रतिपादित किया।

3. स्वतन्त्र व्यापार नीति (Free Trade Policy)

एडम स्मिथ ने देश की उन्नति के लिए स्वतन्त्र विदेशी व्यापार पर बहुत बल दिया है। उसके अनुसार विदेशी व्यापार प्रतिबन्धरहित होना चाहिए। वह व्यापार में प्रकृतिवादियों द्वारा अपनायी गयी संरक्षण नीति का विरोधी था। **एडम स्मिथ** के अनुसार, "किसी भी परिवार के बुद्धिमान स्वामी का यह सिद्धान्त होता है कि उस वस्तु को घर पर बनाने का प्रयत्न न किया जाये जिसके बनाने में क्रय करने की अपेक्षा अधिक व्यय करना पड़े। ..... जो बात प्रत्येक परिवार के विषय में उचित है, वह एक विशाल राज्य के सम्बन्ध में कठिनता से ही मूर्खता की बात हो सकती है।"

स्वतन्त्र व्यापार के पक्ष में तर्क (Arguments in Favour of Free Trade)—एडम स्मिथ ने स्वतन्त्र व्यापार के पक्ष में अथवा संरक्षण के विरोध में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये हैं—

(i) उपभोक्ताओं को सस्ती दर पर वे वस्तुएँ भी उपयोग करने को मिल जाती हैं जो उनके देश में उत्पन्न नहीं होतीं।
(ii) एक देश अपने अतिरिक्त माल को विदेशों में बेचकर लाभ कमा सकता है।
(iii) बड़े पैमाने पर उत्पादन होने के कारण देश में श्रम-विभाजन व विशिष्टीकरण को प्रोत्साहन मिलता है।
(iv) संरक्षण की नीति देश के सन्तुलित औद्योगिक विकास में बाधक है जिसका समाधान स्वतन्त्र व्यापार नीति अपनाने में है।
(v) स्वतन्त्र व्यापार प्रादेशिक श्रम-विभाजन के लाभ हमें उपलब्ध कराता है।

स्वतन्त्र व्यापार के अपवाद (Exceptions of Free Trade)—यद्यपि एडम स्मिथ स्वतन्त्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर लगाये जाने वाले प्रतिबन्धों का विरोधी था, फिर भी कुछ दशाओं में उसने संरक्षण नीति अपनाने का सुझाव दिया, जैसे—(i) सुरक्षा उद्योगों की दृष्टि से देश आत्म-निर्भर होना चाहिए क्योंकि **वैभव और आर्थिक समृद्धि की तुलना में देश की सुरक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है।**

(ii) आत्मनिर्भरता प्राप्त करने की दृष्टि से आयात कर लगाएँ।
(iii) जहाजरानी के विकास के लिए राष्ट्रीय जहाजों का प्रयोग किया जाए तथा विदेशी जहाजों पर प्रतिबन्ध लगाया जाए।
(iv) यदि कोई देश वस्तुओं पर आयात कर लगा रहा है तो प्रतिकारात्मक स्वरूप उस देश की वस्तुओं पर भी कर लगाए जाने चाहिए।
(v) यदि संरक्षण से देश का रोजगार स्तर ऊँचा उठ रहा है तो उद्योगों को संरक्षण देना चाहिए।
(vi) जिन वस्तुओं का उपभोग देश के लिए आवश्यक है, उन पर निर्यात कर लगाने चाहिए।

4. पूँजी एवं विनियोग का सिद्धान्त (Capital and Investment Theory)

श्रम-विभाजन और मुद्रा के महत्त्व के बाद स्मिथ ने पूँजी को सबसे अधिक महत्त्व दिया है। अपनी पुस्तक के दूसरे खण्ड में स्मिथ ने पूँजी, बचत तथा विनियोग का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। स्मिथ के अनुसार समाज की बचत को दो भागों में बाँटा जा सकता

है—एक तो वह जो उत्पादक श्रम को काम पर लगाने के लिए प्रयुक्त किया जाता है और दूसरा वह जिसका उपभोग किया जाता है—इसमें बचत का प्रथम भाग ही पूँजी कहलाता है। उनके अनुसार पूँजी का संग्रह केवल उत्पादक श्रम के माध्यम से ही हो सकता है और पूँजी संग्रह का वह अंश है जो उत्पादक श्रम को क्रियाशील बनाने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। स्मिथ ने उस संग्रह को जिससे आय में वृद्धि होती है, पूँजी माना है।

स्मिथ ने पूँजी को दो भागों में बाँटा है—(i) **अचल पूँजी,** जो कि हस्तान्तरित नहीं की जा सकती है, जैसे—भूमि व भवन। (ii) **चल पूँजी,** जो कि हस्तान्तरित की जा सकती है, जैसे—कच्चा माल, द्रव्य आदि।

पूँजी के उपयोग (Uses of Capital)—स्मिथ के अनुसार पूँजी का प्रयोग चार प्रकार से किया जा सकता है। **प्रथम,** समाज के उपयोग एवं उपभोग के लिए आवश्यक कच्चा माल तैयार करने के लिए; **द्वितीय,** उपभोग हेतु कच्चे माल को तैयार एवं निर्माण करने के लिए; **तृतीय,** कच्चे या निर्मित माल के यातायात के लिए एवं **चौथे,** उत्पादित माल की फुटकर विक्रय की व्यवस्था के लिए। पूँजी का प्रयोग इन चारों में से किसी-न-किसी प्रयोग के लिए अवश्य ही किया जाता है।

आलोचना (Criticism)—आधुनिक अर्थशास्त्रियों का विचार है कि एडम स्मिथ द्वारा प्रतिपादित पूँजी सम्बन्धी विचार अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं अवैज्ञानिक हैं क्योंकि व्यक्तियों की पूँजियों का योग राष्ट्रीय पूँजी नहीं होती। **दूसरे,** पूँजी का दो वर्गों (चल या अचल) में बाँटना भी अवैज्ञानिक है। इन दोनों के कारण ही **कैनन** कहते हैं, **"स्मिथ ने पूँजी का पूरा विषय बहुत असन्तोषजनक स्थिति में छोड़ा।"**

5. वितरण के सिद्धान्त (Theories of Distribution)

एडम स्मिथ ने उत्पादन के तीन साधन माने थे—भूमि, श्रम व पूँजी। **उत्पादन लागत** में भूमि का लगान, पूँजी का ब्याज तथा श्रम की मजदूरी सम्मिलित की गयी थी। अपने उत्पादन लागत सिद्धान्त में स्मिथ ने बताया कि किसी वस्तु का वास्तविक मूल्य उसकी उत्पादन लागत के बराबर होता है अर्थात् स्मिथ के अनुसार, **वास्तविक मूल्य** = I. लगान + II. मजदूरी + III. ब्याज

अत: मूल्य के उचित निर्धारण के लिए यह आवश्यक है कि श्रम, पूँजी तथा भूमि का पारितोषिक ठीक प्रकार निर्धारित किया जाए। यही वितरण की समस्या है।

I. लगान (Rent)

लगान के सम्बन्ध में स्मिथ के विचार परस्पर विरोधी हैं—

(i) **लगान एकाधिकारी मूल्य है—स्मिथ** के अनुसार, लगान एक प्रकार से एकाधिकार की कीमत है जो भू-स्वामी को भूमि उपयोग के बदले उपहार-स्वरूप प्रदान की जाती है और यह भूमि की उर्वरा शक्ति व स्थिति पर निर्भर करती है। उन्हीं के शब्दों में "भूमि के उपयोग के लिए लगान के रूप में जो मूल्य दिया जाता है, वह एकाधिकारी मूल्य ही है।" उन्होंने आगे बताया है—"लाभ व मजदूरी तो वस्तु की ऊँची-नीची कीमत के कारण होते हैं परन्तु लगान इसका परिणाम होता है।" इस प्रकार लगान ऊँची कीमत का ही परिणाम होता है।

(ii) **लगान प्रकृति का उपहार है—प्रो० जीड** और **रिस्ट** के अनुसार स्मिथ ने लगान को प्रकृति का उपहार माना है अर्थात् लगान भूमि को प्राकृतिक एवं अनाशवान शक्तियों के कारण प्राप्त होता है। **एडम स्मिथ** के शब्दों में, "लगान को प्रकृति की उन शक्तियों की उत्पत्ति मान सकते हैं जिनके उपयोग को भू-स्वामी कृषक को उधार देता है।"

आलोचनाएँ (Criticisms)—**लगान और कीमत** के सम्बन्ध में भी स्मिथ के निश्चित और स्पष्ट विचार नहीं हैं। अपने मूल्य सिद्धान्त में स्मिथ ने स्वीकार किया है कि लगान कीमत में शामिल होता है परन्तु अपने लगान के अध्याय में वे कहते हैं कि लगान कीमत में शामिल नहीं होता वरन् उसकी मात्रा कीमत पर निर्भर रहती है। **प्रो० जीड** एवं **रिस्ट** का कथन है कि प्रकृतिवादियों के प्रभाव में आकर स्मिथ ने लगान को भूमि की प्राकृतिक शक्तियों के कारण उसका उपहार माना है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि लगान के सम्बन्ध में स्मिथ के विचार सुस्पष्ट नहीं हैं। इस सम्बन्ध में **प्रो० टेलर** का मत है कि "स्मिथ का भूमि-लगान का सिद्धान्त इतना भ्रमपूर्ण है कि उसकी विवेचना का प्रयत्न करने में कम सार है।"

II. मजदूरी (Wages)

मजदूरी की दृष्टि से एडम स्मिथ ने जीवन-निर्वाह सिद्धान्त तथा मजदूरी कोष सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं—

(i) **जीवन-निर्वाह सिद्धान्त** (Theory of Subsistence)—इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी का निर्धारण श्रमिक और उसके परिवार के पालन-पोषण के लिए आवश्यक धनराशि के बराबर होता है। **प्रो० एरिल रोल** के अनुसार, **"वह श्रम**

TOUCH 'n' PASS

के वास्तविक मूल्य को, श्रमिक के पालन-पोषण के लिए आवश्यक धन तथा उसके परिवार के भरण-पोषण तथा श्रम की पूर्ति बनाये रखने की दृष्टि से आवश्यक भत्ते पर निर्धारित, स्वीकार करता है।'' एडम स्मिथ का विचार है कि यदि श्रमिकों को उनके जीवन के लिए आवश्यक आवश्यकताओं को पूर्ण करने योग्य मजदूरी प्रदान की जाएगी तो उनकी पूर्ति पूर्ववत् रहेगी, यदि उन्हें जीवन-निर्वाह स्तर से कम मजदूरी प्रदान की जाएगी तो उनकी पूर्ति घट जाएगी और यदि उन्हें इस स्तर से अधिक मजदूरी प्रदान की जाएगी तो उनकी पूर्ति में वृद्धि हो जाएगी तथा दीर्घकाल में दूरी भी आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति के समान हो जाएगी।

(ii) **मजदूरी कोष सिद्धान्त** (Wages Fund Theory)—इस सिद्धान्त के अन्तर्गत मजदूरी का निर्धारण उसके भुगतान के लिए निर्मित किये गये मजदूरी कोष के आधार पर होता है। यह स्पष्ट है कि मजदूरी पर निर्भर रहने वालों की माँग तथा कोष के अनुपात में ही बढ़ सकती है जो मजदूरी के भुगतान के लिए नियुक्त किया जाता है। जहाँ तक मजदूरी का सम्बन्ध है, राष्ट्रीय सम्पत्ति की अधिकता ही उसकी निर्णायक नहीं होती वरन् लगातार वृद्धि से इसका सम्बन्ध है। अत: आवश्यक रूप से अधिकतम सम्पन्न देशों में नहीं वरन् समृद्धि करते हुए देशों में श्रम की मजदूरी अधिकतम होती है तथा स्थिर अवस्था (Stationary State) में मजदूरी कम रहती है। इसके बाद स्मिथ ने मजदूरी के सिद्धान्त में माल्थस के जनसंख्या-सिद्धान्त का पुट दिया है जिसके अनुसार, अधिक मजदूरी से, श्रमिकों की संख्या में वृद्धि होगी। यदि श्रमिकों की माँग बढ़ती है तो श्रमिकों के उत्पादन को प्रोत्साहित करने के लिए मजदूरी भी बढ़नी चाहिए। वास्तव में, मजदूरी श्रमिकों की माँग को प्रतिबिम्बित करती है।

स्मिथ ने मजदूरी के भिन्न होने के भी कारणों पर प्रकाश डाला। उनके अनुसार ये कारण पाँच हैं—कार्य का अनुकूल या सन्तोषप्रद होना, कार्य सीखने का व्यय, कार्य का स्थायित्व, मजदूर पर विश्वास तथा सफलता की आशा। **राबर्ट लिकैचमैन** (Robert Lekachmen) ने इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा है, ''स्मिथ के इन पाँच कारणों में से कैण्टीलोन ने कम-से-कम तीन बताये थे (कि मजदूरी की दरों में भिन्नता क्यों होती है)। सदा मौलिक विचारक को ही ख्याति नहीं मिलती।''

(iii) **लाभ एवं ब्याज** (Profit and Interest)—एडम स्मिथ ने लाभ और ब्याज के भेद को स्पष्ट नहीं किया है। उनके अनुसार स्वयं पूँजी के बदले में प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार 'लाभ' तथा ऋणदाता को ऋण के बदले में प्रदान किया जाने वाला लाभ का भाग 'ब्याज' है। इस प्रकार स्मिथ ने पूँजीपति एवं साहसी को एक ही व्यक्ति स्वीकार किया है।

एडम स्मिथ ने बताया कि **''पूँजीपति श्रमिकों को उनका पुरस्कार देने के पश्चात् ही अवशिष्ट राशि लाभ के रूप में प्राप्त करता है।''** उसने आगे स्पष्ट किया कि लाभ की मात्रा पूँजी की मात्रा पर निर्भर करती है। अधिक पूँजी पर अधिक लाभ और कम पूँजी पर कम लाभ प्राप्त होगा। दूसरे, लाभ समय तथा व्यापार के स्वभाव से ही प्रभावित होता है। तीसरे, उसने बताया कि लाभ व मजदूरी में विपरीत सम्बन्ध होता है।

ब्याज (Interest) के निर्धारण के बारे में एडम स्मिथ ने लिखा है कि ब्याज की दर, लाभ की दर के ऊपर आधरित होती है। इस प्रकार यदि साहसी को अधिक लाभ प्राप्त होता है तो वह पूँजीपति को अधिक ब्याज देना पसन्द करेगा और इसके विपरीत कम लाभ होने पर वह पूँजीपति को भी कम ब्याज देने को इच्छुक होगा। इस प्रकार ब्याज एवं लाभ दोनों के निर्धारण की दृष्टि से एडम स्मिथ के विचार अस्पष्ट हैं।

प्र.2. रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
Critically explain the Ricardo's rent theory.

उत्तर

रिकार्डो का लगान का सिद्धान्त
(Ricardo's Theory of Rent)

यद्यपि **माल्थस, टोरेन्ड्स, वेस्ट** जैसे प्रतिष्ठित विचारकों ने स्वतन्त्र रूप से 'भेदात्मक लगान' का सिद्धान्त प्रतिपादित किया था परन्तु डेविड रिकार्डो ने लगान की समस्या को अधिक वैज्ञानिक दृष्टि से प्रतिपादित किया। फलत: उनका सिद्धान्त अधिक लोकप्रिय हुआ।

रिकार्डो ने लगान की परिभाषा इस प्रकार दी—**''लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो भू-स्वामी को भूमि की मौलिक एवं अविनाशी शक्तियों के उपभोग के उपलक्ष में दिया जाता है।''**

TOUCH 'n' PASS

सिद्धान्त की व्याख्या—रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की व्याख्या हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं—

(i) लगान कहाँ पैदा होता है?
(ii) लगान क्यों पैदा होता है?
(iii) लगान की मात्रा किसके बराबर होती है—
(अ) विस्तृत खेती में लगान। (ब) गहरी खेती में लगान।
(स) स्थिति सम्बन्धी लगान।

(i) **लगान कहाँ पैदा होता है?** (Where does Rent Arises?)—**रिकार्डो** के अनुसार लगान केवल भूमि साधन को ही प्राप्त होता है क्योंकि भूमि की कुछ विशिष्ट विशेषताएँ होती हैं जो अन्य साधनों में देखने को नहीं मिलतीं। भूमि की ये विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

(क) भूमि प्रकृति का नि:शुल्क उपहार है अर्थात् भूमि को प्राप्त करने के लिए समाज को कोई लागत नहीं लगानी पड़ती है।
(ख) भूमि की पूर्ति सीमान्त होती है और समाज की दृष्टि से अर्थात् भूमि की माँग के तदनुरूप उसकी पूर्ति को घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता।

भूमि में सीमितता या कृपणता का गुण होने के कारण ही लगान पैदा होता है।

(ii) **लगान क्यों पैदा होता है?** (Why does Rent Arises?)—रिकार्डो से पूर्व प्रकृतिवादियों का लगान के सम्बन्ध में यह मत था कि "लगान प्रकृति की उदारता तथा सहयोग का परिणाम है किन्तु **रिकार्डो** के अनुसार, लगान प्रकृति की उदारता के कारण नहीं बल्कि प्रकृति की कृपणता या सीमितता के कारण प्राप्त होता है। निम्न श्रेणी की भूमि पर खेती करना इसलिए आवश्यक हो जाता है कि उत्तम श्रेणी की भूमि की मात्रा सीमित है। इसी प्रकार गहन खेती में श्रम और पूँजी की अगली इकाइयाँ केवल इसी कारण कम उपज प्रदान करती हैं कि भूमि की उर्वरता निश्चित अथवा सीमित है। लगान इसी कारण उत्पन्न होता है कि (अ) न तो भूमि की पूर्ति प्रचुर होती है और (ब) न उसकी उर्वरता में श्रम और पूँजी की वृद्धि के अनुपात में वृद्धि करना ही सम्भव होता है।"

रिकार्डो का मत था कि भूमि की उर्वरा-शक्ति (Fertility) दो प्रकार की होती है—मूल तथा अविनाशी उर्वरा-शक्ति और अर्जित उर्वरा-शक्ति। भूमि के प्रत्येक टुकड़े को प्रकृति द्वारा उर्वरा-शक्ति प्राप्त होती है, उसे रिकार्डो ने 'मूल तथा अविनाशी' (Original and Indestructible) शक्ति कहा है। इसके विपरीत, अर्जित (Acquired) उर्वरा-शक्ति मानवीय प्रयत्नों का परिणाम होती है। **रिकार्डो** का कहना था कि लगान भूमि की केवल मौलिक तथा अविनाशी शक्तियों के कारण उत्पन्न होता है। रिकार्डो का भूमि की मौलिक एवं अविनाशी शक्तियों से तात्पर्य भूमि की उन शक्तियों से है जिनके रहते भूमि के भिन्न-भिन्न टुकड़ों के उपजाऊपन में विभिन्नता होती है। रिकार्डो के अनुसार भूमि के उपजाऊपन में विभिन्नता के कारण ही आर्थिक लगान उत्पन्न होता है। कुछ भूमि के टुकड़े दूसरे टुकड़ों से अधिक उपजाऊ होते हैं जिससे ये अधिक उत्पादन देते हैं। अत: अधिक उपजाऊ भूमि की उपज का अन्तर ही आर्थिक लगान है।

(iii) **लगान की मात्रा किसके बराबर होती है?**—इस प्रश्न के उत्तर में **रिकार्डो** का कहना था कि लगान विभिन्न प्रकार की भूमियाँ की उर्वरता में पाये जाने वाले अन्तर का परिणाम है और इस प्रकार लगान एक भेदात्मक अतिरेक या बचत है (Rent is a Differential Surplus)।

लगान की मात्रा कितनी होगी, इसका उत्तर हम दो विभिन्न स्थितियों में देखेंगे—
(अ) विस्तृत खेती में लगान, (ब) गहरी या गहन खेती में लगान।

(अ) **विस्तृत खेती के अन्तर्गत लगान का उदय** (Origin of Rent in Extension Cultivation)—प्राचीन काल में भूमि अपरिमित मात्रा में उपलब्ध होने के कारण व्यक्ति अपनी इच्छानुसार भूमि को काम में लाता था। ऐसी स्थिति में भूमि पर कोई लगान उपलब्ध नहीं होता था परन्तु जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ती गई, लोगों की भूमि की माँग भी बढ़ी और अच्छी भूमि की मात्रा सीमित होने के कारण लोग घटिया भूमि पर खेती करने लगे। इन दोनों प्रकार की भूमि (उपजाऊ तथा कम उपजाऊ अथवा बढ़िया तथा घटिया भूमि) पर पूँजी और श्रम की समान इकाइयों के प्रयोग करने पर भी कम उपजाऊ भूमि की उपज अधिक उपजाऊ भूमि की उपेक्षा कम होती है। इस तरह से लगान बढ़िया तथा घटिया भूमि की उपज के अन्तर के बराबर होता है। अत: लगान एक प्रकार की भेदात्मक बचत है। **रिकार्डो** के अनुसार, "लगान अधिसीमान्त तथा सीमान्त भूमि की उपजों का अन्तर है।" **रिकार्डो**

TOUCH 'n PASS

का मत है कि सीमान्त भूमि के अतिरिक्त अन्य सभी भूमि पर आय तथा उत्पादन लागत का अन्तर अधिकार होगा तथा यह अन्तर ही आर्थिक लगान है।

उदाहरण (Example)—रिकार्डो ने अपने लगान सिद्धान्त को समझाने के लिए भूमि पर खेती किये जाने का ऐतिहासिक क्रम बताया है। मान लीजिए, एक द्वीप है। नये द्वीप के प्रारम्भ में भूमि नि:शुल्क होगी, यदि कुछ लोग वहाँ आकर बसते हैं तो सर्वप्रथम सबसे अच्छी भूमि पर ही खेती प्रारम्भ की जाएगी। इसे प्रथम श्रेणी की भूमि कहा जा सकता है। मान लीजिए कि प्रथम श्रेणी की एक हेक्टेयर भूमि में कुल उपज 30 क्विंटल गेहूँ है। कुछ समय बाद बसने वाले लोगों का दूसरा जत्था वहाँ पहुँच जाता है जिससे अनाज की माँग में वृद्धि हो जाती है। प्रथम श्रेणी की भूमि उपलब्ध न होने का कारण अब यह जत्था द्वितीय श्रेणी की भूमि का प्रयोग खेती के काम में करेगा। दूसरी श्रेणी की भूमि कम उपजाऊ होने के कारण इसमें एक एकड़ में 20 क्विंटल ही गेहूँ उत्पन्न होता है। इस स्थिति में प्रथम श्रेणी की भूमि अधिक उपजाऊ होने के कारण उस पर केवल 10 क्विंटल (30-20) गेहूँ का आधिक्य प्राप्त होता है। इस स्थिति में द्वितीय श्रेणी की भूमि पर किसी प्रकार का लगान नहीं होगा क्योंकि यह सीमान्त भूमि है। यदि बसने वाले निरन्तर आते ही जाते हैं तो ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि तृतीय श्रेणी की भूमि पर भी खेती का काम प्रारम्भ किया जायेगा। अब मान लीजिए कि इस श्रेणी की एकड़ भूमि के टुकड़े पर 15 क्विंटल गेहूँ की उपज होती है तो अब द्वितीय श्रेणी की भूमि को श्रेष्ठता प्राप्त होगी और इस भूमि पर भी $20-15=5$ क्विंटल लगान होगा। अब प्रथम श्रेणी की भूमि का लगान पहले से अधिक हो जाएगा। अत: $30-15=15$ क्विंटल प्रथम श्रेणी की भूमि का लगान होगा। यदि और अधिक जनसंख्या बढ़ने के कारण चतुर्थ श्रेणी की भूमि पर ही खेती का कार्य किया जाता है और यदि चौथी श्रेणी की भूमि के टुकड़े पर 5 क्विंटल गेहूँ उत्पन्न होता है तो प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी की भूमि का लगान क्रमश: $30-5=25$, $20-5=15$, $10-5=5$ क्विंटल अर्थात् प्रथम श्रेणी की भूमि का लगान 25, द्वितीय का 15, तृतीय का 5 क्विंटल तथा चौथी श्रेणी की भूमि सीमान्त भूमि होगी। सीमान्त भूमि पर कोई लगान नहीं होगा। इसके अतिरिक्त प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय श्रेणियों की भूमि पर उनकी उपज तथा सीमान्त भूमि की उपज के अन्तर से लगान का निर्धारण होगा। इस तथ्य को निम्नलिखित सारणी द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है—

सारणी 1–सीमान्त भूमि की उपज के अन्तर से लगान का निर्धारण

भूमि	उत्पादन प्रत्येक भूमि में भूमि की अपेक्षा अधिक	प्रत्येक भूमि का सीमान्त उत्पादन (क्विंटल में)
प्रथम श्रेणी (A)	30	$30-5=25$
द्वितीय श्रेणी (B)	20	$20-5=15$
तृतीय श्रेणी (C)	10	$10-5=5$
चतुर्थ श्रेणी (D)	5	$5-5=0$

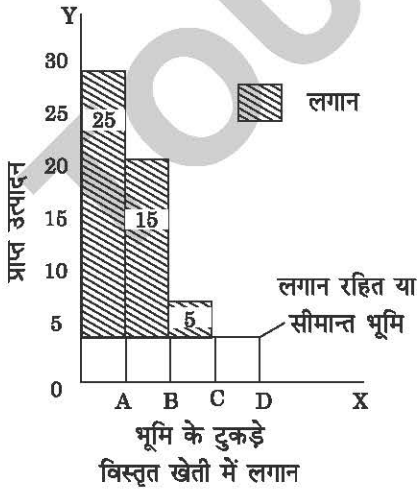

सारणी से स्पष्ट है कि सीमान्त भूमि (D) से केवल 5 क्विंटल अनाज का उत्पादन होता है। इसलिए A, B और C की श्रेणी की भूमियों को सीमान्त भूमि की उपज से अधिक होने वाली उपज के बराबर क्रमश: 25, 15 व 5 क्विंटल अनाज मिलेगा, D श्रेणी की भूमि को कोई लगान नहीं मिलेगा अर्थात् लगानरहित भूमि कहलायेगी।

चित्र 1 में OX-अक्ष पर भूमि की श्रेणियाँ तथा OY-अक्ष पर उत्पादन मापा गया है। A, B, C, D विभिन्न प्रकार की भूमियाँ हैं। इसमें पाये जाने वाले विभेद के कारण ही इन पर मिलने वाले लगान की मात्रा निर्धारित होती है। A ग्रेड की भूमि से कुल उपज 30 क्विंटल, B ग्रेड की भूमि से 20 क्विंटल, C ग्रेड से 10 क्विंटल तथा D ग्रेड से 5 क्विंटल गेहूँ का उत्पादन होता है। D ग्रेड की भूमि सबसे घटिया किस्म की भूमि है। इस पर कोई लगान नहीं मिलेगा परन्तु A, B तथा C ग्रेड की भूमियों पर D ग्रेड की भूमि से जितनी उपज अधिक होगी, उतना ही लगान प्राप्त होगा अर्थात् A, B और C भूमि पर क्रमश: 25, 15, 5 क्विंटल अनाज लगाने के रूप में मिलेगा।

TOUCH 'n' PASS

(ब) **गहन खेती के अन्तर्गत लगान** (Rent under Intensive Cultivation)—जब एक ही भूमि पर श्रम तथा पूँजी की अतिरिक्त इकाइयाँ लगाकर उत्पादन बढ़ाया जाता है तो इसे गहरी खेती या गहन खेती कहते हैं। जब किसी भूमि खण्ड पर क्रमश: पूँजी की अधिक मात्राओं का प्रयोग किया जाता है तो उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता के कारण इन मात्राओं की सीमान्त उत्पादकता घटती जाती है। सीमान्त मात्रा की उत्पादकता ठीक उसकी लगात के बराबर होगी अर्थात् इस पर कोई आधिक्य प्राप्त नहीं होगा परन्तु इसके पूर्व की मात्रा की उत्पादकता उनकी लागत से अधिक होगी। अत: पूर्व की सीमान्त मात्राओं को आधिक्य या लगान प्राप्त होगा। विस्तृत खेती वाली सारणी में यदि हम भूमि की विभिन्न मात्राओं (*A, B, C, D*) के स्थान पर श्रम तथा पूँजी की विभिन्न मात्राओं (प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ मात्रा) का प्रयोग करें तो चतुर्थ मात्रा सीमान्त मात्रा कहलायेगी तथा पूर्व सीमान्त मात्राओं (प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय) को लगान प्राप्त होगा, यह चित्र 2 से स्पष्ट है।

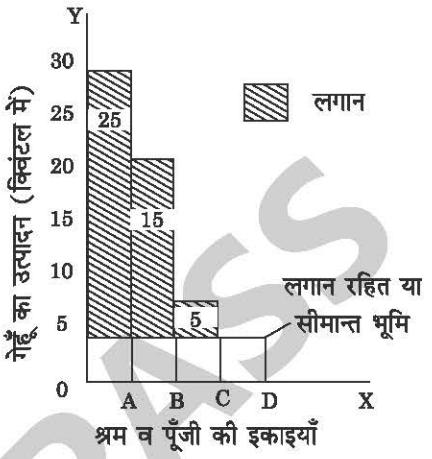

श्रम व पूँजी की इकाइयाँ

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि रिकार्डो का लगान सिद्धान्त विस्तृत और गहन खेती दोनों में क्रियाशील होता है अर्थात् (अ) भूमि की पूर्ति चूँकि सीमित होती है इसलिए घटिया किस्म की भूमि काम में लायी जाती है। (ब) उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता के कारण गहन खेती करनी पड़ती है। इससे स्पष्ट है कि रिकार्डो ने अपने सिद्धान्त में दो सर्वव्यापी नियमों का सहारा लिया—उत्पत्ति ह्रास नियम तथा जनसंख्या का ज्यामितिक गति से बढ़ने का नियम।

सिद्धान्त की मान्यताएँ (Assumptions of the Law)

यह सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है—

(i) यह सिद्धान्त **दीर्घकालीन** है।
(ii) यह सिद्धान्त **सीमान्त भूमि** अथवा **लगान-रहित भूमि के विचार** पर आधारित है।
(iii) यह मान लिया गया है कि **भूमि पूर्ति** की मात्रा तथा गुण दोनों दृष्टियों से सीमित है।
(iv) लगान **केवल भूमि** पर ही उत्पन्न होता है अर्थात् भूमि को छोड़कर उत्पत्ति के किसी अन्य साधन में लगान नहीं होता है।
(v) विभिन्न भू-भागों को उनकी **उर्वरता के क्रम** में जोता जाता है अर्थात् यहाँ सबसे उपजाऊ भूमि पर कृषि की जाती है फिर धीरे-धीरे निम्न श्रेणी की भूमि पर खेती की जाती है।
(vi) लगान उत्पन्न होने का कारण **भूमि की उर्वरता** है।
(vii) यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि कृषि पर **उत्पत्ति ह्रास नियम** लागू होता और जनसंख्या के बढ़ने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

रिकार्डो के लगान सिद्धान्त की आलोचनाएँ (Criticisms of Ricardo's Rent Theory)

आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने रिकार्डो के सिद्धान्त की कटु आलोचनाएँ की हैं। उनके मतानुसार रिकार्डो का सिद्धान्त सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से भले ही ठीक हो परन्तु व्यावहारिक जीवन में इसका उपयोग करना कठिन है। कुछ प्रमुख आलोचनाएँ इस प्रकार हैं—

1. **भूमि की मौलिक तथा अविनाशी शक्तियाँ** (Primordial and Indestructible Powers of the Soil)—रिकार्डो की यह कल्पना अवास्तविक है कि लगान भूमि की मौलिक एवं अविनाशी शक्तियों के कारण ही उत्पन्न होता है क्योंकि भूमि की उर्वरा-शक्ति मनुष्य द्वारा बढ़ायी जा सकती है। विज्ञान के सहारे जलवायु तथा कृषि प्रणाली में परिवर्तन करके, बंजर भूमि को हरी-भरी भूमि में और इसी प्रकार उपजाऊ भूमि को बंजर भूमि में बदला जा सकता है। आज एटामिक एवं हाइड्रोजन विस्फोटक के युग में किसी वस्तु को अविनाशी कहना एक भूल है।
2. **कृषि का ऐतिहासिक क्रम गलत है** (Historical Order of Agriculture)—**वाकर** (Walker), **कैरे** (Carey) तथा **रोशर** (Roscher) ने रिकार्डो के सिद्धान्त की इस आधार पर आलोचना की है कि रिकार्डो ने कृषि का जो क्रम बताया है, वह गलत है क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि भूमि पर उर्वरता के अनुसार ही खेती की जाये। उनका कहना है कि सबसे पहले उत्तम भूमि पर खेती नहीं की जाती है बल्कि उस भूमि पर खेती की जाती है जो यातायात की सुविधा के कारण सरलता से उपलब्ध हो।

TOUCH 'n PASS

3. **सीमान्त या लगानहीन भूमि की कल्पना मिथ्या है** (Marginal or No-rent Land is Myth)—वास्तविक जीवन में लगानहीन भूमि देखने को नहीं मिलती है क्योंकि जनसंख्या में वृद्धि होने पर जब भूमि की पूर्ति को बढ़ाया नहीं जा सकता तो घटिया भूमि पर भी लगान लिया जाने लगता है।
4. **पूर्ण प्रतियोगिता और दीर्घकाल की मान्यताएँ अवास्तविक हैं** (Unrealistic Assumptions of Perfect Competition and Long-run)—अन्य पुराने सिद्धान्तों की भाँति रिकार्डो ने भी अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन पूर्ण प्रतियोगिता एवं दीर्घकाल के अन्तर्गत किया है जो न तो व्यावहारिक है, न ही उपयोगी।
5. **लगान भूमि की मात्रा सीमित होने का परिणाम है, न कि उर्वरता का** (Scarcity and not Fertility is the Cause of Rent)—आलोचकों का मत है कि लगान भूमि की उर्वरता के कारण नहीं बल्कि इसकी सीमितता के कारण होता है क्योंकि अच्छी भूमि के लगान का प्रादुर्भाव इसलिए होता है कि वह सीमित है और जिसके कारण कम भूमि का उपयोग करना आवश्यक हो जाता है।
6. **लगान केवल भूमि की विशेषता नहीं है** (Rent is not only Characteristic of Land)—आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, लगान केवल भूमि की विशेषता ही नहीं है बल्कि उत्पत्ति के अन्य साधनों पर भी लगान प्राप्त होता है जिसकी पूर्ति पूर्णतया लोचदार नहीं होती। अल्पकाल में भूमि के अतिरिक्त उत्पत्ति के अन्य साधनों की पूर्ति भी आवश्यकतानुसार बढ़ायी जा सकती है, इसलिए इन्हें भी लगान की तरह एक बचत प्राप्त होती है। इसलिए **जॉन राबिन्सन** ने कहा है कि भूमि के अतिरिक्त उत्पत्ति के दूसरे साधनों; जैसे—श्रम, पूँजी व साहस में भी लगान प्रकट हो सकता है।
7. **लगान के लिए पृथक् सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं है** (Not Need for a Separate Theory for Rent)—आधुनिक अर्थशास्त्रियों का मत है कि उत्पत्ति के प्रत्येक साधन का पुरस्कार निर्धारण करने के लिए एक ही सिद्धान्त होना चाहिए क्योंकि भूमि में कोई ऐसी विशेषता नहीं पायी जाती जिसके कारण पारितोषण को निश्चित करने के लिए एक पृथक् सिद्धान्त की आवश्यकता है।
8. **लगान अल्पकाल में भी उत्पन्न होता है** (Rent accrues in Short Period also)—रिकार्डो का लगान सिद्धान्त केवल दीर्घकाल में लागू होता है जो कि वास्तविक नहीं है क्योंकि लगान तो अल्पकाल में भी उस समय उत्पन्न होता है जब साधन की पूर्ति स्थिर या बेलोचदार हो। मार्शल ने इस प्रकार के लगान को आभास लगान कहा है।

प्र.3. रिकार्डो के मजदूरी, लाभ तथा ब्याज एवं मूल्य के सिद्धान्तों की विवेचना कीजिए।
Describe the theories of wages, profit and interest and values of Ricardo.

उत्तर

रिकार्डो का मजदूरी का सिद्धान्त
(Ricardo's Theory of Wages)

रिकार्डो का मजदूरी का सिद्धान्त विख्यात **'जीवन निर्वाह का सिद्धान्त'** (The Subsistence Theory of Wage) है। इस सिद्धान्त का सर्वप्रथम **एडम स्मिथ** ने विचार किया था और माल्थस ने इसे मान्यता दी थी परन्तु इस सिद्धान्त का व्यवस्थित रूप में प्रतिपादन 1915 में **कर्नल टारेन्स** ने किया था जिसे रिकार्डो ने भी मान्यता प्रदान की।

मजदूरी सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए रिकार्डो ने बताया कि **"मजदूरी उत्पादन का वह भाग है जो श्रमिकों को प्राप्त होता है।"** उन्होंने दो प्रकार की मजदूरी का विवेचन किया है—(अ) प्राकृतिक या स्वाभाविक मजदूरी एवं (ब) बाजार मजदूरी।

(अ) **प्राकृतिक या स्वाभाविक मजदूरी** (Natural Wage)—प्राकृतिक मजदूरी वह है जो श्रमिकों की केवल न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक है। **रिकार्डो** के शब्दों में, "श्रम का स्वाभाविक या प्राकृतिक मूल्य वह मूल्य होता है जो कि श्रमिकों के लिए बिना अपनी जनसंख्या में वृद्धि या कमी किये हुए ही जीवित रहने तथा अपने वंश को कायम रखने के लिए आवश्यक होता है।"

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि रिकार्डो का मत था कि प्राकृतिक मजदूरी वह है जो न केवल मजदूरी की न्यूनतम आवश्यकताओं को ही पूरा करे वरन् ऐसी भी हो कि न तो जनसंख्या को बढ़ने दे और न घटने। जनसंख्या के घटने-बढ़ने का प्रभाव निश्चय ही मजदूरी को प्रभावित करेगा। इसलिए किसी श्रमिक के बच्चों की संख्या उतनी ही होनी चाहिए जितनी कि माता-पिता को प्रतिस्थापित करने के लिए अनिवार्य हो। ऐसा न होने पर श्रमिकों का जीवन-स्तर गिर जाएगा और कार्यकुशलता में ह्रास आयेगा।

TOUCH 'n' PASS

वास्तव में 'न्यूनतम आवश्यकताएँ' भी एक 'सापेक्षिक' शब्द है अर्थात् यह व्यक्तियों पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति जो गेहूँ खाने व मकान में रहने व अच्छे कपड़े पहनने का आदी है, उसकी न्यूनतम आवश्यकताएँ गेहूँ, मकान और कपड़ा है परन्तु दूसरा व्यक्ति जो ज्वार-बाजरा खाता है, खुले में सोता है और पेड़ की छाल पहनता है, उसकी न्यूनतम आवश्यकताएँ पहले व्यक्ति से कम होंगी, इसीलिए रिकार्डो ने दूसरी शर्त भी लगायी है कि मजदूरी ऐसी हो जिससे जनसंख्या स्थिर रहे। श्रमिक को स्वयं अपने भरण-पोषण तथा श्रमिकों की संख्या को बनाये रखने के लिए आवश्यक परिवार के भरण-पोषण की शक्ति मजदूरी के रूप में उसे प्राप्त मुद्रा की मात्रा पर निर्भर नही रहती वरन् उक्त मुद्रा द्वारा क्रय किये जा सकने वाले खाद्यान्न, आवश्यकता की वस्तुओं तथा सुविधाओं की मात्रा पर निर्भर रहती है जिनके उपयोग का वह आदी हो जाता है। अत: श्रम का प्राकृतिक मूल्य श्रमिक तथा उसके परिवार के लिए आवश्यक खाद्यान्न, आवश्यकता की वस्तुओं तथा सुविधाओं की कीमतों पर निर्भर रहता है। खाद्यान्न तथा आवश्यकता की वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि होने के साथ-साथ श्रम का स्वाभाविक मूल्य बढ़ जाता है और उनकी कीमतों में कमी होने पर श्रम का स्वाभाविक मूल्य कम हो जाता है। **रिकार्डो** ने कहा है कि "प्राकृतिक या स्वाभाविक दर समाज की प्रगति के साथ-साथ बढ़ती है, इसका कारण यह है कि उपभोग की एक प्रधान वस्तु—अनाज, जिसके द्वारा मजदूरी बहुत कुछ निर्धारित होती है, महँगी हो जाती है क्योंकि उसे अधिक मात्रा में उत्पन्न करने की कठिनाइयाँ बढ़ जाती हैं। रिकार्डो ने यह भी बताया कि प्राकृतिक मजदूरी एक ही देश में भिन्न-भिन्न समयों पर भिन्न-भिन्न रहती है और विभिन्न देशों में तो उसकी मात्रा में बहुत अधिक अन्तर होता है।

(ब) **बाजार मजदूरी** (Market Wage)—जो मजदूरी किसी समय मजदूरों को दी जाती है, उसे रिकार्डो ने बाजार मजदूरी कहा है। यह मजदूरी मजदूरों की **माँग और पूर्ति द्वारा निर्धारित** होती है। रिकार्डो के शब्दों में, "श्रम का बाजार मूल्य वह मूल्य होता है जिसका कि उसके लिए वास्तव में भुगतान किया जाता है और न जो कि माँग तथा पूर्ति के पारस्परिक अनुपात के स्वाभाविक क्रियाशीलता द्वारा निर्धारित किया जाता है।"

एक स्थान पर रिकार्डो ने 'मजदूरी कोष सिद्धान्त' (Wage Fund of Theory) का भी वर्णन किया है यद्यपि उन्होंने मजदूरी कोष शब्द का प्रयोग नहीं किया है। **रिकार्डो** के शब्दों में, "जनसंख्या स्वयं उन कोषों से नियन्त्रित होती है जिनका इसे काम दिलाने में प्रयोग किया जाता है, अत: इसमें भी पूँजी में होने वाली वृद्धि या कमी के साथ वृद्धि या कमी होती है।"

रिकार्डो के मजदूरी सम्बन्धी अन्य महत्त्वपूर्ण विचार इस प्रकार हैं—

1. मजदूरी को बाजार की स्वस्थ या स्वतन्त्र प्रतियोगिता पर छोड़ देना चाहिए।
2. अपनी दशा को सुधारने के लिए श्रमिकों को स्वयं भी प्रयत्न करने चाहिए। **रिकार्डो** के शब्दों में, "अपने बच्चों की संख्या सीमित करने के अतिरिक्त श्रमिकों की दशा सुधारने का कोई साधन नहीं है। उसका भाग्य स्वयं उसके हाथ में है।" इसका अर्थ यह है कि जनसंख्या की वृद्धि पर नियन्त्रण रखना होगा क्योंकि जनसंख्या की वृद्धि को रोककर मजदूरी की मात्रा में वृद्धि की जा सकती है।
3. सभी श्रमिकों को पूर्ण प्रतियोगिता के कारण एक समय में एक-सी मजदूरी मिलती है।
4. मजदूरी कीमत को प्रभावित नहीं करती बल्कि श्रम कीमत को प्रभावित करता है।
5. भूस्वामी तथा श्रमिकों के हितों में कोई परस्पर विरोध नहीं होता। कारण स्पष्ट है, श्रमिकों का मजदूरी सीमान्त भूमि पर निर्भर करती है। पर इस भूमि पर लगान नहीं मिलता है। अत: लगान में होने वाली कमी या वृद्धि व मजदूरी की दर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

मजदूरी सिद्धान्त की आलोचनाएँ (Criticisms of Theory of Wages)—रिकार्डो का मजदूरी का सिद्धान्त तीव्र आलोचना का विषय रहा है और इस सिद्धान्त के कारण ही अर्थशास्त्र को 'निराशाजनक विज्ञान' अर्थपिशाच का उद्देश्य (Gospel of Mammon) आदि नामों से पुकारा गया है क्योंकि इस सिद्धान्त का निष्कर्ष यह है कि मजदूरों को भोजन आदि को पाने की अधिक आशा नहीं करनी चाहिए अर्थात् उनका भविष्य सदा ही अन्धकारमय है। इस सिद्धान्त में निम्नलिखित दोष पाये जाते हैं—

1. **अपूर्णता** (Incomplete)—यह सिद्धान्त अपूर्ण है क्योंकि यह केवल मजदूरों की पूर्ति पक्ष (लागत) पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करता है। उनके माँग पक्ष (उत्पादकता) की ओर ध्यान नहीं देता।
2. **निराशावादी** (Pessimistic)—यह सिद्धान्त अत्यन्त निराशावादी है क्योंकि इसके अनुसार मजदूरों की मजदूरी जीवन-निर्वाह से अधिक नहीं हो सकती।

TOUCH 'n' PASS

3. **श्रमिकों की कार्यक्षमता पर ध्यान न देना** (Efficiency of Workers Ignored)—यह सिद्धान्त श्रमिकों की कार्यक्षमता पर बिलकुल ध्यान नहीं देता बल्कि सब मनुष्यों को समान रूप से कार्यकुशल मानकर चलता है जो कि गलत है।
4. **इतिहास द्वारा गलत प्रमाणित** (Refuted by History)—सबसे प्रधान बात यह है कि इतिहास ने इसे असिद्ध किया है। मजदूरी दर तथा वास्तविक दर—सभी उन्नतिशील देशों में बढ़ रही है। श्रमिक संघों, सामूहिक सौदों आदि के प्रभाव से मजदूरी बढ़ी है। यह तथ्य रिकार्डो की सबसे बड़ी आलोचना है।

रिकार्डो का लाभ तथा ब्याज का सिद्धान्त (Ricardo's Theory of Profit and Interest)

रिकार्डो ने **लाभ और ब्याज** में कोई अन्तर नहीं किया है क्योंकि उन्होंने पूँजीपति और साहसी को एक माना है। रिकार्डो के समय में पूँजीपति स्वयं ही साहसी भी होता था। व्यक्ति स्वयं ही अपनी पूँजी लगाकर अपनी देखरेख में ही व्यवसाय करता था और खर्चे काटकर जो कुछ भी उसके पास शेष बचा रहता था, वह पूँजी और साहस दोनों का ही पारितोषण होता था जिसे लाभ कहते हैं। अत: **रिकार्डो के अनुसार लाभ भी एक बचत है जो मजदूरी आदि का भुगतान करने के बाद शेष रहती है।** उन्होंने लिखा है कि "प्रत्येक देश में और सभी कालों में लाभ श्रम की उस मात्रा पर निर्भर करता है जो उस भूमि पर या पूँजी के साथ जिस पर कोई लगान नहीं मिलता, श्रमिकों की आवश्यकता की वस्तुएँ उत्पन्न करने के लिए जरूरी है। तात्पर्य यह है कि **सीमान्त भूमि पर चूँकि लगान नहीं होता,** इसलिए उत्पादन के दो ही दावेदार हैं—पूँजीपति और मजदूर। श्रम का प्राकृतिक मूल्य उसके लिए आवश्यक आवश्यकताओं और सुविधाओं द्वारा निर्धारित होता है और बाकी बचा हुआ भाग लाभ। साथ ही रिकार्डो यह भी जानते हैं कि लाभ का होना आवश्यक है। यदि लाभ शून्य हो जाएगा तो उद्योग नहीं रहेंगे।

वितरण के इन विचारों के अनुसार लगान, मजदूरी और लाभ की प्रगति इस प्रकार होती है—

(अ) **लगान की दर बढ़ती जाती है**—क्योंकि घटिया किस्म की भूमि पर भी कृषि होने लगती है जिससे लागत अधिक आती है और अच्छी भूमि पर आधिक्य बढ़ जाता है। इस प्रकार से यह बढ़ा हुआ आधिक्य लगान है।

(ब) **मजदूरी की दर स्थिर रहती है**—यहाँ मजदूरी का तात्पर्य वास्तविक मजदूरी है।

(स) **लाभ की दर घटती जाती है**—इसका चरण यह है कि घटिया किस्म की भूमि पर कृषि करने में अधिक श्रम व्यय होता है जिस कारण मजदूरी बढ़ जाती है। चूँकि लगान हटाकर उत्पादन केवल श्रम और पूँजी के मध्य में बाँटा जाता है, इसलिए मजदूरी का अनुपात बढ़ने से लाभ का अनुपात घटता जाता है।

यहाँ एक बात उल्लेखनीय है कि रिकार्डो ने **बेस्टियाट** के इस कथन का खण्डन नहीं किया कि एक प्रगतिशील अर्थव्यवस्था में लाभ तथा मजदूरी दोनों ही बढ़ सकते हैं क्योंकि बाँटी जाने वाली कुल राशि बढ़ जाती है। उदाहरणार्थ, यदि सीमान्त भूमि पर उत्पादन 100 क्विण्टल है और 30% मजदूरी है तो लाभ 70% होता है अर्थात् मजदूरी 30 क्विण्टल होगी और लाभ 70 क्विण्टल होगा। यदि उत्पादन बढ़ाकर 200 क्विण्टल हो जाये और मजदूरी 50% हो तो मजदूरी और लाभ दोनों ही बढ़कर 100-100 क्विण्टल हो जाते हैं। स्पष्ट है कि यद्यपि मजदूरी 30% से बढ़कर 50% हो गयी है फिर भी कुल लाभ में कमी नहीं आयी है बल्कि वह 70 क्विण्टल से बढ़कर 100 क्विण्टल हो गया है। अत: वितरण के क्रम में यह बात उल्लेखनीय है कि वितरण की यह व्यवस्था अनुपातों की है, मात्राओं की नहीं। रिकार्डो का यह कथन था कि **मजदूरी का अनुपात बढ़ जाता है और लाभ का अनुपात घटता है,** जैसा चित्र में दर्शाया गया है।

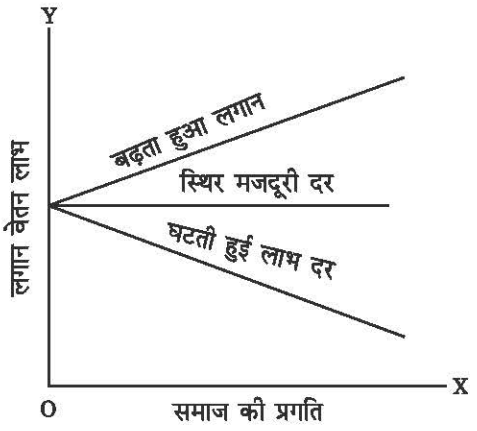

रिकार्डो ने ऐसी परिस्थिति की कल्पना की जबकि समय बीतने के साथ-साथ अर्थव्यवस्था एक ऐसी स्थिति में पहुँच जाएगी जहाँ लाभ शून्य तक गिर जाएगा अर्थात् मजदूरी ही सम्पूर्ण उत्पादन को खा जाएगी। चूँकि लाभ बचत और विनियोग दोनों के प्रमुख स्रोत हैं इसलिए लाभ में कमी होने के कारण पूँजी संचयन रुक जाएगा और तब अर्थव्यवस्था एक स्थिर बिन्दु पर पहुँच जाएगी जिसे रिकार्डो ने **दीर्घकालीन स्थिर अवस्था** कहा है।

मूल्यांकन (Evaluation)—**रिकार्डो के लाभ** सम्बन्धी विचार अत्यन्त त्रुटिपूर्ण, अस्पष्ट व अवैज्ञानिक है क्योंकि (i) रिकार्डो ने ब्याज और लाभ में कोई अन्तर नहीं माना है जो कि गलत है; (ii) विज्ञान की उन्नति से कृषि तथा अन्य उद्योगों का उत्पादन व्यय

बहुत कम हुआ है जबकि रिकार्डो के वितरण के सिद्धान्त का आधार यह है कि गल्ला महँगा होता जाएगा, स्पष्टत: जो ठीक नहीं है; (iii) इतिहास ने भी इस सिद्धान्त को असत्य सिद्ध किया है क्योंकि रिकार्डो ने जो दीर्घकालीन स्थिर अवस्था की बात की है, वह काल्पनिक ही सिद्ध हुई और रिकार्डो का भय निर्मूल रहा है। फिर भी रिकार्डो ने जो वर्ग-संघर्ष की ओर संकेत किया है, वह आगे चलकर कार्ल मार्क्स के चिन्तन का आधार बना।

रिकार्डो का मूल्य सिद्धान्त (Ricardo's Theory of Value)

रिकार्डो का मूल्य सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण नहीं है। रिकार्डो ने वितरण की समस्याओं का अध्ययन करते समय विभिन्न स्थानों पर मूल्य सम्बन्धी विचार दिये हैं, इसलिए हम उनके विचारों को किसी एक स्थान पर एकत्रित न पाकर बिखरे रूप में पाते हैं। अत: उन सब बिखरे हुए विचारों को इकट्ठा करके ही हम उनके मूल्य सिद्धान्त का पता लगाते हैं।

मूल्य सिद्धान्त के प्रतिपादन में रिकार्डो ने एडम स्मिथ का अनुसरण किया है। स्मिथ की भाँति रिकार्डो ने मूल्य के दो भाग किये हैं—(अ) वास्तविक मूल्य (Value in Use) और (ब) विनिमय मूल्य (Value in Exchange)। वास्तविक मूल्य अर्थात् उपयोगिता (Utility) भावना या हृदय से सम्बन्धित चीज है इसलिए इसे ठीक-ठीक माप सकना असम्भव है। अत: रिकार्डो ने यह समझते हुए कि वास्तविक मूल्य महत्त्वपूर्ण होता है, उसकी तरफ ध्यान देते हुए बताया कि अर्थशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र का सम्बन्ध मुख्यत: विनिमय मूल्य से है।

विनिमय मूल्य दो प्रकार का हो सकता है—एक तो **प्राकृतिक मूल्य** (Natural Value) और दूसरा **बाजार मूल्य** (Market Value)। रिकार्डो ने बाजार मूल्य तथा प्राकृतिक मूल्य में भेद करते हुए स्पष्ट किया कि किसी वस्तु के बाजार मूल्य में उसकी माँग और पूर्ति में परिवर्तन होने के अनुसार कमी या वृद्धि होती रहती है परन्तु प्राकृतिक मूल्य स्थिर रहता है और उस पर वस्तु की माँग व पूर्ति में होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव नहीं पड़ता।

विनिमय मूल्य का अध्ययन करते हुए रिकार्डो ने वस्तुओं को दो भागों में विभाजित किया है—

1. वे वस्तुएँ जो दुर्लभ हैं और इस कारण उनमें बहुत अधिक विनिमय मूल्य होता है। उदाहरणार्थ, मूर्तियाँ, पुराने सिक्के, पुरानी मदिरा आदि दुर्लभ वस्तुएँ हैं जिनका विनिमय मूल्य इनकी दुर्लभता के कारण होता है अर्थात् इन वस्तुओं के मूल्य और इनके उत्पादन में लगी श्रम की मात्रा का आपस में कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता है।
   रिकार्डो समझते थे कि ऐसी वस्तुएँ जो दुर्लभ हैं, बहुत कम होती हैं अत: वे दुर्लभ वस्तुओं का भी विनिमय मूल्य मालूम करने का सिद्धान्त नहीं होते हैं।
2. वे वस्तुएँ जो दुर्लभ नहीं होती हैं और जिनकी पूर्ति आवश्यकता के अनुसार घटायी-बढ़ायी जा सकती है, रिकार्डो केवल **इन्हीं वस्तुओं का विनिमय मूल्य** मालूम करना चाहते थे।

रिकार्डो का मत था कि जो वस्तुएँ दुर्लभ नहीं हैं और जिनकी पूर्ति में उनकी माँग के अनुसार कमी या वृद्धि की जा सकती है, उनके **मूल्य निर्धारण में श्रम एकमात्र तत्त्व होता है।**

रिकार्डो का मत था कि मजदूरी, लाभ तथा लगान की दरें विनिमय मूल्य को प्रभावित नहीं करतीं क्योंकि (i) लगान सिद्धान्त बताता है कि लगान वस्तु की कीमत में शामिल नहीं होता है। लगान स्वयं मूल्य का परिणाम होता है। (ii) लाभ सिद्धान्त बताता है कि लाभ एक बचत है, अत: यह भी विनिमय मूल्य को प्रभावित नहीं करता। साथ ही लाभ तो सभी उद्योग में समान होता है और धीरे-धीरे शून्य हो जाता है। (iii) मजदूरी सिद्धान्त बताता है कि सभी वस्तुओं को बनाने में लगे हुए श्रमिकों को पूर्ण स्पर्द्धा के कारण समान मजदूरी मिलती है अत: जब मजदूरों को चाहे वे कोई भी काम क्यों न कर रहे हों, समान मजदूरी मिलती है, तब वस्तु के विनिमय मूल्य पर मजदूरी की दर का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

इस प्रकार रिकार्डो ने यह स्पष्ट किया है कि **वस्तु का विनिमय मूल्य उसको बनाने में व्यय किये गये श्रम की मात्रा के बराबर होता है।** अत: रिकार्डो ने **मूल्य का श्रम कीमत सिद्धान्त** (Labour Cost Theory of Value) विकसित किया है।

आलोचना (Criticism)—रिकार्डो के मूल्य सिद्धान्त बहुत ही असन्तोषजनक हैं क्योंकि—

(अ) वे सभी श्रमिकों को समान कार्यकुशल व लाभ दर को समान मानते हैं और लगान को उत्पादन लागत में शामिल नहीं करते जो कि गलत है।

(ब) किसी वस्तु के मूल्य निर्धारण में केवल श्रम लागत का ही प्रभाव नहीं पड़ता बल्कि उपयोगिता का भी प्रभाव पड़ता है जिस पर रिकार्डो ने ध्यान नहीं दिया।

TOUCH 'n' PASS

इन आलोचनाओं के फलस्वरूप रिकार्डो ने अपने मूल्य के श्रम सिद्धान्त में अनेक सुधार किये, फिर भी वे उसे पूर्ण नहीं बना पाये। स्वयं वे अपने विवेचन से सन्तुष्ट नहीं थे जैसा कि उनके द्वारा 18 दिसम्बर, 1889 को अपने मित्र **मैककुलोच** को एक पत्र में लिखे इन शब्दों से स्पष्ट होता है, "मैं अपने द्वारा मूल्य को नियन्त्रित करने वाले सिद्धान्तों की दी गई व्याख्या से सन्तुष्ट नहीं हूँ। मेरी इच्छा है कि कोई अधिक योग्य व्यक्ति इस कार्य को करे।" इसी तरह उन्होंने माल्थस को भी 15 अगस्त, 1820 को लिखा था, "Both of us have failed."

उक्त दोष होते हुए भी रिकार्डो के मूल्य सिद्धान्त का ऐतिहासिक महत्त्व है। इस सिद्धान्त ने मार्क्स जैसे विचारक को प्रेरणा दी और समाजवाद (Socialism) के विकास में पर्याप्त योग प्रदान किया है जैसा कि **जीड** के कथन से स्पष्ट है—'रिकार्डो का मूल्य सिद्धान्त आधुनिक समाजवाद का प्रारम्भिक बिन्दु है।"

प्र.4. रिकार्डो के आर्थिक विचारों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
Describe in detail the economic thoughts of Ricardo.

उत्तर

रिकार्डो के आर्थिक विचार
(Economic Thoughts of Ricardo)

रिकार्डो स्वतन्त्र व्यापार के भारी समर्थक थे। उनका निश्चित मत था कि स्वतन्त्र व्यापार से व्यक्तिगत हित के साथ-साथ सामाजिक हित में भी वृद्धि होती है। उनका विश्वास था कि विभिन्न देशों के मध्य होने वाले व्यापार में सन्तुलन स्वत: ही स्थापित हो जाता है। रिकार्डो के इस तर्क के कारण **जीड** ने उनके विदेशी व्यापार सम्बन्धी विचारों को 'विचार सन्तुलन के स्वत: का सिद्धान्त' (Theory of Automatic Regulation of the Balance of Trade) कहकर पुकारा है।

रिकार्डो ने स्वतन्त्र व्यापार के पक्ष में निम्न तर्क प्रस्तुत किये हैं—

(i) स्वतन्त्र व्यापार होने के कारण विदेशों से खाद्यान्न का आयात करके लगान दर, खाद्यान्न की कीमतें व मजदूरी को बढ़ने से तथा लाभ की घटती हुई प्रवृत्ति को रोका जा सकता है।

(ii) इससे **क्षेत्रीय श्रम-विभाजन** को प्रोत्साहन मिलेगा जिससे उद्योगों का विकास होगा, श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धि होगी और श्रम को उसकी योग्यतानुसार पुरस्कार मिलेगा।

(iii) इससे प्रत्येक राष्ट्र के **आयात-निर्यात** में सन्तुलन स्वत: ही स्थापित हो जाता है। जब किसी देश में आयात अधिक और निर्यात कम होंगे तो इस अन्तर को समाप्त करने के लिए उस देश का धन दूसरे देश को चला जाएगा। इससे इस देश में धन की कमी के कारण वस्तुओं की कीमतें गिर जाएँगी। इसके विपरीत जिस देश को धन प्राप्त हुआ, वहाँ मुद्रा स्फीति की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। फलत: कीमतें बढ़ने लगेंगी। परिणामस्वरूप प्रथम देश में कीमतें कम होने के कारण निर्यात व्यापार को प्रोत्साहन मिलेगा, जबकि दूसरे देश में आयात व्यापार को। अन्तत: दोनों देशों का विदेशी व्यापार सन्तुलित हो जाएगा। रिकार्डो के इन विचारों को **मुद्रा का परिणाम सिद्धान्त** (Quantity Theory of Money) कहा जाता है।

तुलनात्मक लागत का सिद्धान्त (Theory of Comparative Costs)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के तुलनात्मक लागत के सिद्धान्त की विवेचना प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **डेविड रिकार्डो** ने अपनी पुस्तक *'Principles of Political Economy and Taxation, 1817'* में की थी। इस सिद्धान्त को **तुलनात्मक लाभ का सिद्धान्त** (Theory of Comparative Advantage) भी कहा जाता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक देश को उत्पादन में विशिष्टता प्राप्त करनी चाहिए अर्थात् प्रत्येक देश उन वस्तुओं का उत्पादन एवं निर्यात करता है जिनके उत्पादन में उसकी तुलनात्मक लागत न्यूनतम होती है अर्थात् उसे अधिक लाभ होता है। इसके विपरीत, वह उन वस्तुओं का दूसरे देश से आयात करता है जिनके उत्पादन में उसकी तुलनात्मक लागत अधिक होती है अर्थात् हानि होती है। तुलनात्मक उत्पादन लागत पर आधारित होने के कारण ही इस सिद्धान्त को 'तुलनात्मक लागत सिद्धान्त' के नाम से पुकारा जाता है।

सिद्धान्त का कथन (Statement of the Theory)—प्रत्येक देश को किसी वस्तु के उत्पादन में जलवायु, खनिज पदार्थ एवं भौगोलिक स्थिति सम्बन्धी कुछ विशेष सुविधाएँ प्राप्त होती हैं जिनके कारण उन देशों की तुलना में कुछ वस्तुओं के उत्पादन में श्रेष्ठता पायी जाती है। इस कारण वे देश उन विशेष वस्तुओं के उत्पादन में विशिष्टता प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार प्रत्येक देश केवल उन वस्तुओं का उत्पादन करेगा जिनकी उत्पत्ति के लिए उसे वहाँ विशिष्ट सुविधाएँ प्राप्त हैं और उनका अपनी आवश्यकता से अधिक उत्पादन करेगा, ताकि उनकी अतिरिक्त उपज को बदले में देकर वह अन्य देशों से ऐसी वस्तुएँ प्राप्त करता है जिनके उत्पादन की कम सुविधाएँ उसे उपलब्ध हैं या जिन्हें वह बिलकुल ही उत्पन्न नहीं कर सकता।

TOUCH 'n PASS

इस सिद्धान्त की सारभूत बातें निम्नलिखित हैं—

1. तुलनात्मक लागत सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक देश उन वस्तुओं का ही उत्पादन अधिक मात्रा में करेगा जिसके लिए उपयुक्त जलवायु, प्राकृतिक साधन, तकनीक ज्ञान आदि सुविधाएँ विशेष रूप से उपलब्ध हो जाती हैं अर्थात् प्रत्येक देश उन वस्तुओं का उत्पादन एवं निर्यात करता है जिनके उत्पादन में उसकी तुलनात्मक लागत न्यूनतम होती है अर्थात् उसे लाभ होता है।
2. वस्तुओं की इस अधिक मात्रा को वह दूसरे देशों को उन वस्तुओं के विनिमय में दे देता है जिनका वह देश थोड़ा भी उत्पादन नहीं करता अथवा जिनके उत्पादन में उसे विशिष्टीकरण प्राप्त नहीं है। अन्य शब्दों में, वह उन वस्तुओं का दूसरे देश से आयात करता है जिनके उत्पादन में उसकी तुलनात्मक लागत अधिक होती है अर्थात् हानि होती है।
3. स्पष्टत: यह सिद्धान्त तुलनात्मक उत्पादन लागत पर आधारित है। इसी कारण से इस सिद्धान्त को तुलनात्मक लागत सिद्धान्त कहा जाता है।

स्पष्टत: इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक देश को उत्पादन में विशिष्टता प्राप्त करनी चाहिए अर्थात् उन वस्तुओं का निर्यात करना चाहिए जिनमें उनके तुलनात्मक लाभ अधिक हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार (Basis of International Trade)—इस सिद्धान्त के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार विभिन्न देशों में विभिन्न वस्तुओं की वास्तविक लागतों में पाया जाने वाला तुलनात्मक अन्तर है।

रिकार्डो का तुलनात्मक लागत सिद्धान्त श्रम के मूल्य सिद्धान्त पर आधारित है। यह सिद्धान्त स्पष्ट करता है कि वस्तुओं का मूल्य उसमें निहित श्रम से आँका जाता है और वस्तुओं का परस्पर विनिमय उन वस्तुओं के उत्पादन में लगे हुए श्रम के आधार पर होता है। जिन वस्तुओं का मूल्य समान होता है, उनको बनाने में श्रम की समान मात्रा लगती है। इस प्रकार रिकार्डो ने वास्तविक लागत को श्रम के समय (Labour Time) के रूप में व्यक्त किया। दूसरे शब्दों में, **किसी वस्तु का मूल्य उसकी श्रम लागत पर निर्भर करता है।**

लागतों में तुलनात्मक अन्तर (Comparative Difference in Costs)

आशय (Meaning)—लागतों में तुलनात्मक अन्तर उस समय होता है जब एक देश को दूसरे देश की तुलना में ही वस्तुओं के उत्पादन में तुलनात्मक श्रेष्ठता उपलब्ध हो लेकिन उत्पादन व्यय की दृष्टि से यह श्रेष्ठता एक वस्तु में कम और दूसरी वस्तु में अधिक हो सकती है।

उदाहरण (Example)—एक उदाहरण की सहायता से लागतों में तुलनात्मक अन्तर को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है—

सारणी 1–श्रम लागत संरचना

देश	उत्पादन की श्रम लागत		प्रत्येक देश में विनिमय अनुपात
	शराब	कपड़ा	
अमेरिका	80	90	80 : 90 अर्थात् 1 इकाई शराब = 0.80 इकाई कपड़ा
ब्राजील	120	100	120 : 100 अर्थात् 1 इकाई शराब = 1.2 इकाई कपड़ा

उपर्युक्त उदाहरण में ब्राजील की अपेक्षा अमेरिका में दोनों ही वस्तुओं का उत्पादन अधिक सस्ता है परन्तु अमेरिका में शराब के उत्पादन में अधिक तुलनात्मक लाभ है क्योंकि शराब में उसका लागत अन्तर (120 – 180) कपड़े में उसके लागत अन्तर (100 – 90) की अपेक्षा अधिक है अथवा लागत-अनुपात की दृष्टि से देखने पर $\frac{80}{120} < \frac{90}{100}$, बीच व्यापार नहीं होता तो अमेरिका और ब्राजील में वस्तुओं में निम्न विनिमय अनुपात प्रचलित होगा—

अमेरिका 1 इकाई शराब = 0.88 इकाई कपड़ा

ब्राजील 1 इकाई शराब = 1.2 इकाई कपड़ा

परन्तु यदि दोनों देशों के मध्य व्यापार होने लगे और अमेरिका शराब के उत्पादन में तथा ब्राजील कपड़े के उत्पादन में विशिष्टता प्राप्त कर ले और एक-दूसरे के साथ व्यापार करने में लगें तो इन दोनों देशों को लाभ होगा। स्पष्टत: अमेरिका के लिए यह लाभदायक होगा कि वह ब्राजील को शराब भेजे क्योंकि वहाँ शराब की 1 इकाई के बदले 1.2 इकाई कपड़ा मिल सकता है,

TOUCH 'n PASS

जबकि उस देश में 1 इकाई शराब के बदले में केवल 0.88 इकाई कपड़ा मिलता है। दूसर ओर, ब्राजील कपड़े के उत्पादन में विशिष्टीकरण करके और कपड़े का अमेरिकी शराब से विनिमय करके अपेक्षाकृत कम व्यय पर शराब प्राप्त कर सकता है।

लाभ (Advantage)—यदि सम्पूर्ण उत्पादन की ओर ध्यान दिया जाये तो भी दोनों देशों के लिए किसी एक वस्तु के उत्पादन में विशिष्टता प्राप्त करना अधिक लाभदायक होगा जैसा कि निम्न विवरण से स्पष्ट है—

(अ) **विशिष्टता के अभाव में** (In Absence of Specialisation)—मान लीजिए, अमेरिका और ब्राजील दोनों ही अलग-अलग कपड़ा और शराब का उत्पादन कर रहे हों तो ऐसी स्थिति में—

अमेरिका 1 इकाई शराब + 1 इकाई कपड़ा = 170 श्रमिक
ब्राजील 1 इकाई शराब + 1 इकाई कपड़ा = 220 श्रमिक
2 इकाई शराब + 2 इकाई कपड़ा = 390 श्रमिक

(ब) **विशिष्टता की स्थिति में** (In Case of Specialisation)—अब मान लीजिए कि अमेरिका शराब में और ब्राजील कपड़े के उत्पादन में विशिष्टता प्राप्त कर लेते हैं। ऐसी स्थिति में—

अमेरिका द्वारा 2 इकाई शराब उत्पादन करने का व्यय = 160 श्रमिक
ब्राजील द्वारा 2 इकाई कपड़ा उत्पादन करने का व्यय = 200 श्रमिक
अर्थात् 2 इकाई शराब + 2 इकाई कपड़े का उत्पादन व्यय = 360 श्रमिक

पहले 2 इकाई शराब और 2 इकाई कपड़े का उत्पादन व्यय 390 श्रमिक था। जब दोनों ने अलग-अलग वस्तुओं का उत्पादन करना आरम्भ कर दिया तो उत्पादन 360 श्रमिक हो गया। इससे एक ही मात्रा में प्राप्त होने वाली वस्तुओं के उत्पादन-व्यय में 30 श्रमिक की बचत हुई। अत: स्पष्ट है कि यद्यपि दोनों में से एक देश को दूसरे देश की अपेक्षा दोनों वस्तुओं के उत्पादन में अधिक दक्षता प्राप्त है परन्तु लागत का अनुपात भिन्न-भिन्न है तो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार द्वारा उस वस्तु को उत्पादित करके भेजने में अधिक लाभ होगा जिससे उत्पादन में अधिक लाभप्रद होगा यदि कुशल उसमें विशिष्टीकरण प्राप्त करे जिसमें उसकी कुशलता अधिकतम हो तथा अकुशल उसमें विशिष्टीकरण प्राप्त करे जिसमें अकुशलता न्यूनतम हो।"

सारांश (Summary)—संक्षेप में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के तुलनात्मक लागत सिद्धान्त की सारभूत बातें निम्न प्रकार हैं—

1. प्रत्येक देश के लिए उसी वस्तु के उत्पादन में विशिष्टता प्राप्त करना लाभप्रद है जिसके उत्पादन में उसे विशेष सुविधाएँ प्राप्त हैं। 2. कोई भी देश उन्हीं वस्तुओं को बनाता व निर्यात करता है जिनके निर्माण में उसे लागत-लाभ मिलता है और उस वस्तु का आयात करता है जिसकी प्राप्ति में उसे लागत-लाभ मिलता है। 3. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तभी सम्भव होता है जब दोनों देशों की उत्पादन लागतों में अन्तर होता है चाहे यह अन्तर निरपेक्ष हो अथवा तुलनात्मक। यदि उत्पादन लागत में समान अन्तर है तो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सम्भव नहीं होता है। 4. दो देशों के बीच वस्तुओं की विनिमय दर की सीमाएँ दोनों ही देशों की आन्तरिक विनिमय दरों द्वारा निर्धारित होती हैं। 5. दो देशों के बीच वास्तविक विनिमय दर पारस्परिक माँग की लोच द्वारा निर्धारित होती है।

सिद्धान्त की मान्यताएँ (Assumptions of Theory)

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रतिष्ठित सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है—

1. केवल श्रम उत्पादन का साधन है और उत्पादन लागत में केवल श्रमिक व्यय ही शामिल होते हैं। 2. सभी श्रमिक एक ही प्रकार के हैं। 3. उत्पादन में उत्पत्ति समता नियम लागू होता है अर्थात् दोनों वस्तुओं के लागत अनुपातों को स्थिर समझा जाता है। 4. उत्पादन के साधन देश के भीतर पूर्णतया गतिशील हैं परन्तु दो देशों के बीच पूर्णतया गतिहीन है। 5. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में किसी प्रकार की रुकावट नहीं है। 6. यह सिद्धान्त दो देशों के बीच दो वस्तुओं के व्यापार के आधार पर ही क्रियाशील होता है। 7. परिवहन लागत पर ध्यान नहीं दिया जाता है। 8. दोनों देशों में स्वर्णमान विद्यमान है और मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त को कार्यशील माना गया है। 9. दोनों देश स्थायी सन्तुलन की ओर सदैव प्रयत्नशील माने जाते हैं और व्यापार-चक्र के समान घटनाओं में बाधा नहीं पड़ती। 10. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार समान आर्थिक शक्ति वाले दो देशों में तथा आर्थिक महत्त्व वाली दो वस्तुओं में होता है। 11. सभी उत्पादन के साधन दोनों देशों में पूर्णतया रोजगार की स्थिति में है।

तुलनात्मक लागत सिद्धान्त की आलोचनाएँ (Criticisms of Comparative Cost Theory)

बर्टिल ओहलिन और **ग्रेहम** ने इस सिद्धान्त की कटु आलोचनाएँ की हैं। इस सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएँ निम्न प्रकार हैं—

1. **श्रम लागत की मान्यता** (Assumption of Cost of Labour)—यह सिद्धान्त उत्पादन व्यय में केवल श्रम को सम्मिलित करना है जो उचित नहीं है क्योंकि उत्पादन के क्षेत्र में श्रम के अलावा भूमि, पूँजी और व्यवस्था का भी महत्त्व होता है।

2. **समता नियम की मान्यता** (Assumption of Law of Constant)—यह सिद्धान्त इस बात की कल्पना कर लेता है है कि उत्पादन 'उत्पत्ति समता नियम' के अन्तर्गत हो रहा है जो कि अव्यावहारिक है। व्यवहार में अधिकतर उत्पादन के क्षेत्र में उत्पत्ति वृद्धि नियम और उत्पत्ति ह्रास नियम भी कार्यान्वित होता है।
3. **यातायात व्यय** (Transport Cost)—इस सिद्धान्त में यातायात व्यय को छोड़ दिया गया है जोकि अनुचित है क्योंकि अनेक क्षेत्रों में उत्पादन व्यय की अपेक्षा यातायात व्यय ही अधिक रहता है।
4. **साधनों की गतिशीलता** (Mobility of Factors)—इस सिद्धान्त की यह मान्यता भी गलत है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में किसी भी प्रकार की बाधा नहीं होती। व्यवहार में पूर्णतया स्वतन्त्र व्यापार की स्थिति आज भी नहीं पायी जाती है।
5. **एकपक्षीय सिद्धान्त** (One-sided Principle)—यह सिद्धान्त केवल पूर्ति पक्ष ही विचार करता है, माग पक्ष पर नहीं। यह हमें बताता है कि एक देश कौन-सी वस्तुएँ बेचेगा अथवा खरीदेगा परन्तु यह नहीं बताता कि इन वस्तुओं में व्यापार किन कीमतों में किया जाएगा।
6. **लागतों को अत्यधिक महत्त्व** (Undue Importance of Costs)—इस सिद्धान्त से लागतों को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया गया है जो कि उचित नहीं है। वास्तव में दो देशों के मध्य व्यापार लागत भिन्नताओं पर निर्भर नहीं करता क्योंकि आयातकर्त्ता और निर्यातकर्त्ता देश लागतों की इतनी अधिक चिन्ता नहीं करते जितनी कि वे उन कीमतों की करते हैं जो उनके द्वारा चुकायी या प्राप्त की जाती है। इस प्रकार वस्तुओं की कीमतों का अन्तर ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का आधारभूत कारण है।
7. **स्वतन्त्र व्यापार नीति का अभाव** (Absence of Free Trade Policy)—यह सिद्धान्त स्वतन्त्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रचलन की मान्यता पर आधारित है परन्तु आजकल विश्व के लगभग सभी देश राजनीतिक, सैनिक सुरक्षा अथवा आर्थिक या अन्य कारणों से वस्तुओं के आयात-निर्यात पर नियन्त्रण लगाये हुए हैं। वस्तुओं के आयात-निर्यात पर ऐसे नियन्त्रण के कारण तुलनात्मक लागत सिद्धान्त की क्रियाशीलता समाप्त हो जाती है।
8. **अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्था के लिए अनुपयुक्त** (Unsuitable for Under-developed Economies)—इसका एक मुख्य कारण तो यह है कि यह सिद्धान्त कई मान्यताओं, जैसे—पूर्ण रोजगार, पूर्ण प्रतियोगिता, समान प्रतिफल के नियम आदि पर आधारित है। अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में ये मान्यताएँ लागू नहीं होतीं। दूसरा कारण यह है कि यह सिद्धान्त स्वतन्त्र व्यापार की नीति का समर्थक है परन्तु अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में स्वतन्त्र व्यापार के स्थान पर संरक्षण की नीति अपनायी जाती है।

निष्कर्ष (Conclusion)—अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रतिष्ठित सिद्धान्त अवास्तविक मान्यताओं के आधार पर प्रतिपादित किया गया है। फलत: आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने इसकी कटु आलोचना की है परन्तु इसका यह आशय नहीं है कि यह सिद्धान्त बिलकुल ही दोषपूर्ण है और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सम्बन्धी समस्याओं को हल करने में सहायता नहीं पहुँचाता। वस्तुत: इस सिद्धान्त ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सम्बन्धी सूत्रबद्ध सिद्धान्त प्रस्तुत किया है जो अनेक समस्याओं की व्याख्या करने के लिए एक महत्त्वपूर्ण यन्त्र साबित हुआ है।

मुद्रा का सिद्धान्त (Theory of Money)

रिकार्डो के जमाने में स्वर्णमान प्रचलित था यद्यपि कागजी मुद्रा का भी प्रयोग होता था जिसके प्रबन्धकों को उसके विज्ञान का सही पता नहीं था। परिणामस्वरूप 1797 में इंग्लैण्ड में एक मौद्रिक संकट पैदा हो गया था।

रिकार्डो ने 1797 का इंग्लैण्ड का पत्र-मुद्रा संकट स्वयं देख था। उसने यह मालूम किया था कि नोटों का मूल्य गिर रहा है। नोटों के मूल्य में अन्तत: 30% कमी हो जाने के परिणामस्वरूप खाद्यान्न तथा अन्य वस्तुओं की कीमतों में भारी वृद्धि हो गयी। रिकार्डो ने इसका कारण मालूम करना चाहा और उनका वर्णन करते हुए 1809 में एक पुस्तक लिखी थी जिसका नाम था—**'सर्राफा की ऊँची कीमत बैंक नोटों की घिसावट का एक सबूत'** (The High Price of Bullion—a Proof of the Depreciation of Bank Notes)। इस पुस्तक में रिकार्डो इस परिणाम पर पहुँचे कि बैंक नोटों का मूल्य ह्रास का केवल एक ही कारण है अर्थात् पत्र-मुद्रा की अत्यधिक पूर्ति। उसने बताया कि बैंक नोट के मूल्य में ह्रास आने का एक परिणाम यह हुआ कि स्वर्ण का अत्यधिक निर्यात होने लगा है। रिकार्डो ने पत्र-मुद्रा के मूल्य में पुन: वृद्धि तथा स्वर्ण व चाँदी की कीमतों में होने वाली गिरावट को रोकने के लिए बैंक ऑफ इंग्लैण्ड (Bank of England) को एक निश्चित समय तक नोटों के निर्गमन को स्थगित करने का सुझाव दिया। रिकार्डो के शब्दों में, "हमारी करेन्सी (Currency) के समस्त दोषों के निवारण हेतु जो उपचार मैंने प्रस्तावित किये

हैं, वह यह है कि बैंक को क्रमश: चलन में नोटों की मात्रा घटा देना चाहिए, जब तक कि उनका मूल्य उन सिक्कों के बराबर न हो जाये जिनका कि वे प्रतिनिधित्व करते हैं या दूसरे शब्दों में जब तक कि स्वर्ण रजत की कीमतें गिरकर टकसाली कीमत के बराबर न हो जाएँ।'' इन शब्दों में मुद्रा परिमाण सिद्धान्त (Quantity Theory of Money) का प्रारिम्भक रूप है।

यह स्मरणीय है कि रिकार्डो पत्र-मुद्रा के दोषों का निवारण चाहते थे परन्तु उसे समाप्त करने के पक्ष में नहीं थे। वस्तुत: रिकार्डो ने कागजी मुद्रा को बहुत लाभकारी एवं आवश्यक बताया। उन्हीं के शब्दों में, ''एक सुनियन्त्रित पत्र-मुद्रा वाणिज्य में महान सुधार हैं तथा मुझे ऐसे किसी भी पक्षपात पर दु:ख होना चाहिए जो हमें काम उपयोगी प्रणाली को अपनाने के लिए प्रेरित करता है।'' पत्र-मुद्रा तो प्रगति के चिह्न हैं और इनसे अनेक लाभ मिलते हैं, अत: इन पर नियन्त्रण ही रखना उचित है।

रिकार्डो **परिवर्तनीय पत्र-मुद्रा** के पक्षपाती थे। रिकार्डो का मत था कि जनता पर विश्वास बनाये रखने तथा पत्र-मुद्रा के मूल्य को स्थिर रखने हेतु यह जरूरी है कि बैंक के द्वारा चलन में रहने वाली पत्र-मुद्रा के पीछे स्वर्ण, चाँदी का धात्विक कोष रखा जाये।

आर्थिक विकास का सिद्धान्त (Theory of Economic Growth)

यद्यपि रिकार्डो ने आर्थिक विकास का कोई स्वतन्त्र क्रमबद्ध सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किया है परन्तु फिर भी उनके विकास सम्बन्धी विचार उनकी प्रसिद्ध पुस्तक '**राजनीतिक अर्थशास्त्र व करारोपण के सिद्धान्त**' तथा अनेक पत्रों में बिखरे हुए हैं जिन्हें रिकार्डो ने दूसरे अर्थशास्त्रियों को लिखा था। हम रिकार्डो के इन बिखरे हुए विचारों को एकत्र करके एक सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न करेंगे। **मेयर** और **बाल्डविन** के अनुसार, ''एडम स्मिथ जो कुछ विकास के सिद्धान्त में ठीक से समझ नहीं पाया, उसी को रिकार्डो ने ठीक से समझाया।''

रिकार्डो का विकास सिद्धान्त यह बताने का प्रयत्न करता है कि एक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में क्यों और किस प्रकार आर्थिक विकास होता है। रिकार्डो के विश्लेषण पर एडम स्मिथ के पूँजी संचयन दृष्टिकोण और माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त का गहरा प्रभाव पड़ा? किन्तु रिकार्डो ने इन विचारों को अपने उत्पादन द्वारा नियमन एवं लगान तथा मजदूरी सम्बन्धी सिद्धान्तों से सम्बन्धित किया और फिर इनकी मिश्रित सहायता से पूँजीवादी प्रणाली के विकास की प्रक्रिया को समझाया।

रिकार्डो का विकास सिद्धान्त यह बताने का प्रयास करता है कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में क्यों और किस प्रकार आर्थिक विकास होता है।

रिकार्डो ने आर्थिक विकास की निम्नलिखित अवस्थाएँ बतायी हैं—

आर्थिक विकास की **पहली अवस्था** में (अ) भूमिपतियों को लगान नहीं मिलता; (ब) श्रमिकों का न्यूनतम मजदूरी मिलती है और (स) पूँजीपतियों को अधिक लाभ प्राप्त होते हैं।

आर्थिक विकास की **दूसरी अवस्था** में (अ) भूमिपतियों को पहली बार लगान मिलने लगता है; (ब) मजदूरों की मजदूरी में वृद्धि हो जाती है; (स) भूमिपतियों के लाभ कम हो जाते हैं।

विकास की **तीसरी अवस्था** में (अ) भूमिपतियों के लगान बढ़ते रहते हैं; (ब) मजदूरों की मजदूरी गिर जाती है; (स) पूँजीपतियों के लाभ पूर्ववत् रहते हैं या बढ़ जाते हैं।

चौथी अवस्था जिसे रिकार्डो ने **दीर्घकालीन स्थिर दशा** कहा है, की विशेषताएँ इस प्रकार हैं—(अ) विकास की दर शून्य होगी। (ब) लाभ शून्य या लगभग शून्य के बराबर होगा। (स) मजदूरी जीवन-निर्वाह स्तर पर स्थिर हो जाएगी। (द) लगान की दर ऊँची होगी।

आलोचनाएँ (Criticisms)—यद्यपि रिकार्डो का आर्थिक विकास का सिद्धान्त '**प्रावैगिक विकास का सिद्धान्त**' (Dynamic Aggregative Theory of Development) का एक अच्छा उदाहरण है परन्तु इसमें निम्न कमियाँ हैं—

(i) रिकार्डो ने प्राविधिक प्रगति की सम्भावनाओं का समुचित अनुमान नहीं लगाया।

(ii) रिकार्डो का सिद्धान्त माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त तथा उत्पादन ह्रास नियम पर आधारित है परन्तु ये दोनों ही सिद्धान्त त्रुटिपूर्ण सिद्धान्त हो चुके हैं।

(iii) रिकार्डो का विश्लेषण अवास्तविक मान्यता पर आधारित है।

करारोपण सम्बन्धी विचार (Views of Taxation)

रिकार्डो ने यद्यपि अपनी पुस्तक में विभिन्न स्थानों पर कराधान का विवेचन किया है किन्तु वह इस विषय पर अपने विचारों को अधिक विकसित नहीं कर सके। करारोपण के सम्बन्ध में रिकार्डो ने विचार संक्षेप में इस प्रकार हैं—(अ) कर मुख्य रूप से लगान पर होना चाहिए क्योंकि लगान ही वास्तविक बचत है और प्राकृतिक नि:शुल्क उपहार है। (ब) कर पूँजी पर नहीं, **आय पर**

लगाना चाहिए क्योंकि यदि पूँजी पर कर लगाया जाएगा तो देश के उद्योग और व्यापार पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। (स) **मजदूरी को उन्होंने कर से मुक्त** रखने के लिए कहा क्योंकि मजदूरी जीवन निर्वाह के बराबर होती है और यदि उस पर कर लगाया जाएगा तो मजदूरी की निर्धनता बढ़ेगी। (द) लाभ पर भी एक सीमा तक कर लगाया जा सकता है।

प्र.5. "माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त की इतनी आलोचनाएँ की गई हैं कि वह इसकी यथार्थता को सिद्ध कर देती है।" (क्लार्क) दिये गये कथन की विवेचना करते हुए माल्थस के जनसंख्या सम्बन्धी विचारों की व्याख्या कीजिए।
"The Malthusian law of population has been so frequently refuted as to prove its validity."—Clark. Explain this statement and examine the Malthusian concept of population.

उत्तर

माल्थस के आर्थिक विचार
(Economic Thoughts of Malthus)

माल्थस ने अपनी पुस्तक में जनसंख्या सम्बन्धी विचार दिये हैं परन्तु इसके अतिरिक्त अन्य अनेक बातों पर भी अपने मत प्रकट किये हैं। परन्तु ये सभी विचार यत्र-तत्र बिखरे हुए हैं। इन विभिन्न बिखरे हुए विचारों को एकत्र करके हम माल्थस के अनेक आर्थिक मामलों पर विचार मालूम कर सकते हैं। माल्थस के आर्थिक विचारों को निम्नलिखित वर्गों के अन्तर्गत रखा जा सकता है—

1. जनसंख्या का सिद्धान्त (Theory of Population),
2. मूल्य का सिद्धान्त (Theory of Value),
3. वितरण का सिद्धान्त (Theory of Distribution)—
   (अ) लगान का सिद्धान्त (Theory of Rent), (ब) मजदूरी का सिद्धान्त (Theory of Wage),
   (स) लाभ का सिद्धान्त (Theory of Profit) एवं
4. अति उत्पादन का सिद्धान्त (Theory of Over-production or Glut)।

1. जनसंख्या का सिद्धान्त (Theory of Population)

माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त की मुख्य बातें—माल्थस ने अपने अनुभव और निरीक्षण के आधार पर जो निष्कर्ष निकाले हैं, वे **'माल्थस के जनसंख्या के सिद्धान्त'** नाम से जाने जाते हैं।

माल्थस के सिद्धान्त की मान्यताएँ (Assumptions of the Theory)—माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है—

1. मानव की काम-वासना यथास्थिर है और इसकी सन्तुष्टि के परिणामस्वरूप सन्तानोत्पत्ति आवश्यक है अर्थात् **काम-वासना और सन्तानोत्पत्ति में प्रत्यक्ष सम्बन्ध है।**
2. **आर्थिक सम्पन्नता और सन्तानोत्पत्ति** के मध्य सीधा और घनिष्ठ सम्बन्ध है अर्थात् आर्थिक सम्पन्नता की प्रत्येक वृद्धि सन्तान उत्पादन और जनसंख्या की वृद्धि को प्रोत्साहित करती है।
3. मनुष्य के जीवित रहने के लिए भोजन आवश्यक है।
4. कृषि में उत्पत्ति ह्रास नियम लागू होता है।

उपरोक्त मान्यताओं के आधार पर माल्थस ने जनसंख्या सिद्धान्त को इन शब्दों में व्यक्त किया है, **"उत्पादन की विधियों की एक दी हुई स्थिति के अन्तर्गत जनसंख्या जीवन निर्वाह के साधनों से अधिक तीव्र गति से बढ़ने की प्रवृत्ति दिखाता है।"**

माल्थस द्वारा निकाले गये निष्कर्ष (Main Ingredients of Malthus Theory)—उपरोक्त मान्यताओं के आधार पर माल्थस ने निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले—

1. **खाद्य सामग्री में वृद्धि** (Increase in Food Supply)—किसी देश की जनसंख्या की सीमा वहाँ पर उपलब्ध खाद्य सामग्री यानी जीवन-निर्वाह के साधन द्वारा निर्धारित होती है। यदि खाद्य सामग्री बढ़ती है तो आबादी भी बढ़ेगी यदि उस पर शक्तिशाली अंकुश नहीं रखा गया। **माल्थस** के शब्दों में, "अतएव यह उचित रूप से प्रतिपादित किया जा सकता है कि पृथ्वी की वर्तमान औसत व्यवस्था पर विचार करते हुए मानव उद्योग के लिए अत्यन्त अनुकूल परिस्थितियों में भी जीवन-निर्वाह के साधनों में अंकगणित या साध्य श्रेणी से अधिक तीव्रता से वृद्धि सम्भव नहीं होगा।" अर्थात् **खाद्य पदार्थों में वृद्धि अंकगणितीय क्रम 1 : 2 : 3 : 4 : 5 : 6 आदि से होती है।** इसका कारण उन्होंने कृषि के क्षेत्र में उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता बताया है। उन्हीं के शब्दों में, "यह उनको अवश्य मालूम होगा जिनको कृषि सम्बन्धी विषय

TOUCH 'n' PASS

में थोड़ी-सी भी जानकारी है कि जिस अनुपात में कृषि बढ़ायी जाती है और जो बढ़ोत्तरी पहली औसत उपज में प्रतिवर्ष होता है, धीरे-धीरे क्रम से घटती चली जाती है।''

2. **जनसंख्या में वृद्धि** (Increase of Population)—माल्थस ने बताया कि मानव में अत्यन्त तीव्र प्रजननात्मक (Reproductive) प्रेरणा पायी जाती है और उसकी सन्तानोत्पत्ति की शक्ति असीम है। इसलिए यदि इस प्रवृत्ति में किसी प्रकार की रुकावट न हुई तो किसी देश की जनसंख्या वहाँ के खाद्य पदार्थों की पूर्ति की तुलना में अधिक तेजी के साथ बढ़ने की प्रवृत्ति रखती है। माल्थस ने कहा, जनसंख्या ज्यामितिक या **गुणोत्तर श्रेणी** (Geometrical Progression) अर्थात् 1 : 2 : 4 : 8 : 16 : 32 के हिसाब से बढ़ती है। स्पष्ट है कि प्रत्येक स्तर पर वृद्धि गुणन के अनुसार होती है।
इस प्रकार माल्थस के अनुसार खाद्य सामग्री और जनसंख्या की वृद्धि इस प्रकार होती है—
जनसंख्या 1, 2, 4, 8, 16, 32
खाद्य सामग्री 1, 2, 3, 4, 5, 6
माल्थस के शब्दों में, ''प्रकृति के द्वारा मानवीय आधार धीरे से अंकगणितीय क्रम में बढ़ता है और मनुष्य स्वयं तेजी से गुणोत्तर अनुपात में बढ़ता है। यदि अन्य बातें समान रहें तो जनसंख्या 25 वर्षों में दुगुनी हो जाएगी। खाद्य सामग्री में वृद्धि दर और जनसंख्या में वृद्धि दर को चित्र 1 और 2 के द्वारा स्पष्ट किया गया है।''

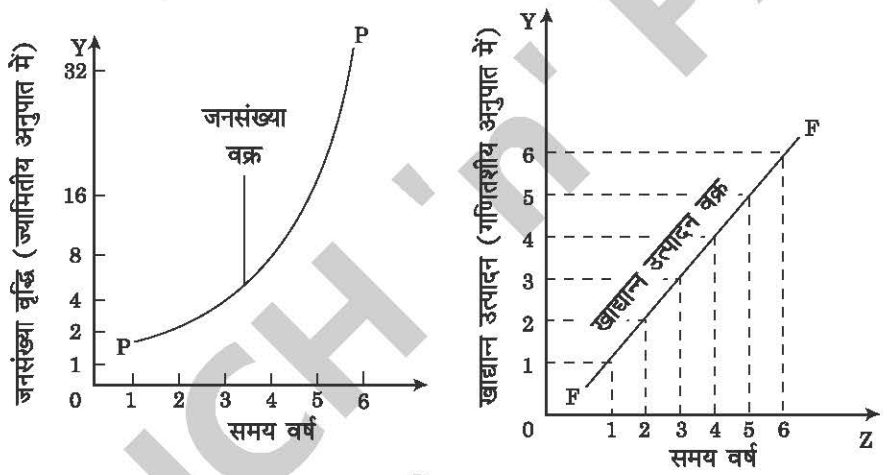

चित्र : 1

3. **जनसंख्या और खाद्य सामग्री में असन्तुलन** (Disequilibrium between Population and Food Supply)—जनसंख्या में गुणोत्तर दर तथा खाद्य सामग्री में समानान्तर दर के अनुसार वृद्धि होने से दोनों में असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है। माल्थस ने यह निष्कर्ष निकाला कि 200 वर्षों में जनसंख्या तथा खाद्य सामग्री की पूर्ति के मध्य 9 : 256 का अनुपात होगा, जबकि 300 वर्षों में यह अन्तर बढ़कर 4,096 : 13 के अनुपात में हो जाएगा। 2,000 वर्षों में तो दोनों के मध्य इतना अधिक अन्तर एवं असन्तुलन हो जाएगा जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। इस प्रकार माल्थस ने जनसंख्या के सम्बन्ध में एक निराशामय दृष्टिकोण विश्व के सामने रखा कि यदि जनसंख्या को स्वतन्त्रतापूर्वक बढ़ने दिया जाये तो स्वाभाविक परिणाम यह निकलता है कि जनसंख्या खाद्य सामग्री की पूर्ति की तुलना में अधिक तेजी के साथ बढ़ जाती है जिससे संसार में भुखमरी, कष्ट और निर्धनता का साम्राज्य स्थापित हो जाता है। **माल्थस** का कहना है कि ''प्रकृति की मेज सीमित अतिथियों के लिए ही लगी है इसलिए जो बिना निमन्त्रण के आयेगा, उसे अवश्य भूखा मरना पड़ेगा।'' इसमें सत्यता का अंश दृष्टिगोचर होता है क्योंकि प्रत्येक बच्चा जो जन्म लेता है, उसको जीवन-निर्वाह करने के लिए कुछ चाहिए। यदि उसके जीवन-निर्वाह के साधन नहीं हैं तो उसको मरना ही होगा।

माल्थस के शब्दों में, **''प्रकृति के द्वारा मानवीय आहार धीरे-धीरे अंकगणितीय क्रम में बढ़ता जाता है और मनुष्य स्वयं तेजी से गुणोत्तर अनुपात में बढ़ता है, यदि अन्य बातें समान रहें।''**

TOUCH 'n PASS

माल्थस के सुझाव (Suggestions of Malthus)—जनसंख्या व खाद्य सामग्री की पूर्ति की वृद्धि की यह गति भूतकाल में ऐसी ही रही है और भविष्य में भी ऐसी ही बनी रहेगी परन्तु जनसंख्या की तीव्र गति की वृद्धि को दो तरीकों से रोका जा सकता है—प्राकृतिक व कृत्रिम। **माल्थस** के शब्दों में, "जो निरोध जनसंख्या को जीवन-निर्वाह के साधनों के स्तर तक सीमित रखते हैं, वे प्राकृतिक व कृत्रिम हैं।"

(अ) **कृत्रिम अवरोध या प्रतिबन्धक निरोध** (Preventive Checks)—कृत्रिम अथवा प्रतिबन्धक निरोध के अन्तर्गत वे सारे उपाय आते हैं जिनका प्रयोग मनुष्य अपने विवेक से जन्म दर को रोकने के लिए करता है, जैसे—बड़ी उम्र में विवाह, संयम का जीवन, ब्रह्मचर्य, विभिन्न प्रकार के सन्तति निग्रह (Birth Control) के साधनों का प्रयोग आदि।

इस प्रकार कृत्रिम अवरोध के अन्तर्गत दो प्रकार के उपाय आते हैं—

(i) नैतिक प्रतिबन्ध अर्थात् संयम, ब्रह्मचर्य आदि।

(ii) कृत्रिम साधन, जैसे—सन्तति निग्रह का प्रयोग। इसे माल्थस ने पाप (Vices) कहा है।

(ब) **प्राकृतिक अवरोध या नैसर्गिक निरोध** (Positive Checks)—इस प्रकार के प्रतिबन्ध स्वयं प्रकृति द्वारा बनाये जाते हैं। इन प्रतिरोधों द्वारा समाज में जनसंख्या स्वत: कम हो जाती है। **अकाल, महामारी, भूकम्प, बाढ़ आदि प्राकृतिक आपत्तियाँ, दैवी प्रकोप इसके अन्तर्गत आते हैं।** माल्थस ने इन्हें 'कष्ट' (Miseries) की संज्ञा दी है। नैसर्गिक निरोध के द्वारा मृत्यु-दर में वृद्धि होकर जनसंख्या में कमी होती है और जनसंख्या का खाद्यान्न के साथ सन्तुलन स्थापित हो जाता है परन्तु यह सन्तुलन अल्पकालीन होता है क्योंकि मनुष्य के बढ़ने की स्वाभाविक इच्छा शीघ्र कार्य करने लगती है और जनसंख्या पुन: बढ़कर खाद्यान्न की पूर्ति से अधिक हो जाती है। प्राकृतिक प्रतिबन्ध पुन: क्रियाशील हो जाते हैं, फलत: पुन: जनसंख्या का खाद्यान्न के साथ सन्तुलन स्थापित हो जाता है। घटनाओं का यह कुचक्र घटता जाता है जिसमें फँसकर जनसंख्या कष्ट पाती रहती है। इस कुचक्र को **माल्थूसियन चक्र** (Malthusian Cycle) कहते हैं। (चित्र संख्या 2)।

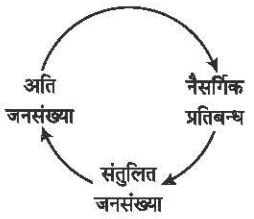

(स) माल्थस का विश्वास है कि नैसर्गिक प्रतिबन्ध जनसंख्या के लिए अधिक कष्टदायक होते हैं परन्तु यदि मनुष्य स्वयं प्रतिबन्धक उपायों के द्वारा जनसंख्या को रोकने का प्रयत्न नहीं करता तो ये प्राकृतिक प्रतिबन्ध अवश्य क्रियाशील होंगे। इसीलिए **माल्थस** ने सुझाव दिया कि मानव के कष्टों को दूर करने के लिए जनसंख्या पर कृत्रिम प्रतिबन्ध लगाना चाहिए।

(द) माल्थस का कहना है कि यदि किसी देश में नैसर्गिक प्रतिबन्ध क्रियाशील हो जाते हैं तो यह इस बात का प्रमाण है कि उस देश में जनसंख्या आवश्यकता से अधिक है। अत: प्राकृतिक शक्तियाँ जनसंख्या को तेजी के साथ बढ़ने से रोक रही है।

संक्षेप में **माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त में तीन बातें** प्रकट होती हैं—

(i) प्रत्येक देश की जनसंख्या खाद्य पदार्थों की पूर्ति की तुलना में अधिक तेजी के साथ बढ़ती है।

(ii) यदि मानव कृत्रिम उपायों द्वारा जन्म दर को कम नहीं करता तो प्रकृति मृत्यु दर बढ़ाकर जनसंख्या पर रोक लगाती है।

(iii) नैसर्गिक प्रतिबन्ध कष्टदायक होते हैं, इसलिए मानव को प्रतिबन्ध अवरोध अपनाना चाहिए।

माल्थस के सिद्धान्त का चार्ट द्वारा स्पष्टीकरण—माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त को निम्न चार्ट द्वारा स्पष्ट किया गया है—

माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त
(Malthusian Theory of Population)

जनसंख्या की वृद्धि ज्यामितिक दर से	खाद्य सामग्री की वृद्धि गणितीय दर से
(Population grows in Geometrical Progression)	(Food Supply grows Arithmetical Progression)
1 : 2 : 4 : 8 : 16 : 32 : 64	1 : 2 : 4 : 5 : 6 : 7 : 8
वृद्धि की न्यूनतम दर	वृद्धि की अधिकतम दर

TOUCH 'n' PASS

जनसंख्या एवं खाद्य सामग्री में असन्तुलन है अतएव इस असन्तुलन को दूर करने के लिए जनसंख्या का निरोध

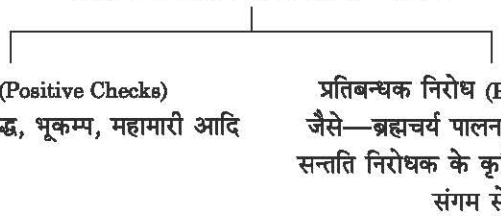

माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त की आलोचनाएँ
(Criticisms of the Malthusian Theory of Population)

माल्थस के जनसंख्या पर सिद्धान्त की तीव्र आलोचनाएँ हुई हैं। आलोचकों में **गाडविन** (Godwin), **केनन** (Cannan), **निकलसन** (Nicholson), **मॉम्बर्ट** (Mombert), **ओपनहेम** (Openheim), **इंग्राहम** (Ingraham) आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

माल्थस के सिद्धान्त की प्रमुख आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं—

1. **सिद्धान्त की मान्यताएँ ठीक नहीं हैं** (Assumptions of the Theory are not correct)—माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है, जैसे—
   (अ) माल्थस का यह विचार ठीक नहीं है कि मानव की काम-वासना यथास्थिर रहती है क्योंकि जीवन स्तर उठ जाने पर जब व्यक्ति के पास मनोरंजन के विविध साधन हो जाते हैं तो प्राय: उसकी काम-वासना कम हो जाती है।
   (ब) काम-वासना की सन्तुष्टि और सन्तानोत्पत्ति में कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता क्योंकि सन्तानोत्पत्ति की इच्छा सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक आदि विचारों व परिस्थितियों से प्रभावित होती है परन्तु कामेच्छा जन्मजात होती है जिसे सामान्यत: किसी भी प्रकार समाप्त नहीं किया जा सकता। अत: यह आवश्यक नहीं कि कामेच्छा के साथ-साथ सन्तानोत्पत्ति की इच्छा भी हो।
   (स) जीवन-स्तर ऊँचा होने के साथ सन्तानोत्पत्ति की इच्छा नहीं बढ़ती अर्थात् आर्थिक सम्पन्नता और सन्तानोत्पत्ति के मध्य प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता क्योंकि जैसे-जैसे मनुष्य की आय बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे उसमें सन्तानोत्पत्ति की इच्छा कम होती जाती है और वह अपना जीवन-स्तर बढ़ाने के लिए देरी से विवाह करने अथवा विवाहोपरान्त कम बच्चे उत्पन्न करने के लिए प्रेरित होता है। इंग्लैण्ड और अमेरिका जैसे विकसित देशों में धनोत्पादन तो अत्यधिक हो रहा है किन्तु जनसंख्या में कोई उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हो रही है।
   (द) कृषि में उत्पत्ति-ह्रास नियम लागू होने की जो कल्पना है, वह गलत है क्योंकि यह नियम कृषि मे उसी समय क्रियाशील होता है, जबकि कृषि पद्धति में कोई सुधार नहीं किये जाते। वास्तव में, कृषि में वैधानिक विधियों के प्रयोग से क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम की कार्यशीलता को स्थगित किया जा सकता है। रासायनिक खाद, सिंचाई के उत्तम साधन, श्रम-विभाजन, परिवहन में सुधार, साधन यन्त्रीकरण आदि ने कृषि-उत्पादन में कई गुना वृद्धि को सम्भव बना दिया है। मनुष्य द्वारा कृषि-क्षेत्र में की गयी इस अद्‌भुत उन्नति का अनुमान माल्थस न लगा सके थे।
2. **सिद्धान्त का गणितात्मक रूप ठीक नहीं है** (The Mathematical Form of Theory is not Correct)—माल्थस ने जनसंख्या या खाद्य सामग्री की वृद्धि में जो गणितात्मक अनुपात स्थापित किया है, वह सही नहीं है—क्योंकि उनके वृद्धि के सम्बन्ध में इस प्रकार कोई निश्चित सूत्र निर्धारित नहीं किया जा सकता। इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता जिससे यह सिद्ध हो जाये कि जनसंख्या ज्यामितिक गति से तथा खाद्य सामग्री अंकगणितीय गति से बढ़ी हो।
3. **माल्थस की भविष्यवाणी सही नहीं हुई है—जीड और रिस्ट** के शब्दों में, "इतिहास से उसके भयों की पुष्टि नहीं की है। शायद ही किसी राष्ट्र से यह प्रकट हुआ हो कि वह अतीत जनसंख्या से पीड़ित है। कुछ देशों में विशेषतया फ्रांस में जनसंख्या धीरे-धीरे ही बढ़ी है। अन्य देशें में जनसंख्या की वृद्धि बहुत काफी हुई है परन्तु वहाँ अधिक जनसंख्या की कोई समस्या नहीं है क्योंकि जनसंख्या बढ़ने के साथ-साथ राष्ट्रीय आय भी बढ़ गयी है।"

TOUCH 'n' PASS

4. **जनसंख्या की प्रत्येक वृद्धि हानिकारक नहीं होती** (Every Increase in Population is not Harmful)—माल्थस का यह विचार है कि जनसंख्या की प्रत्येक वृद्धि राष्ट्र के लिए हानिकारक होती है, ठीक नहीं है क्योंकि यदि किसी देश में जनसंख्या आदर्श बिन्दु से कम है तो जनसंख्या में होने वाली वृद्धि से देश की प्रति व्यक्ति वार्षिक आय में वृद्धि होती है। ऐसी स्थिति में जनसंख्या में होने वाली वृद्धि राष्ट्र के हित में होती है। अत: यदि जनसंख्या में वृद्धि के साथ देश का कुल उत्पादन भी बढ़ता है तो जनसंख्या की वृद्धि से कोई हानि नहीं है।
5. **जनाधिक्य के कारण ही नैसर्गिक नियन्त्रण नहीं लगते** (Positive Checks are not due to Over-population)—**माल्थस** का यह कहना कि अधिक जनसंख्या पर प्राकृतिक विपत्तियों का होना अनिवार्य है, ठीक नहीं है क्योंकि जहाँ जनाधिक्य नहीं है, वहाँ भी ये नैसर्गिक प्रतिबन्ध अर्थात् प्राकृतिक विपत्तियाँ पायी जाती हैं। इसके अतिरिक्त, जिन देशों में जनाधिक्य है, वहाँ इन विपत्तियों को नियन्त्रित करने के उचित उपाय भी किये जा चुके हैं। वास्तव में, प्राकृतिक विपत्तियाँ उत्पादन की अकुशलता, धन का असमान वितरण, चिकित्सा विज्ञान का अपर्याप्त विकास आदि के परिणाम हैं, न कि जनाधिक्य के।
6. **माल्थस ने संयम के लिए जो सिफारिश** की है, वह सन्तोषजनक नहीं है क्योंकि साधारण व्यक्तियों के लिए ब्रह्मचर्य या आत्मसंयम का प्रयोग असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से तो आत्मसंयम विचारपूर्ण आदर्श है परन्तु व्यावहारिकता में यह उतना ही बड़ा सर दर्द बन जाता है।

प्र.6. माल्थस के आर्थिक विचारों का वर्णन कीजिए। अर्थशास्त्र में माल्थस के योगदान का भी उल्लेख कीजिए।
Discuss the economic thoughts of Malthus. Also, mention the contribution of Malthus in Economics.

उत्तर

माल्थस के आर्थिक विचार
(Economic Thoughts of Malthus)

माल्थस के आर्थिक विचारों को हम निम्न बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट कर सकते हैं—1. मूल्य का सिद्धान्त, 2. वितरण का सिद्धान्त एवं 3. अति-उत्पादन का सिद्धान्त।

1. मूल्य का सिद्धान्त (Theory of Value)

माल्थस का कहना था कि किसी वस्तु का मूल्य उसकी माँग और पूर्ति के द्वारा निर्धारित होता है। पूर्ति के पक्ष से उत्पादन लागत वस्तु के मूल्य को प्रभावित करता है। किसी वस्तु का मूल्य कम-से-कम उसके उत्पादन लागत के बराबर अवश्य होना चाहिए। किसी वस्तु का मूल्य उत्पादन लागत के बराबर भी नहीं है तो वस्तु का उत्पादन कम या बन्द हो जायेगा। परिणामत: वस्तु की पूर्ति घटेगी और वस्तु के मूल्य में वृद्धि हो जाएगी। किसी वस्तु के उत्पादन लागत में तीन तत्त्व सम्मिलित रहते हैं—श्रमिक की मजदूरी, पूँजीपति का लाभ व भूमि का लगान। माल्थस के विचार ने मजदूरी, लाभ तथा लगान का निर्धारण भी वस्तु की कीमत की भाँति होता है। इस प्रकार निर्धारित होने वाले मूल्य को उन्होंने **आवश्यक मूल्य** (Necessary Price) कहा है।

माल्थस ने **'उपयोग मूल्य'** (Value-in-use), **'मौद्रिक विनिमय मूल्य'** (Nominal Value-in-exchange) व **'वास्तविक विनिमय मूल्य'** के मध्य अन्तर स्पष्ट किया। किसी वस्तु का **उपयोग मूल्य** उस वस्तु की वास्तविक उपयोगिता को दर्शाता है जबकि किसी वस्तु का **मौद्रिक मूल्य** मुद्रा के रूप में व्यक्त किया गया मूल्य होता है। किसी वस्तु का **वास्तविक विनिमय मूल्य** उस वस्तु के विनिमय में अन्य वस्तुएँ प्राप्त करने की क्षमता होती है।

वास्तव में, मूल्य के विषय में माल्थस पृथक् रूप से कोई स्पष्ट सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं कर सके हैं। मूल्य के विषय में वे श्रम को ही आधार मानते थे और इस प्रकार उन्होंने श्रम सिद्धान्त को ही महत्त्व दिया था।

2. वितरण का सिद्धान्त (Theory of Distribution)

माल्थस ने वितरण के क्षेत्र में लगान, मजदूरी व लाभ के निर्धारण पर अपने विचार दिये हैं। उनके इन विचारों व सिद्धान्तों का विवरण नीचे दिया जा रहा है—

(अ) **लगान का सिद्धान्त** (Theory of Rent)—माल्थस ने 1815 में एक पुस्तक प्रकाशित की थी जिसका नाम था 'लगान की प्रकृति एवं विकास की जाँच' (On the Nature and Progress of Rent), तत्पश्चात् 1820 में प्रकाशित उनकी

'राजनीतिक अर्थव्यवस्था के सिद्धान्त' (Principles of Political Economy) नामक पुस्तक में भी उनके लगान सम्बन्धी विचार उपलब्ध हैं। संक्षेप में **माल्थस के लगान सम्बन्धी विचार** इस प्रकार हैं—

"लगान उत्पादन के सम्पूर्ण मूल्य का वह भाग है जो भूमि के स्वामी के पास बच जाता है जबकि खेती के सब प्रकार के व्यय तथा पूँजी के लाभ चुका दिये जाते हैं।"

1. लगान एक अतिरेक या बचत है जो कि केवल भूस्वामी को प्राप्त होता है। अतिरेक या बचत का अर्थ है, मूल्य और लागत का अन्तर।
2. लगान उत्पन्न होने के तीन कारण हैं—(अ) भूमि के अधिक उर्वरक होने के कारण खाद्यान्न उत्पादन कृषकों की लागत की अपेक्षा अधिक होता है। (ब) जनसंख्या में तेजी से वृद्धि होने के कारण भूमि की माँग में वृद्धि होती है। (स) उर्वरक भूमि की पूर्ति माँग की तुलना में सीमित है, फलतः खाद्यान्न की माँग में वृद्धि होने पर कृषकों को कम उपजाऊ भूमि पर कृषि करने के लिए विवश होना पड़ता है। कम उपजाऊ भूमि की उत्पादन लागत अधिक होने के कारण खाद्यान्न की कीमत में वृद्धि हो जाती है क्योंकि खाद्यान्न की कीमत कम उपजाऊ भूमि की उत्पादन लागत के बराबर अवश्य होना चाहिए? क्योंकि यदि खाद्यान्नों की कीमत लागत से कम है तो कम उपजाऊ भूमि पर खेती नहीं की जाएगी।
3. **एडम स्मिथ, रिकार्डो, जे०बी० से** आदि ने लगान को एकाधिकार आय के समान माना था जो भूमि स्वामी के वर्ग को बिना किसी परिश्रम के प्राप्त होता है, पर माल्थस ने स्मिथ के कथन का खण्डन किया कि "एकाधिकार द्वारा ऊँची कीमतों का ही परिणाम लगान है।" यद्यपि माल्थस ऊँचे मूल्य को लगान का कारण समझते थे परन्तु उन्होंने कहा कि ऊँचे मूल्य एकाधिकार का कारण नहीं हैं।
4. माल्थस यह मानते थे कि समाज तथा स्वामी के हित तथा भूस्वामियों तथा उद्योगपतियों के हित एक दूसरे के विरोधी नहीं होते।
5. माल्थस ने यह भी स्पष्ट किया कि लगान मूल्य का परिणाम है, कारण नहीं।

माल्थस के लगान सिद्धान्त का मूल्यांकन (Evaluation to Malthusian Rent Theory)—लगान के सम्बन्ध में माल्थस ने यद्यपि कोई स्पष्ट विचार नहीं प्रकट किया फिर भी यह मानना पड़ेगा कि उनके विचार एडम स्मिथ और रिकार्डो के विचारों के बीच में कड़ी का काम करते हैं। एडम स्मिथ के एकाधिकार के सिद्धान्त का रिकार्डो ने सही खण्डन किया। रिकार्डो का यह कथन कि लगान प्रकृति का मुक्त उपहार है, अभी तक मान्य है। माल्थस के लगान सिद्धान्त ने रिकार्डो के लगान के सिद्धान्त के लिए आधार तैयार किया परन्तु रिकार्डो के लगान सिद्धान्त के सब दोष माल्थस के सिद्धान्त में भी हैं जिनका विस्तृत अध्ययन हम आगे के अध्याय में करेंगे। माल्थस का यह कथन भी सत्य नहीं है कि कृषि उत्पादन स्वयं अपनी माँग पैदा करता है। मूल्य और लगान के सम्बन्ध का भी यह स्पष्ट विश्लेषण नहीं कर सके हैं।

(ब) **मजदूरी का सिद्धान्त** (Theory of Wage)—माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त में मजदूरी के जीवन निर्वाह सिद्धान्त की झलक मिलती है परन्तु 1820 ई० तक माल्थस का मजदूरी के इस सिद्धान्त पर विश्वास नहीं था। जैसा कि उस वर्ष उसकी प्रकाशित पुस्तक 'राजनैतिक अर्थव्यवस्था के सिद्धान्त' में उनके द्वारा मजदूरी की परिभाषा से पता चलता है। **माल्थस** के शब्दों में "मजदूरी श्रमिक के 'व्यक्तिगत परिश्रम का पारितोषण' है। वस्तुओं के मूल्य की तरह उन्हें भी असल और नकद में विभाजित किया जा सकता है। श्रम की असल मजदूरी उनकी अनिवार्यताओं से बनती है। श्रम की नकद मजदूरी उनकी मुद्रा में अनुमानित मूल्य से बनती है।"

माल्थस का मत था कि नकद मजदूरी श्रम की माँग और पूर्ति की शक्तियों द्वारा निश्चित होती है। इसी दृष्टि से वे मजदूरी की माँग व पूर्ति सिद्धान्त के समर्थक थे।

(स) **लाभ का सिद्धान्त** (Theory of Profit)—माल्थस ने लाभ को पूँजी पर प्राप्त आय माना है। माल्थस ने सम्पत्ति और पूँजी में अन्तर करते हुए कहा कि समस्त पूँजी सम्पत्ति है किन्तु समस्त सम्पत्ति पूँजी नहीं होती अर्थात् सम्पत्ति एक व्यापक धारणा है, जबकि पूँजी संकीर्ण। लाभ को माल्थस ने सम्पत्ति के उस भाग को सम्बोधित किया जिसका विनियोग लाभ प्राप्त करने की आशा से किया जाता है।

माल्थस ने स्मिथ के इस विचार को अस्वीकार कर दिया कि लाभ में वृद्धि मजदूरी में की जाने वाली कटौती पर निर्भर करती है। माल्थस के मतानुसार लाभ का सम्बन्ध पूँजी की उत्पादकता से है, न कि मजदूरी की मात्रा से।

TOUCH 'n' PASS

3. अति-उत्पादन का सिद्धान्त (Theory of Over-Production)

अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सिद्धान्तों' में माल्थस ने **'सामान्य अत्युत्पादन सिद्धान्त'** अथवा **'कम उपभोग सिद्धान्त'** का प्रतिपादन किया था जो बाद में चलकर **कीन्सियन अर्थशास्त्र** की आधारशिला बना। 1815 ई० से लेकर 1820 ई० तक माल्थस के समय इंग्लैण्ड में कम उपभोग, बेरोजगारी, अधिक उत्पादन जैसी विषम आर्थिक समस्याएँ विद्यमान थीं। माल्थस ने अमीरों के बीच निर्धनता को पनपते देखा, अधिक उत्पादन के साथ कम बिक्री तथा अधिक बेरोजगारी को देखा। इन कारणों को जानने के लिए माल्थस ने जो विचार प्रस्तुत किये हैं, वे विचार माल्थस के **सामान्य अत्युत्पादन के सिद्धान्त** के नाम से प्रसिद्ध हैं।

माल्थस के समकालीन विचारक **जे० बी० से** ने अपने बाजार नियम में बताया था, "किसी वस्तु की माँग ही उसकी पूर्ति की जननी है। अत: उस वस्तु का अति उत्पादन होना असम्भव है।" **जे० बी० से०** का कहना था कि हो सकता है कि अल्पकाल में माँग की अपेक्षा पूर्ति अधिक हो जाये किन्तु दीर्घकाल में माँग और पूर्ति एक दूसरे के बराबर हो जाते हैं। रिकार्डो का 'से' के बाजार नियम में अटूट विश्वास था। इसके अतिरिक्त एडम स्मिथ, रिकार्डो, जे० बी० से तथा जे० एस० मिल अधिक बचत को आर्थिक प्रगति का निदेशक मानते थे।

माल्थस ने इन विचारों का घोर विरोध किया। उसने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'राजनैतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त' में बताया कि अधिक बचत प्रभावपूर्ण माँग में कमी करके अत्युत्पादन की समस्या को जन्म देती है। संक्षेप में, माल्थस का अत्युत्पादन के सिद्धान्त की निम्न विशेषताएँ हैं जिनका अध्ययन करके ही हम उनके सिद्धान्त को भली-भाँति समझ सकते हैं।

1. **व्यय के दो स्वरूप**—माल्थस के मतानुसार **मनुष्य अपनी आय को दो प्रकार से व्यय करता है या तो वह उपभोग के लिए वस्तुओं-सेवाओं को खरीदता है या फिर अपनी आय को बचाकर रख लेता है।** कीन्स ने इस बात का समर्थन इस प्रकार किया है—C (उपभोग) + S (संचय) = Y आय।
2. **आय में वृद्धि से संचय व उपभोग दोनों बढ़ते हैं**—माल्थस यह मानते थे कि यह सम्भव हो सकता है कि मनुष्य की आय बढ़ने के साथ-ही-साथ व्यय के दोनों रूप अर्थात् संचय और उपभोग भी बढ़ जायें। कीन्स ने अपनी पुस्तक *'Essay is Biography'* में माल्थस के इस विचार का समर्थन किया है। कीन्स के शब्दों में हम कह सकते हैं कि माल्थस यह जानते थे कि सीमान्त बचत प्रवृत्ति (Marginal Propensity to Save) इकाई (Unit) से कम होती है। यही कारण है कि आय के बढ़ने से (कुल बचत) संचय भी बढ़ती है और साथ-ही-साथ कुल उपभोग भी बढ़ता है।
3. **धन के वितरण का उपभोग तथा विनियोग पर प्रभाव**—माल्थस के विचारानुसार धन के वितरण का उपभोग तथा विनियोग पर प्रभाव पड़ता है। धन का वितरण सामान होने पर उपभोग में वृद्धि होती है किन्तु उसके असमान होने पर विनियोग बढ़ता है क्योंकि अधिकांश धन कुछ ही व्यक्तियों के पास केन्द्रित हो जाता है जिससे पूँजी का संचय बढ़ जाता है। **माल्थस** के शब्दों में, "तीस या चालीस उत्पादक जिनकी वार्षिक आय 1,000 से 5,000 के मध्य है, वे अनिवार्य, आराम व विलासिता की वस्तुओं की अधिक प्रभावपूर्ण माँग पैदा करेंगे। अपेक्षाकृत उस अकेले व्यक्ति के जिसकी वार्षिक आय सैकड़ों-हजारों में है।" संक्षेप में धन का असमान वितरण कम उपभोग व अधिक बचत को जन्म देता है। **कीन्स ने भी इन्हीं विचारों को देते हुए बताया है कि धन का वितरण बचत और उपभोग करने की इच्छा को प्रभावित करता है।**
4. **प्रभावपूर्ण माँग**—बचत (Saving) पर ही विनियोग (Investment) निर्भर करता है अर्थात् बचत अधिक होगी तो विनियोग भी अधिक होगा) और दोनों मिलकर ही 'प्रभावपूर्ण माँग' (Effective Demand) को निर्धारित करते हैं। माल्थस ने यह विचार स्पष्ट शब्दों में व्यक्त नहीं किया है परन्तु उनकी पुस्तकों के पढ़ने से ऐसा आभास होता है। इस विचार को स्पष्ट करने का कार्य बाद में **प्रो० कीन्स** ने किया।

उपरोक्त बातों के आधार पर माल्थस ने अपनी अति उत्पादन सिद्धान्त इस प्रकार प्रतिपादित किया। जब देश में खुशहाली आती है तो लोगों की आय बढ़ जाती है। यह बढ़ी हुई आय सभी लोगों में समान रूप से नहीं बढ़ती अर्थात् आय असमान रूप से बढ़ती है। धन के असमान वितरण के कारण कुछ अमीर लोगों को अधिक मात्रा में बचत करना सम्भव हो जाता है जिससे विनियोग बढ़ता है और उत्पादन में वृद्धि होती है। दूसरी ओर, गरीबों की आय में विशेष वृद्धि न होने से उपभोग में इतनी वृद्धि नहीं हो पाती जिससे वस्तुएँ अनबिकी रह जाती हैं और **अति उत्पादन** (बेरोजगारी) की दशा उत्पन्न हो जाती है।

समस्या का समाधान—अति उत्पादन की समस्या को सुलझाने के लिए माल्थस ने दो महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये हैं—

(अ) **मजदूरी में कटौती** (Cut in Wages)—माल्थस का मत था कि बेरोजगारी को कम करने का एक तरीका यह है कि श्रमिकों की मजदूरी में कटौती की जाए और इस प्रकार प्राप्त आय को अन्य श्रमिकों को प्रदान किया जाये।

TOUCH 'n' PASS

कीन्स माल्थस के इस विचार से सहमत नहीं हैं। माल्थस जिन्होंने प्रभावपूर्ण माँग का विचार दिया था, यह नहीं समझ पाये कि मजदूरों की मजदूरी (आय) कम हो जाएगी तो इसका परिणाम यह होगा कि वे कम वस्तुएँ उपभोग कर पायेंगे और प्रभावपूर्ण माँग कम हो जाएगी जिसके फस्वरूप उत्पादन भी कम किया जाएगा।

(ब) **अनुत्पादक उपभोग पर सरकार द्वारा व्यय** (Expend it use by the Government on Unproductive Consumption)—सरकार को अति उत्पादन की स्थिति को दूर करने के लिए अनुत्पादक उपभोक्ताओं पर व्यय करना चाहिए। माल्थस का अनुत्पादक उपभोक्ता से अभिप्राय उन व्यक्तियों से है जो किसी प्रकार प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन नहीं बढ़ाते हैं, जैसे घर के नौकर अपना श्रम बेचकर मजदूरी प्राप्त करते हैं तथा उपभोग करते हैं। जब ऐसे व्यक्ति उपभोग द्वारा प्रभावपूर्ण माँग को बढ़ा देते हैं परन्तु उत्पादन या वस्तुओं की मात्रा को नहीं बढ़ाते हैं तो स्वयं ही अति उत्पादन की समस्या सुलझ जाती है। **माल्थस** के शब्दों में, "यह बहुत आवश्यक है कि एक ऐसे देश को जिसकी उत्पादन क्षमता अधिक है, अनुत्पादक उपभोक्ताओं का एक समूह रखना चाहिए।"

मूल्यांकन—कीन्स की 'जनरल थ्योरी' नामक पुस्तक के प्रकाशन के बाद माल्थस के इस सिद्धान्त का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ गया है क्योंकि कीन्स का सिद्धान्त माल्थस के अति-उत्पादन के विचार पर आधारित है। कीन्स ने भी मन्दी तथा अति-उत्पादन को मुक्त अर्थव्यवस्था का एक आवश्यक लक्षण माना था। उसका कहना था कि समाज में जिस अनुपात में आय बढ़ती है, उसी अनुपात में उपभोग नहीं बढ़ता और धन के असमान वितरण के कारण भी प्रभावपूर्ण माँग में कमी हो जाती है।

यह स्वीकार करना पड़ेगा कि माल्थस प्रथम प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री थे जिन्होंने प्रभावपूर्ण माँग में कमी के सन्दर्भ में अति उत्पादन की समस्या पर विचार किया। कुछ विद्वानों का तो यहाँ तक कहना है यदि थोड़ा और गम्भीरता से अत्युत्पादन सिद्धान्त पर विचार करे तो इस क्षेत्र में भी उनकी वही महत्त्वपूर्ण स्थान होता तो उन्हें जनसंख्या सिद्धान्त के कारण प्राप्त है।

माल्थस के विचारों का मूल्यांकन (Evaluation of Malthus Thoughts)

अथवा अर्थशास्त्र में माल्थस का योगदान अथवा देन (Contribution of Malthus in Economics)

आर्थिक विचारों के इतिहास में माल्थस का अपना एक विशिष्ट स्थान है। हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि माल्थस एक मौलिक विचारक थे, यही कारण है कि उन्होंने अपने समय के विचारकों व विद्वानों पर ही प्रभाव नहीं डाला था बल्कि आधुनिक अर्थशास्त्रियों को भी प्रभावित किया है। अर्थशास्त्र के प्रति माल्थस की देन को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत समझाया जा सकता है—

1. **जनसंख्या सिद्धान्त का वैज्ञानिक रूप** (Scientific Form of Population Theory)—माल्थस ने जनसंख्या सम्बन्धी अपने विचारों को क्रमबद्ध तथा सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत करके एक सराहनीय कार्य किया। विभिन्न देशों में भ्रमण करके उन्होंने नये अनुभव प्राप्त किये और तत्पश्चात् अर्थशास्त्र को जनसंख्या का एक वैज्ञानिक सिद्धान्त प्रदान किया।
2. **ऐतिहासिक आन्दोलन की अग्रणी** (Forrunner of Historical Movement)—माल्थस को ऐतिहासिक आन्दोलन का अग्रणी कहा जाता है क्योंकि उन्होंने आँकड़ों के आधार पर बहुत से नियम प्रतिपादित किये अर्थात् उन्होंने आगमन विधि को अपनाया जिसके सहारे ही जर्मन के ऐतिहासिक सम्प्रदाय ने अपने कार्य को आगे बढ़ाया।
3. **सांख्यिकी के विकास में सहयोग** (Helpful in Development of Statistics)—माल्थस ने अपने जनसंख्या सिद्धान्त को समझाने के लिए विभिन्न स्थानों में आँकड़े एकत्रित किये और उनका प्रयोग सिद्धान्त में हुआ। अपने जीवन के अन्तिम काल में उन्होंने एक सांख्यिकी समाज की स्थापना की। इस प्रकार से माल्थस ने सांख्यिकी के विकास में भी काफी सहयोग दिया है।
4. **सामाजिक अधिनियमों का निर्माण** (Formulation of Social Laws)—माल्थस वास्तव में एक सामाजिक अर्थशास्त्री थे। उनके विचारों के प्रभाव के कारण ही इंग्लैण्ड में अनेक अधिनियम सम्बन्धी परिवर्तन हुए। 1834 का नया निर्धन अधिनियम जिसके आधार पर निकम्मे आदमियों के आर्थिक सहायता में कमी की गयी थी। माल्थस के ही उद्देश्यों का का परिणाम था। **जेम्स बोनर** के मतानुसार माल्थस ने तीन मानवीय विचार प्रस्तुत किये हैं—(i) सबके लिए नीची मृत्यु दर, (ii) निर्धन के लिए ऊँचा जीवन स्तर और (iii) शिशुओं की अकाल मृत्यु से सुरक्षा। अन्य शब्दों में, माल्थस मानवीय जीवन में मितव्ययिता का समर्थक था।
5. **चार्ल्स डार्विन पर प्रभाव** (Effects on Charles Darwin)—जनसंख्या वृद्धि तथा खाद्य पूर्ति के सम्बन्ध में सुझाव देकर माल्थस ने डार्विन के अपने सिद्धान्त **'विकास का सिद्धान्त'** (Theory of Evolution) को प्रतिपादित करने में

TOUCH 'n PASS

प्रभावित किया। डार्विन स्वयं माल्थस के प्रति आभार को स्वीकार करते हैं क्योंकि माल्थस की पुस्तक से ही उन्हें वह विचार मिला जो आगे चलकर जीविका के लिए संघर्ष के विचार में विकसित हुआ। उन्होंने स्वयं यह कहा है कि उनका प्राकृतिक वरण का सिद्धान्त समस्त पशु समाज में लागू किया हुआ माल्थस का सिद्धान्त ही है।

6. **अति आशावाद का उत्तर** (Answer to Over-optimisms)—माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त ने अपनी निराशावादी प्रवृत्तियों के कारण अति आशावाद की बहुत-सी बुराइयों को दूर किया क्योंकि आशावाद का बहुत-कुछ प्रचार 18वीं शताब्दी में हो चुका था। वास्तव में, उनकी पुस्तक *'An Essay on the Principle of Population'* एडम स्मिथ के आशावाद का उत्तर ही था। माल्थस का चरित्र लिखने वाले **जेम्स बोनर** ने तो यहाँ तक कहा है कि माल्थस की इस पुस्तक का शीर्षक राष्ट्रों की गरीबी के कारणों पर एक निबन्ध (An Essay on the Cause of the Poverty of Nations) होना चाहिए था जिससे वह एडम स्मिथ के 'राष्ट्रों के धन' (Wealth of Nations) नामक पुस्तक का एक समुचित उत्तर माना जाता।
7. **गतिशील अर्थशास्त्र** (Dynamic Economics)—माल्थस के विचार इसलिए भी महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि उनके जनसंख्या सिद्धान्त ने अर्थशास्त्र में एक गतिशील तत्त्व सम्मिलित कर दिया है जिसके कारण स्थैतिक विश्लेषण की पद्धति का महत्त्व काफी कम हो गया है। उनके जनसंख्या सिद्धान्त के कारण कुछ दी हुई दशाओं को मानकर उनके आधार पर निर्णय लेना अथवा सिद्धान्तों के निर्माण में अन्य बातें समान रहने की अवास्तविक मान्यता को लेकर चलना काफी कठिन हो गया है।
8. **क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम का सह-अन्वेषक** (Co-investigator of Law of Diminishing Returns)—जेम्स, हण्डरसन तथा रिकार्डो के साथ-साथ माल्थस भी कृषि में क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम का सह-अन्वेषक था।
9. **अर्थशास्त्र का सह-संस्थापक** (Co-propounder of Economics)—जनसंख्या की वृद्धि के तत्त्व को प्रस्तुत करके माल्थस ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र में एक नये मौलिक विचार का समावेश किया है। इसने अर्थशास्त्र को इतनी सुदृढ़ता प्रदान की कि माल्थसवादी प्रतिष्ठित आर्थिक प्रणाली की नींव का एक महत्त्वपूर्ण पत्थर बन गया है। अनेक आर्थिक नियमों में इसे एक मौलिक मान्यता के रूप में अपनाया गया। विशेषकर रिकार्डो के लगान सिद्धान्त एवं जीवन-निर्वाह-मजदूरी सिद्धान्त का तो यह आधार ही है। यही कारण है कि एडम स्मिथ तथा रिकार्डो के साथ-साथ माल्थस को अर्थशास्त्र का सहसंस्थापक माना जाता है।
10. **माल्थस के लगान सम्बन्धी विचार** (Malthus's Views on Rent)—माल्थस के लगान सम्बन्धी विचार इतने अधिक महत्त्वपूर्ण हैं कि रिकार्डो के साथ-साथ उन्हें भी लगान सिद्धान्त का अन्वेषक कहा जाता है। माल्थस ने पहली बार इस बात को प्रमाणित किया कि लगान एकाधिकारी भुगतान से भिन्न है और वह श्रेष्ठ भूमि की कमी के कारण पैदा होता है। यद्यपि उनके लगान सम्बन्धी विचार कुछ बातों में रिकार्डो से भिन्न है किन्तु फिर भी यह मानना पड़ेगा कि माल्थस पहले अर्थशास्त्री थे जिन्होंने लगान को भूमि की उपज से प्राप्त आय तथा उस उपज की उत्पादन लागत के अन्तर के रूप में प्रतिपादित किया।
11. **कीन्स के आधुनिक अर्थशास्त्र का पूर्व प्रणेता** (Pro-founder of Keynisian Modern Economics)—माल्थस के प्रभावपूर्ण माँग एवं अति उत्पादन सिद्धान्त पर तत्कालीन अर्थशास्त्रियों ने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया परन्तु यही सिद्धान्त आगे चलकर कीन्सियन अर्थशास्त्र की आधारशिला बना। कीन्स की प्रभावपूर्ण माँग, उपभोग प्रवृत्ति आदि धारणाएँ माल्थस के विचारों से प्रभावित हैं। कीन्स ने माल्थस के विचार से प्रभावित होकर ही सरकार को मन्दी के समय समाज कल्याण कार्यों पर व्यय करने का परामर्श दिया है। अत: माल्थस को कीन्स के आधुनिक अर्थशास्त्र का प्रतिभाशाली प्रणेता एवं पूर्व विचारक कहा जा सकता है।

❐

TOUCH 'n' PASS

UNIT-V

जर्मन प्रकृतिवादी और समाजवादी
German Romantics and Socialists

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. सिस्मोंडी की प्रमुख पुस्तकों के नाम लिखिए।
Name the main books of Sismondi.

उत्तर सिस्मोंडी ने कई पुस्तकें भी लिखीं जिनमें से मुख्य निम्न हैं—

1. A Table of Agriculture in Tuscany (1802).
2. Commercial Riches (1803).
3. New Principles of Political Economy (1819).
4. The History of Italian Republic (15 Volumes).
5. The History of France (31 Volumes).
6. History of Literature (4 Volumes).

प्र.2. सिस्मोंडी का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
Give in short the introduction of Sismondi.

उत्तर ज्यॉ चार्ल्स ल्योनार्ड सिस्मोंडी (Jean Charles Leonard Sismondi) का जन्म 1773 में जेनेवा (स्विट्ज़रलैण्ड) में हुआ। इनके वंशज मूलत: इटली के थे जो 16वीं सदी में फ्रांस में आ गये एवं बाद में जेनेवा में बस गये। जेनेवा में अपना अध्ययन समाप्त कर ये इटली चले गये जहाँ इन्होंने काफी समय बिताया। इन्होंने इंग्लैण्ड का भ्रमण भी किया। इन्होंने 10 खण्डों में Italian Republics in the Middle Ages का इतिहास लिखा एवं बाद में 29 खण्डों में फ्रांस का इतिहास भी लिखा। सन् 1803 में इन्होंने Commercial Wealth का प्रणयन किया। 10 वर्ष तक इतिहास के लेखन के बाद सन् 1819 में इन्होंने पुन: अर्थशास्त्र के क्षेत्र में पदार्पण किया एवं अपने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ *'New Principles of Political Economy'* का प्रकाशन किया। यद्यपि सिस्मोंडी का सम्पर्क कई सम्प्रदायों से था लेकिन वे अपने आप में अलग ही थे। प्रारम्भ में हम एडम स्मिथ के साधारण आलोचक के रूप में पाते हैं। उन्होंने स्वयं स्पष्ट किया है कि उनका उद्देश्य फ्रांस के लिए वही विचार प्रस्तुत करना है जो एडम स्मिथ ने इंग्लैण्ड के लिए किये थे। सिस्मोंडी के समकालीन अर्थशास्त्री माल्थस, जे०बी० से, लिस्ट, रिकार्डो, सीनियर एवं राबर्ट ओवन थे।

प्र.3. सिस्मोंडी के विचारों को प्रभावित करने वाला एक कारण बताइए।
Give one reason which influenced the thoughts of Sismondi.

उत्तर प्रतिष्ठित विचारधारा की कुछ मान्यताओं एवं सिद्धान्तों, जैसे—माल्थस का जनसंख्या का सिद्धान्त, रिकार्डो का लगान सिद्धान्त इत्यादि ने निराशावादी दृष्टिकोण का निर्माण किया। उनकी कठोर व्यक्तिवादी नीति, अहस्तक्षेप एवं स्वतन्त्र व्यापार के सिद्धान्त के विरोध में प्रतिक्रिया स्वाभाविक थी। सिस्मोंडी उक्त सम्प्रदाय के प्रथम आलोचक थे। प्रतिष्ठित विचारधारा की विरोधी प्रतिक्रिया सिस्मोंडी को समाजवाद की ओर ले गयी।

प्रतिष्ठित विचारधारा अहस्तक्षेप की एवं स्वहित की नीति की आलोचना की गई क्योंकि इसने कई संघर्षों को जन्म दिया। अत: पुरानी व्यवस्था को प्रतिस्थापित करने की माँग की गई एवं सामाजिक नियोजन एवं सरकारी हस्तक्षेप को आवश्यक माना गया। सिस्मोंडी इसी व्यवस्था के प्रतिनिधि थे।

TOUCH 'n' PASS

प्र.4. हीगलवाद को परिभाषित कीजिए।
Define Hegelism.

उत्तर हीगल जर्मनी के एक अर्थशास्त्री थे। उनकी विचारधारा को ही हीगलवाद कहा जाता है। अपने विद्यार्थी जीवन में ही मार्क्स ने हीगल की कृतियों का अध्ययन कर लिया था और वामपंथी हीगलवादियों से सम्पर्क बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया था। स्वाभाविक है कि मार्क्स हीगल के विचारों से प्रभावित हुआ।

प्र.5. कार्ल मार्क्स की मुख्य पुस्तकों के नाम लिखिए।
Name the main books of Karl Marx.

उत्तर कार्ल मार्क्स ने अपने विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए बहुत-सी पुस्तकें एवं लेख लिखे हैं जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं—

1. हीगल के अधिकारों के दर्शन की आलोचना की प्रस्तावना (Introduction to Critique of Hegel's Philosophy of Rights (1843)।
2. दर्शनशास्त्र की निर्धनता—प्रोधां की एक आलोचना (The Poverty of Philosophy—a Criticism of Prodhon (1847)।
3. स्वतन्त्र विनिमय के पक्ष पर वार्तालाप (Discourse upon the Question of Free Exchange)।
4. राजनीतिक अर्थव्यवस्था का आलोचना में योगदान (A Contribution to the Critique of Political Economy)।
5. समाजवादी घोषणा-पत्र (The Communist Manifesto)।

प्र.6. मार्क्स के विचारों पर परम्परावादी अर्थशास्त्रियों का क्या प्रभाव पड़ा?
What was the impact of classical economists on Marx's thoughts?

उत्तर मार्क्स पर परम्परावादी अर्थशास्त्रियों, विशेषकर एडम स्मिथ, रिकार्डो का प्रभाव पड़ा है। इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि मार्क्सवाद की आधारशिला परम्परावादी अर्थशास्त्र है। मार्क्स ने परम्परावादी विचारों की कड़ी आलोचना की है तथा उनके विचारों से प्रभावित होकर ही उन्होंने अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। इस कारण कुछ विचारक तो मार्क्स को अन्तिम परम्परावादी अर्थशास्त्री कहकर पुकारते हैं। वास्तव में, मार्क्स के लगभग सभी आर्थिक सिद्धान्तों, विशेषकर उनका मूल्य का श्रम लागत सिद्धान्त तथा अतिरेक मूल्य का सिद्धान्त, के स्रोत स्मिथ तथा रिकार्डो के आर्थिक विचार हैं।
कुछ लोग तो यह कहते हैं कि उन्होंने एडम स्मिथ की पुस्तक **'वैल्थ ऑफ नेशन्स'** के नाम के अनुरूप ही अपनी एक पुस्तक का नाम भी **'दास कैपिटल'** रखा है।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. सिस्मोंडी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं इन्हें प्रभावित करने वाले कारणों का उल्लेख कीजिए।
Mention that the historical background of Sismondi and the factors that influenced him.

उत्तर

सिस्मोंडी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं उन्हें प्रभावित करने वाले कारण
(Historical Background of Sismondi and Factors that Influenced Him)

1. प्रतिष्ठित विचारधारा की कुल मान्यताओं एवं सिद्धान्तों, जैसे—माल्थस का जनसंख्या का सिद्धान्त, रिकार्डो का लगान सिद्धान्त इत्यादि ने निराशावादी दृष्टिकोण का निर्माण किया। उनकी कठोर व्यक्तिगत नीति, अहस्तक्षेप एवं स्वतन्त्र व्यापार के सिद्धान्त के विरोध में प्रतिक्रिया स्वाभाविक थी। सिस्मोंडी उक्त सम्प्रदाय के प्रथम आलोचक थे। प्रतिष्ठित विचारधारा की विरोधी प्रतिक्रिया सिस्मोंडी को समाजवाद की ओर ले गयी।
प्रतिष्ठित विचारधारा अहस्तक्षेप की एवं स्वहित की नीति की आलोचना की गई क्योंकि इसने कई संघर्षों को जन्म दिया। अत: पुरानी व्यवस्था को प्रतिस्थापित करने की माँग की गई एवं सामाजिक नियोजन एवं सरकारी हस्तक्षेप को आवश्यक माना गया। सिस्मोंडी इसी व्यवस्था के प्रतिनिधि थे।

TOUCH 'n PASS

2. तत्कालीन परिस्थितियों ने सिस्मोंडी को प्रभावित किया। फ्रांस की क्रान्ति, नेपोलियन के युद्ध एवं औद्योगिक क्रान्ति तथा कारखाना प्रणाली की चरम सीमा को भी उन्होंने देखा। उन्होंने युद्ध के बाद होने वाली कठिनाइयों एवं पीड़ा का अनुभव किया। इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति का अध्ययन कर उन्होंने वहाँ की बेरोजगारी तथा अत्युत्पादन पर दृष्टिपात किया एवं यह निष्कर्ष निकाला है कि धनी और अधिक समृद्ध एवं गरीब और अधिक गरीब होते जा रहे हैं। व्यक्ति एवं राज्य के बदलते हुए सन्दर्भ भी सिस्मोंडी की दृष्टि से नहीं बच सके।
3. सिस्मोंडी के समकालीन आर्थिक विचारधारा के लेखकों का भी उन पर प्रभाव पड़ा। इन लेखकों में **रिकार्डो, माल्थस, सीनियर, राबर्ट ओवन, जे०बी० से, फ्रेडरिक, लिस्ट** आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। **प्रो० हैने** के अनुसार इटली के अर्थशास्त्री ऑरेस (Ortes) का प्रभाव भी सिस्मोंडी पर पड़ा क्योंकि इनके जनसंख्या एवं धन के वितरण सम्बन्धी विचार ऑरेस के विचारों के समान ही हैं।

प्र.2. मार्क्स के विचारों पर प्रभाव डालने वाले घटकों का उल्लेख कीजिए।
Mention the factors that influenced the ideas of Marx.

उत्तर

मार्क्स के विचारों पर प्रभाव डालने वाले घटक
(Factors that Influenced Marx's Ideas)

कार्ल मार्क्स एक मौलिक विचारक ही नहीं थे बल्कि वास्तविकता यह है कि उन्होंने अपने चारों ओर के वातावरण से प्रभावित होकर अपनी आवश्यकता के अनुरूप मार्ग चयन कर लिया था। अपने प्रमुख आर्थिक विचारों के लिए मार्क्स प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों, पूर्वकालीन तथा समकालीन समाजवादियों के अत्यधिक ऋणी थे। इतना अवश्य है कि अपनी तीक्ष्ण बुद्धि तथा विश्लेषण विचार-शक्ति का प्रयोग करते हुए मार्क्स ने अपने पूर्वाधिकारियों के आर्थिक विचारों को नवीन रूप प्रदान कर उन्हें प्रभावशाली भाषा में प्रस्तुत किया। संक्षेप में मार्क्स पर निम्नलिखित बातों का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है—

1. **हीगलवाद** (Hegelism)—हीगल जर्मनी के एक अर्थशास्त्री थे। उनकी विचारधारा को ही हीगलवाद कहा जाता है। अपने विद्यार्थी जीवन में ही मार्क्स ने हीगल की कृतियों का अध्ययन कर लिया था और वामपंथी हीगलवादियों से सम्पर्क बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया था। स्वाभाविक है कि मार्क्स हीगल के विचारों से प्रभावित हुआ।
2. **परम्परावादी अर्थशास्त्र** (Classical Economics)—मार्क्स पर परम्परावादी अर्थशास्त्रियों, विशेषकर एडम स्मिथ, रिकार्डो का प्रभाव पड़ा है। इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि मार्क्सवाद की आधारशिला परम्परावादी अर्थशास्त्र है। मार्क्स ने परम्परावादी विचारों की कड़ी आलोचना की तथा उनके विचारों से प्रभावित होकर ही उन्होंने अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। इस कारण कुछ विचारक तो मार्क्स को अन्तिम परम्परावादी अर्थशास्त्री कहकर पुकारते हैं। वास्तव में मार्क्स के लगभग सभी आर्थिक सिद्धान्तों, विशेषकर उनका मूल्य का श्रम लागत सिद्धान्त तथा अतिरेक मूल्य का सिद्धान्त, के स्रोत स्मिथ तथा रिकार्डो के आर्थिक विचार हैं।
   कुछ लोग तो यह कहते हैं कि उन्होंने एडम स्मिथ की पुस्तक **'वैल्थ ऑफ नेशन्स'** नाम के अनुरूप ही अपनी एक पुस्तक का नाम भी **'दास कैपिटल'** रखा है।
3. **आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति** (Economic and Political Condition)—मार्क्स पर तात्कालिक आर्थिक एवं राजनीतिक स्थितियों का भी बहुत प्रभाव पड़ा। जर्मनी उस समय आर्थिक कठिनाइयों को दूर करके पूँजीवादी प्रजातन्त्र की ओर बढ़ रहा था। मार्क्स ने यह भी देखा कि इंग्लैण्ड का पूँजीवाद किस प्रकार से अपनी चरम सीमा पर पहुँचा है। वे श्रमिकों और पूँजीपतियों के बीच होने वाले वर्ग-संघर्षों को भी देख रहे थे। साथ ही उन्होंने जर्मनी में धर्म और भगवान के महत्त्व को घटते और भौतिकवाद के महत्त्व को बढ़ते हुए देखा था। ऐसे पूँजीवाादी समाज के प्रति मार्क्स के हृदय में घृणा उत्पन्न होना स्वाभाविक था। निर्धनता और श्रम-शोषण के तथ्यों ने मार्क्स को समाजवाद सम्बन्धी वैज्ञानिक सिद्धान्त प्रतिपादित करने के लिए प्रेरित किया। यही कारण है कि उन्होंने 1848 ई० में 'साम्यवादी घोषणा-पत्र नामक ग्रन्थ की रचना की और 1864 में अन्तर्राष्ट्रीय स्वयं संघ को जन्म दिया। निश्चय ही वह युग क्रान्ति से परिपूर्ण था।
4. **भौतिकवादी** (Materialism)—फ्रांस में 18वीं शताब्दी में लुडविग फायरवास आदि ऐसे अनेक भौतिकवादी विद्वान हुए जिन्होंने आदर्शवादिता को त्यागकर भौतिकवादी दृष्टिकोण को अपनाया। मार्क्स पर इनके विचारों का बहुत प्रभाव पड़ा था तभी तो हम उन्हें भौतिकवादी पाते हैं।

TOUCH 'n' PASS

5. **समाजवादी विचारक** (Socialist Thinkers)—मार्क्स ने अपने पूर्ववर्ती व समकालीन समाजवादियों के विचारों का भी अध्ययन किया था जिसमें सिस्मोंडी, राबर्ट ओवन, विलियम थामसन, चार्ल्स फूरिये, प्रोधां, चार्ल्स हाल आदि प्रमुख हैं। मार्क्स आदर्शवादी कम, व्यावहारिक अधिक थे। अत: उन्होंने इन विचारकों के विचारों को लेकर उन्हें अधिक वैज्ञानिक और व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत किया।

प्र.3. मार्क्स के आर्थिक विचारों का प्रभाव, महत्त्व व योगदान बताइए।

State the influence, importance and contribution of Marx economic thoughts.

उत्तर

मार्क्स के आर्थिक विचारों का प्रभाव, महत्त्व व योगदान
(Influence, Importance and Contribution of Marx Economic Thoughts)

कार्ल मार्क्स के विचारों की इतनी कटु आलोचना के बावजूद यह मानना पड़ेगा कि आज भी मार्क्स एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शक्ति है। ग्रे जैसे आलोचकों ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि "अपने दोषों, त्रुटियों और असंगतियों के बावजूद मार्क्स का एक बहुमुखी व्यक्तित्व था। मार्क्स केवल अर्थशास्त्री ही नहीं था, वह एक समाजशास्त्री, श्रमिक वर्ग का रक्षक, शिक्षक और पैगम्बर था।"

वस्तुत: कार्ल मार्क्स एक महान अर्थशास्त्री, वैज्ञानिक, समाजवादी तथा इतिहासवेत्ता था। किरकुप ने मार्क्स की प्रशंसा करते हुए उसे उन्नीसवीं शताब्दी का सबसे बड़ा विचारक कहकर पुकारा है। **प्रो० लास्की** ने मार्क्स के महत्त्व को व्यक्त करते हुए लिखा है, "उसने सामाजिक वाद-विवाद के सम्मुख मनुष्यों की आर्थिक दशा का अन्तिम प्रश्न प्रस्तुत किया तथा उसने मनुष्यों को एक ऐसी परिस्थिति में आशा का संदेश देकर एक अपरमित सेवा की है जहाँ मनुष्य दु:ख और कष्टों से असह्य शिकार बने हुए थे तथा जिनसे छुटकारा पाने का कोई उपाय नहीं था।"

संक्षेप में आर्थिक विचारों के इतिहास में '**कार्ल मार्क्स**' का महत्त्व निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट हो जाएगा—

(i) वैज्ञानिक समाजवाद के संस्थापक थे।
(ii) द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्त पर इतिहास की व्याख्या की थी।
(iii) अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त पर श्रम के शोषण की व्याख्या की और पूँजीवाद के अन्तर्गत शोषण अनिवार्य बताया था।
(iv) एकमात्र समाजवादी जिनके आधार पर संसार की एक विशाल जनसंख्या ने अपने देशों की सामाजिक-आर्थिक रचना की थी।
(v) पूँजीवाद की कट्टरता एवं दुराग्रह भी इनके कारण कम हुआ है।
(vi) कुछ इतिहासकार इनको प्रतिष्ठित परम्परा के अन्तर्गत ही मानते हैं किन्तु ऐसा उचित नहीं है। 'मार्क्स' स्वयं एक परम्परा के जनक हैं—किसी के अनुयायी नहीं हैं।
(vii) मार्क्स ने अनेक आकर्षक नारे दिये जो बहुत लोकप्रिय हो गये और श्रमिकों के लिए प्रेरणा के स्रोत बन गये।
(viii) मार्क्सवाद के भौतिक साधनों के सन्दर्भ में एक आदर्श राज्य की स्थापना की कल्पना की गयी।
(ix) मार्क्स ने इधर-उधर बिखरे हुए विचारों को एकत्रित कर एक कड़ी में पिरो दिया तथा उनको तर्क के आधार पर उनके स्वाभाविक निष्कर्ष पर पहुँचा दिया।
(x) मार्क्स के कतिपय विचारों को आधुनिक विकासवादी अर्थशास्त्रियों ने महत्त्वपूर्ण बताया है। ये विचार हैं—**प्राथमिक उन्नति** (Primary Progress) एवं **पूँजी संचयन** (Capital Accumulation)। इसके अतिरिक्त मार्क्स ने स्थायी विकास के लिए उपभोग एवं विनियोग में उचित सन्तुलन आवश्यक बताया है। **बेन्जामिन हिगिन्स** ने मार्क्स के सिद्धान्त में निम्नलिखित तत्त्वों को महत्त्वपूर्ण बताया है—
   (अ) मार्क्स ने ही सर्वप्रथम बेरोजगारी की समस्या को निवास मण्डल में स्थान दिया।
   (ब) उन्होंने स्थायी विकास के लिए उपभोग एवं विनियोग में उचित सन्तुलन आवश्यक बताया है।
   (स) मार्क्स ने पूँजीवाद में विकास की ऐतिहासिक अवस्थाओं का विश्लेषणात्मक विवेचन किया जिसकी सहायता से हम किसी देश के भूत व भविष्य को सरलता से समझ सकते हैं।

TOUCH 'n' PASS

प्र.4. 'क्या मिल समाजवादी थे'? इस कथन की व्याख्या कीजिए।
Was Mill a socialist? Explain this statement.

उत्तर

मिल
(Mill)

जैसा कि हम पहले देख चुके हैं कि जे०एस० मिल फ्रांसीसी समाजवादियों के लेखों से बहुत अधिक प्रभावित हुए थे—विशेष रूप से उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति व पूँजीवाद की आलोचना से। मिल ने स्वयं कहा था कि व्यक्तिगत सम्पत्ति व पूँजीवाद अन्याय पर आधारित है और न्याय से कभी भी ऐसा वातावरण उत्पन्न नहीं हो सकता जो व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के हित में हो। वे गरीब मजदूरों से सहानुभूति रखते थे। पूँजीवाद व साम्यवाद की परस्पर तुलना करते हुए मिल ने साम्यवाद का समर्थन किया। उसने कहा, "यदि साम्यवाद या समाज की वर्तमान स्थिति, जो कठिनाइयों व अन्याय से परिपूर्ण है, के बीच चुनाव की समस्या हो तो मैं पूँजीवादी समाज की अपेक्षा साम्यवाद को पसन्द करूँगा तथा साम्यवाद में मनुष्यों की मजबूरियाँ, उनकी कठिनाइयाँ व शोषण के सामने धूल के समान होंगी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसने पूरे बल से साम्यवाद और समाजवाद का पक्ष लिया था। जो लोग यह कहते थे कि समाजवाद ने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को नष्ट कर दिया था, उन लोगों को उत्तर देते हुए मिल ने कहा, "अधिकांश मानव जाति की वर्तमान दशा की अपेक्षा साम्यवाद के नियन्त्रण एक प्रकार की स्वतन्त्रता है।" एक स्थान पर मिल ने लिखा है, "मैं समाजवादी लेखकों के उस पर विचार से सहमत हूँ जो उन्होंने उस रूप को स्पष्ट करने में व्यक्त किया है जिसे औद्योगिक कार्य प्रगति करते हुए धारण करेंगे। मैं उनकी इस बात से भी सहमत हूँ कि अब वह समय भी आ गया है जबकि वह परिवर्तन किया जाना चाहिए तथा इसकी हर प्रकार से सहायता होनी चाहिए व प्रोत्साहन मिलना चाहिए। मैं समाजवादियों के इन क्रियात्मक उद्देश्यों के साथ सहानुभूति रखता हूँ किन्तु उनके स्पर्द्धा के विरोध वाले विचारों से बिल्कुल सहमत नहीं हूँ।" मिल ने अनुभव किया है, "साम्यवाद के अन्तर्गत पूँजीवाद की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्रता व सुविधा होगी। उसका विश्वास था कि एक दिन ऐसा समय अवश्य आयेगा जबकि शिक्षा, आदत और संस्कृति मानव जाति के चरित्र में ऐसा क्रान्तिकारी परिवर्तन पैदा कर देंगे कि जमीन खोदने और कपड़ा बुनने को भी इतना ही स्वदेश हितैषी समझा जाएगा जितना देश के लिए लड़ाई लड़ने को।"

यद्यपि इन सब आकस्मिक वाक्यों से यही प्रतीत होता है कि अपने जीवन के बाद के वर्षों में मिल समाजवादी हो गया था किन्तु उक्त विचारों के आधार पर मिल को समाजवादी मान लेना एक महान भूल होगी। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

(i) **स्वतन्त्र प्रतियोगिता का समर्थन**—मिल का विचार था कि स्वतन्त्र प्रतियोगिता नितान्त आवश्यक होती है और व्यक्ति के आवश्यक अधिकारों में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता। स्वतन्त्र प्रतियोगिता का मिल ने इन शब्दों में समर्थन किया, "प्रतियोगिता पर रोक लगाना बुरा है और उसका विस्तार करना सदैव ही लाभप्रद होता है।" इस विषय पर मिल समाजवाद के कट्टर विरोधी थे जैसा कि उन्होंने कहा, "मैं उनकी (समाजवादी) प्रतियोगिता विरोधी सर्वाधिक प्रत्यक्ष तथा महत्त्वपूर्ण शिक्षा से पूर्णरूपेण असहमत हूँ।"

(ii) **व्यक्तिगत सम्पत्ति में विश्वास**—समाजवाद का मूल सिद्धान्त यह है कि सम्पत्ति पर समाज का अधिकार होना चाहिए, व्यक्ति का नहीं। मिल व्यक्तिगत सम्पत्ति के सिद्धान्त को नहीं छोड़ सके, भले ही उसके नियन्त्रण का उन्होंने समर्थन किया। कोई भी व्यक्ति जो व्यक्तिगत सम्पत्ति (Private Property) का समर्थक है, समाजवादी कहलाने का अधिकारी नहीं है।

(iii) **राष्ट्रीयकरण का विरोध**—राष्ट्रीयकरण को, जो समाजवाद की एक आधारशिला है, उनकी विचारधारा में कोई स्थान प्राप्त नहीं है। मिल ने स्पष्ट किया है कि व्यक्तिगत उत्पादन प्रणाली के अन्तर्गत उत्पादन सस्ता एवं उत्तम होता है।

(iv) **व्यक्ति की स्वतन्त्रता का समर्थन**—समाजवाद में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर अंकुश लगाना अनिवार्य होता है परन्तु मिल ने समाजवादी विचारों में भी व्यक्ति की स्वतन्त्रता को महत्त्व दिया है। मिल का यह विश्वास था कि एक दिन शिक्षा, आदत और संस्कृति के प्रभाव से मनुष्य का चरित्र इतना बदल जाएगा कि अपने देश के लिए हल जोतना और कपड़ा बुनना उतना ही देशभक्ति का कार्य समझा जाएगा जितना अपने देश के लिए लड़ना-एक सपना मात्र है।

इसके अतिरिक्त मिल लोकतन्त्र के बड़े समर्थक और तानाशाही कट्टर विरोधी थे।

उक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि मिल समाजवादी नहीं थे। वह केवल समाजवादियों के व्यावहारिक प्रस्तावों से ही सहमत थे। मिल केवल यही चाहता था कि सामाजिक दशाओं को सुधारा जाये। अधिक-से-अधिक यह कहा जा सकता है कि उसने केवल समाजवादियों जैसी बातें की थीं। वह सेन्ट साइमन, रॉबर्ट्स या काल मार्क्स जैसा समाजवादी नहीं था क्योंकि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता

व प्रतियोगिता को नितान्त आवश्यक समझते थे। उसके लिए एक बड़ी समस्या यह थी कि "किस प्रकार सामूहिक स्वामित्व द्वारा विश्व के कच्चे माल तथा संयुक्त श्रम के लाभों के समान वितरण करने की अधिकतम व्यक्तिगत स्वतन्त्रता समन्वित की जाये।" इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने तीन सुझाव दिये थे—(अ) मजदूरी प्रणाली के स्थान पर उत्पादकों का एक सहकारी संगठन बनाना; (ब) भूमिकर के द्वारा लगान का समाजीकरण करना; (स) उत्तराधिकार के नियमों को प्रतिबन्धित करके धन की विषमताओं को कम करना।

प्र.5. मिल के आर्थिक विचारों के महत्त्व तथा प्रभावों का उल्लेख कीजिए।
Mention the significance and effects of Mill's economic ideas.

उत्तर

आर्थिक विचारधारा में मिल का योगदान
(Contribution of Mill in Economic Thoughts)
अथवा मिल के आर्थिक विचारों का महत्त्व तथा प्रभाव
(Significance and Effects of Mill's Economic Ideas)

आर्थिक विचारों के इतिहास में मिल के योगदान का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है—

1. **अर्थशास्त्र का संश्लेषण** (Synthesis of Economics)—यद्यपि रिकार्डो के समान मिल ने अर्थशास्त्र के नवीन सिद्धान्तों का विश्लेषण बहुत अधिक नहीं किया परन्तु उनका संश्लेषण (Synthesis) और संगठन सम्बन्धी कार्य बहुत महत्त्व रखता है। उन्होंने प्रतिष्ठित विचारों में नवीन आलोचनाओं के आधार पर संशोधन किया और कई स्थलों पर समन्वय करने में सफल भी हुए हैं।
2. **अर्थ-विज्ञान का संस्थापक** (Profounder of Economics)—**जीड** एवं **रिस्ट** ने मिल को अर्थ-विज्ञान का संस्थापक माना है। मिल ने अर्थशास्त्र के नियमों को भी प्राकृतिक विज्ञान के नियमों से भिन्न नहीं माना है।
3. **अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों का विकास** (Development of Economics Theories)—मिल की भाषा-शैली रिकार्डो, स्मिथ और माल्थस से अधिक सरल थी। उसने प्रतिष्ठित सम्प्रदाय के द्वारा दिए गए आर्थिक विचारों का विश्लेषण सरल ढंग से किया। जनसंख्या, मजदूरी, रोजगार, लगान, मुद्रा परिमाण सिद्धान्त, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का सिद्धान्त मूल्य का सिद्धान्त आदि पर उनका काफी स्पष्ट वर्णन है। मजदूरी निधि का सिद्धान्त यद्यपि उनसे पूर्व भी बताया जा चुका था परन्तु **मिल** जैसी व्यवस्था किसी ने नहीं की। इसी कारण इसे मिल के नाम से ही सम्बद्ध कर दिया जाता है।
4. **समन्वयवादी दृष्टिकोण** (Co-ordinate Approach)—मिल समन्वयवादी थे। उन्होंने विभिन्न विचारधाराओं के बीच समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की थी। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के साथ समाजवाद, मुक्त व्यापार और अर्थ नीति के साथ आर्थिक न्याय का समन्वय उन्होंने खोजने का प्रयास किया था।
5. **लेखन शैली**—उनका साहित्य केवल ज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से ही महत्त्व नहीं रखता वरन् तत्कालीन गद्य लेखन में भी उनके स्तर का कोई लेखक नहीं था। अत: लेखन शैली में भी 'मिल' अद्वितीय है। कठिन सिद्धान्तों का सरल और रोचक ढंग से वर्णन करना वस्तुत: उनके लिए ही सम्भव था। इस विषय में एडम स्मिथ भी उनका मुकाबला नहीं कर सकते हैं।

प्रो० हेने के मतानुसार, प्रो० जे०एस० मिल ने आर्थिक विचारों के इतिहास के लिए दो भेंट दी हैं—

(अ) मिल ने उपयोगिता का विचार प्रचलित कर परम्परावादियों को प्राकृतिक नियम तथा जन्म-सिद्ध अधिकारों की बात करने से रोक दिया।

(ब) उसने व्यक्ति एवं समाज के बीच के सम्बन्ध को महत्ता प्रदान की और साथ-ही-साथ सामाजिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत निहित सिद्धान्त का विकास किया व सरकार तथा उद्योगों के बीच सम्बन्ध को स्पष्ट किया।

प्र.6. मिल के विचारों की कमियों को बताइए।
State the Shortcomings of Mill's economic thoughts.

उत्तर

मिल के विचारों की कमियाँ
(Shortcomings of Mill's Economic Thoughts)

संक्षेप में, मिल के विचारों की कमियाँ निम्नलिखित हैं—

1. वह उपयोगिता की उचित व्याख्या न कर सका।

TOUCH 'n PASS

2. वह उपभोग एवं उत्पादन के क्षेत्र में सीमान्त विश्लेषण को विकसित नहीं कर सका।
3. मूल्य के आधार पर वह उत्पादन तथा वितरण के नियमों में सम्बन्ध स्पष्ट करने में सफल न हो सके। उन्होंने यह सोचकर महान् भूल की कि मूल्य सिद्धान्त उनके हाथों पूर्णता की अवस्था प्राप्त कर चुका है। वास्तविकता तो यह है कि मूल्य विशेषण का रूप आज भी अन्तिम नहीं है।
4. मिल परम्परावादी अर्थशास्त्री और समाजवादी विचारधारा में सम्बन्ध स्थापित करना चाहते थे जिसका परिणाम यह हुआ कि इसमें अनेक तर्कपूर्ण मतभेद उत्पन्न न हो गये। **शाज** (Schatz) के मतानुसार, "यद्यपि मिल व्यक्तिवाद के अवतार थे किन्तु उत्तराधिकार पर उनके द्वारा प्रस्तावित सीमाओं के कारण व्यक्तिवादियों ने ही उनकी आलोचना की।"
5. वह अर्थशास्त्र को सामाजिक अर्थशास्त्र में बदलना चाहते थे किन्तु इसमें उन्हें कोई विशेष सफलता नहीं मिली।
6. अर्थशास्त्र की अध्ययन की विधि के सम्बन्ध में उनके विचार असंगत प्रतीत होते हैं। अपनी पुस्तक *'Unsettled Questions'* में उसने आगामी प्रणाली को लाभप्रद बताया लेकिन दूसरी पुस्तक 'System of Logic' में उन्होंने आगमन और निगमन दोनों ही प्रणालियों के मिश्रण को उपयोगी बताया है।

दिए गए दोषों के होते हुए भी ये आर्थिक विचारों को इतिहास के एक महान व्याख्याकर्त्ता रूप में मिल का विशेष स्थान है। अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए जो दृष्टिकोण उसने अपनाया था, वह अंग्रेजी एकेडेमिक परम्परा की विशेषता बनकर रह गया। प्रो. **हेने** के शब्दों में "कोई भी विद्यार्थी मिल के विचारों को समझे बिना आर्थिक विचारधारा के इतिहास को नहीं समझ सकता। सर्वप्रथम उसकी कृतियों का एक पीढ़ी से भी अधिक प्रभाव रहा। वह एक महान व्याख्याकर्त्ता था तथा उसका स्थिर सिद्धान्त अंग्रेजी बोले जाने वाले जगत में आर्थिक सिद्धान्तों के मार्गदर्शी विचार के रूप में लम्बे समय तक स्वीकार किया गया।" इसी प्रकार **लॉर्ड मार्ले** ने सन् 1873 में लिखा था, "बीस वर्षों से किसी भी व्यक्ति ने, जो गम्भीर बौद्धिक विचार प्राप्त करने के लिए तत्पर रहा, मिल के उपदेशों से प्रभावित हुए बिना ऑक्सफोर्ड को नहीं छोड़ा है।"

प्र.7. मिल के विचारों पर किन तत्त्वों का प्रभाव पड़ा। बताइए।
What elements effected the Mill's thoughts? Explain.

उत्तर

मिल के विचारों पर प्रभाव
(Effects on Mill's Thoughts)

मिल के विचारों पर जिन तत्त्वों का प्रभाव पड़ा, उनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं—

1. **परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के प्रभाव** (Influence of Classical Economists)—**जॉन स्टुअर्ट मिल** के पिता जेम्स मिल स्वयं एक परम्परावादी अर्थशास्त्री डेविड रिकार्डो के परम मित्रों में से थे। अत: होनहार पुत्र जॉन स्टुअर्ट मिल पर अपने पिता का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। 14 वर्ष की आयु में मिल (Mill) ने एडम स्मिथ और रिकार्डो की पुस्तकों का अध्ययन कर लिया और 'राजनीतिक अर्थव्यवस्था के तत्त्व' नामक पुस्तक लिखने में उन्होंने अपने पिता की सहायता की थी।

   मिल सन् 1820 में जब फ्रांस गये तो प्रमुख परम्परावादी अर्थशास्त्री **जे० बी० से** के साथ ही ठहरे, स्वभावत: इस सम्पर्क ने भी मिल पर प्रभाव डाला।

   उपयोगितावादी दार्शनिक बेन्थम भी मिल के पिता के अच्छे दोस्त थे। कहा जाता है कि मिल का सामाजिक कार्यक्रम बेन्थम के उपयोगितावाद का परिणाम था।

   इस प्रकार कहा जा सकता है कि मिल का पालन-पोषण ही ऐसी परिस्थितियों में हुआ कि उन पर स्मिथ, रिकार्डो, जे० बी० से जैसे प्रमुख परम्परावादी अर्थशास्त्रियों का प्रभाव पड़ना बहुत ही स्वाभाविक था।
2. **कोलरिज का प्रभाव** (Influence of Coleriodge)—कोलरिज अपने युग का एक महान् कवि एवं सुप्रसिद्ध दार्शनिक था। अपनी रचनाओं में उन्होंने आर्थिक विचारों का सुन्दर ढंग से समावेश किया था। व्यक्तिगत सम्पत्ति और राजकीय हस्तक्षेप न करने की नीति के विचारों को उसने व्यक्त किया था। मिल ने कोलरिज की रचनाओं का अध्ययन किया था। कोलरिज की कविताएँ उसे इतनी अच्छी लगीं कि उसने उनके विचारों को हृदय में बसा लिया और ये विचार उनके लेखों में यत्र-तत्र मिलते हैं।
3. **समाजवादी विचारों का प्रभाव** (Impact of Socialist Thoughts)—जॉन स्टुअर्ट मिल को अपने बाल्यकाल में ही साधु साइमन और उसके अनुयायियों के अध्ययन का अवसर मिल गया था। इस प्रकार साइमन के समाजवादी विचारों

का गहरा प्रभाव पड़ा। उनकी स्त्री ने लिखा है कि मिल समाजवादी विचारों से इतने प्रभावित हुए थे कि उन्होंने समाजवाद पर एक पुस्तक लिखनी शुरू कर दी थी जिसे वह जीवन काल में पूर्ण नहीं कर पाये थे। मरणोपरान्त इस पुस्तक के लिखे हुए भाग को 'Fortnightly Review' पत्रिका में प्रकाशित कराया गया।

4. **ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रभाव** (Effects of East India Company)—अपने जीवन काल में जॉन स्टुअर्ट मिल ने सन् 1823 से 1858 तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नौकरी की थी। इस नौकरी के कारण उन्हें व्यापारिक जगत का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त हो सका था। **प्रो० हेने** के विचारानुसार, "यदि मिल ने यह नौकरी न की होती तो अपने आर्थिक विचारों व सिद्धान्तों की व्याख्या में व्यावहारिक जीवन सम्बन्धी अनेक त्रुटियाँ कर गये होते।"
5. **अन्य प्रभाव** (Other Effects)—उपरोक्त प्रभावों के अतिरिक्त आगस्ट कॉम्टे (August Comte) के विचारों का प्रभाव भी मिल पर पड़ा है। काम्टे के प्रत्यक्षवाद से भी मिल को प्रेरणा मिली थी। काम्टे के प्रभाव से ही मिल ने गतिशील समाज की स्थापना की थी। इसके अतिरिक्त सन् 1848 की फ्रांस की क्रान्ति, श्रम संघ तथा चार्टिस्ट आन्दोलनों ने भी उसके विचारों को प्रभावित करने में कोई कम भाग नहीं लिया था। इसके प्रभाव से ही मिल व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का समर्थक बना था। साथ ही तत्कालीन आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियों ने भी मिल को अत्यधिक प्रभावित किया।

प्र.8. मिल के आदर्श समाजवादी विचार की व्याख्या कीजिए।
Explain Mill's ideal socialist idea.

उत्तर

मिल के आदर्श समाजवादी विचार
(Ideal Socialist Ideas of Mill)

यद्यपि **जे०एस० मिल** ने अनेक परम्परावादी सिद्धान्तों को स्वीकार किया है जिसके कारण उसे परम्परावादी कहा जाता है परन्तु मिल अपने युग की विचारधाराओं और परिस्थितियों से अछूते नहीं रहे हैं। उन्होंने **सिस्मोंडी, काम्टे** और **सेन्ट साइमन** के समाजवादी विचारों से प्रभावित होकर कुछ समाजवादी सुझाव प्रस्तुत किये हैं। यह स्मरणीय है कि मिल को पूर्णरूपेण समाजवादी विचारक नहीं कहा जा सकता। इसका कारण यह है कि मिल के समाजवादी विचारों में भी व्यक्तिवाद की छाप दिखायी देती है। यही कारण है कि **प्रो० जीड** एवं **रिस्ट** ने मिल के समाजवादी विचारों को व्यक्तिगत समाजवादी कार्यक्रम (Individualist Socialist Programme) कहकर पुकारा है। निश्चय ही मिल के समाजवादी विचार बड़े अनूठे थे। वे सभी सामूहिक कार्यों के बीच भी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को प्राप्त करना चाहते थे। उसने स्वयं लिखा है कि "किस प्रकार सामूहिक स्वामित्व द्वारा विश्व के कच्चे माल तथा संयुक्त रूप से लाभों के समान वितरण के साथ कार्य करने की अधिकतम व्यक्तिगत स्वतन्त्रता समन्वित की जाये।"

उक्त कथन के साथ ही मिल ने अपनी आत्मकथा में अपने कार्यक्रम की पूर्ति के लिए निम्न तीन विचार प्रस्तुत किये—

1. मजदूरी प्रणाली का उन्मूलन और सहकारी उत्पादक संगठन की स्थापना।
2. भूमि कर के द्वारा लगान का समाजीकरण करना।
3. उत्तराधिकार के नियमों को प्रतिबन्धित करके धन की विषमताओं को कम करना।

1. **मजदूरी प्रणाली का उन्मूलन** (Abolition of Wage System)—मिल का विचार था कि मजदूरी प्रणाली में श्रमिक वह रुचि नहीं रखता जो अपने श्रम के उत्पादन में रखता है। अत: यह प्रथा व्यक्तिगत उन्नति के लिए अहितकर है। इसलिए उसे अवलिम्ब समाप्त कर देना चाहिए और उसके स्थान में श्रमिकों का ऐसा संगठन स्थापित करना चाहिए जिसमें समानता का व्यवहार हो। पूँजी के स्वामी स्वयं श्रमिक हों और उत्पादन कार्य स्वयं श्रमिकों द्वारा चुने प्रबन्धकों की देखरेख में हो। इस प्रकार वे पूँजीपतियों द्वारा श्रमिकों का शोषण करने के लिए उत्पादक सहकारी समितियों के निर्माण का सुझाव प्रस्तुत करते हैं। अपने सहकारिता के इस विचार के लिए फ्रांसीसी समाजवादियों के ऋणी थे।
2. **लगान का समाजीकरण** (Socialisation of Rent)—जे०एस० मिल व्यक्तिवाद के समर्थक थे इसलिए वे चाहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति को उसके परिश्रम के अनुसार आय मिलनी चाहिए। लगान को उन्होंने अनुपार्जित आय माना क्योंकि उसे प्राप्त करने के लिए भूमि स्वामी को कोई परिश्रम नहीं करना पड़ता। मिल के अनुसार, भूमिस्वामी को बिना परिश्रम के ही प्राप्त होने वाले 'लगान' की आय न्यायसंगत नहीं है। इस सम्बन्ध में मिल ने प्रकृतिवादियों—एडम स्मिथ, रिकार्डो, माल्थस तथा सीनियर सभी के लगान सम्बन्धी विचारों को निरर्थक माना। मिल का कथन था कि लगान चाहे उचित वातावरण (सीनियर) के कारण या प्रकृति के संयोग से (प्रकृतिवादियों व एडम स्मिथ के अनुसार) या जनसंख्या की वृद्धि के कारण (रिकार्डो व माल्थस के अनुसार) उदय हुआ हो लेकिन वह भूमिस्वामी की अनुपार्जित आय है।

TOUCH 'n' PASS

लगान को समाप्त करने के उद्देश्य से मिल ने सरकार द्वारा भूमिकर लगाने का सुझाव दिया। लगान की वृद्धि के साथ इस कर में भी वृद्धि होती रहनी चाहिए। भूमि कर अन्ततः लगान को समाप्त कर देगा। लगान के समाजीकरण का यह विचार मिल को उनके पिता ने सुझाया था।

मिल स्वयं यह समझते थे कि उनका विचार पूर्ण होने में एक लम्बा समय लगेगा अतः यह सुझाव देते हैं कि यदि लगान के समाजीकरण की योजना शीघ्र ही लागू न की जा सके तो कुछ समय के लिए कृषक स्वामित्व (Peasant Ownership) प्रणाली को अपनाया जाये। इससे कृषकों की बुद्धि का विकास होगा, व्यक्तिगत साहस की भावना में वृद्धि होगी और लगान में अन्याय की सीमा कम हो जाएगी। इसके अतिरिक्त लोगों में सहयोग के साथ कार्य करने की भावना जाग्रत होगी।

3. **उत्तराधिकार पर प्रतिबन्ध** (Restriction of Inheritance)—मिल का विचार था कि उत्तराधिकार नियम भी स्वतन्त्र प्रतियोगिता में बाधा उत्पन्न करते हैं क्योंकि पैतृक सम्पत्ति के कारण प्रतियोगिता करने वाले सामान्य स्थिति में नहीं रह पाते। चूँकि मरने के पश्चात् भी सम्पत्ति बेचने के अधिकार को छीनना व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को कम करने के बराबर है, इसलिए उसका सुझाव था कि व्यक्तियों को निर्धारित सीमा से अधिक सम्पत्ति उत्तराधिकार में प्राप्त करने के अधिकार को अवैधानिक घोषित कर दिया जाये और शेष सम्पत्ति पर राज्य का अधिकार होना चाहिए। अन्य शब्दों में, मिल के मतानुसार सरकार को चाहिए कि वह सम्पत्ति की एक सीमा निर्धारित कर ले और उससे अधिक सभी सम्पत्ति को अपने अधिकार में ले ले। इस सम्बन्ध में विचार प्रकट करते हुए **मिल** ने कहा, "यदि मैंने इस सम्बन्ध में कानूनी संहिता (Code of Laws) जो कि मुझे अपने में सर्वोत्तम प्रतीत होती है, बनायी तो प्रचलित जनमत और भावनाओं पर बिना ध्यान दिये वसीयत करने के अधिकार पर रोक लगाने के स्थान पर वसीयत या उत्तराधिकार द्वारा प्राप्त करने के अधिकार को सीमित करने को अच्छा समझूँगा। प्रत्येक व्यक्ति या स्त्री को वसीयत द्वारा अपनी कुल सम्पत्ति को देने का अधिकार होना चाहिए किन्तु उसे किसी एक व्यक्ति को एक निश्चित अधिकतम सीमा से अधिक धनी बनाने का अधिकार नहीं होना चाहिए।" यहाँ पर मिल राबर्ट ओवन, राबर्ट्स की अपेक्षा अधिक समाजवादी प्रतीत होते हैं। यहाँ हम मिल को सेन्ट साइमन के प्रभाव में पाते हैं।

मिल द्वारा प्रतिपादित उपरोक्त विचारधाराओं से स्पष्ट हो जाता है कि मिल के समाजवादी कार्यक्रम में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को विशेष स्थान प्रदान किया गया है।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. सिस्मोंडी के आर्थिक विचारों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
Explain in detail the economic ideas of Sismondi.

उत्तर

सिस्मोंडी के आर्थिक विचार
(Economic Ideas of Sismondi)

सिस्मोंडी के आर्थिक विचार मुख्य रूप से प्रतिष्ठित आर्थिक विचारधारा की आलोचना के रूप में व्यक्त किये गये हैं। उन्होंने यह बताने का प्रयत्न किया कि एडम स्मिथ एवं रिकार्डो के विचार व्यावहारिक जीवन से सम्बन्धित नहीं हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि सिस्मोंडी ने राजनीतिक अर्थविज्ञान की प्रकृति एवं उद्देश्य तथा इसके सैद्धान्तिक क्षेत्र में अत्युत्पादन के संकट की समस्या का विश्लेषण किया है। उनके विचारों का क्रमबद्ध ढंग से अध्ययन निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है—

1. राजनीतिक अर्थव्यवस्था का क्षेत्र एवं उद्देश्य (Scope and Aim of Political Economy),
2. अर्थशास्त्र के अध्ययन की प्रणाली (Method of Study of Economics),
3. अत्युत्पादन का सिद्धान्त (Theory of Overproduction),
4. प्रतियोगिता सम्बन्धी विचार (Views on Competition),
5. मशीनों के दोष (Evils of Machinery),
6. जनसंख्या सम्बन्धी विचार (Ideas relating to Population),
7. सरकार द्वारा हस्तक्षेप (Government Interference),

8. आर्थिक संकट (Economics Crisis) एवं
9. सुधार योजनाएँ (Reform Projects)।

अब हम क्रमशः इन पर विचार करेंगे।

1. राजनीतिक अर्थव्यवस्था का क्षेत्र एवं उद्देश्य (Scope and Aim of Political Economy)

राजनीतिक अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में एवं उद्देश्य को लेकर सिस्मोंडी एवं प्रतिष्ठित विचारधारा में अन्तर था परन्तु जहाँ तक अर्थशास्त्र के सैद्धान्तिक पक्ष का प्रश्न है, वहाँ विरोध नहीं था। प्रतिष्ठित सम्प्रदाय का विरोध करते हुए सिस्मोंडी ने कहा कि अर्थशास्त्र धन का विज्ञान नहीं बल्कि उसका मुख्य विषय मनुष्य या उसका भौतिक कल्याण है। सिस्मोंडी प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की इस बात से बहुत अप्रसन्न थे कि उन्होंने मनुष्य को त्यागकर धन को ही सम्पूर्ण महत्त्व प्रदान किया। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की अर्थशास्त्र की धन सम्बन्धी परिभाषा का लाभ पूँजीपतियों ने उठाकर श्रमिकों का शोषण करना आरम्भ कर दिया। इस शोषण का आरोप अर्थशास्त्र पर लगाया गया और अर्थशास्त्रियों को शोषणकर्त्ता कहकर पुकारा गया। सिस्मोंडी ने इस दोष को पहचाना। इसलिए सिस्मोंडी का यह विचार था कि मानव कल्याण ही राष्ट्र का वास्तविक धन है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रतिष्ठित सम्प्रदाय ने तो धन को बढ़ाने का मार्ग दिखाया लेकिन सिस्मोंडी ने मानव-कल्याण में वृद्धि करने का पथ दिखाया। उनके अनुसार अर्थशास्त्र की परिभाषा इस प्रकार हो सकती है "अर्थशास्त्र, अपने सर्वाधिक व्यापक रूप में उदारता और दान का ही सिद्धान्त है। जिस सिद्धान्त से मानव-जाति की खुशहाली नहीं बढ़ती है, वह इस विज्ञान में स्थान प्राप्त करने योग्य नहीं है।"

संक्षेप में कहा जा सकता है कि सिस्मोंडी ने राजनीतिक अर्थव्यवस्था का उद्देश्य बताते हुए इस बात पर बल दिया कि व्यक्तियों में धन के उचित वितरण द्वारा मानव कल्याण ही प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए। यहाँ कहा जा सकता है कि अर्थशास्त्र को मानव कल्याण से सम्बन्धित करने वाला सिस्मोंडी प्रथम अर्थशास्त्री था।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सिस्मोंडी के अनुसार अर्थशास्त्र का क्षेत्र भी प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों से भिन्न था। जहाँ प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री को केवल एक विज्ञान मानते थे, वहाँ सिस्मोंडी उसको कला मानते थे। सिस्मोंडी ने कहा कि अर्थशास्त्र का क्षेत्र इतना व्यापक है कि सामाजिक सम्बन्धों को समझने के लिए जो अर्थशास्त्र में अध्ययन का विषय है, एक बड़े विस्तृत अनुभव और ऐतिहासिक ज्ञान की आवश्यकता है। इसका सम्बन्ध न केवल धन से है बल्कि मनुष्य से सम्बन्धित धन से है। यह मनुष्य की क्रियाओं का अध्ययन कल्याण की दृष्टि से करता है। इसी कारण वह अन्य समस्याओं की अपेक्षा धन के उत्पादन और वितरण की समस्या को और सरकारी हस्तक्षेप को उचित समझता था।

2. अर्थशास्त्र के अध्ययन की प्रणाली (Method of Study of Economics)

सिस्मोंडी के अनुसार अर्थशास्त्र के संस्थापकों की एक भारी भूल यह थी कि उन्होंने कुछ सामान्य नियमों को सच मानकर उन्हें सभी स्थितियों में लागू करने का प्रयत्न किया। सिस्मोंडी चाहते थे कि विज्ञान को अनुभव, इतिहास तथा परीक्षण पर आधारित होना चाहिए। मानव समाज की दशाओं का विस्तृत अध्ययन किया जाना चाहिए तथा उस समय की दशाओं को ध्यान में रखना चाहिए जिनमें एक मनुष्य रहता है, जिस देश का वह निवासी है तथा जो व्यवसाय वह करता है। **जीड** एवं **रिस्ट** भी सिस्मोंडी के विचारों का समर्थन करते हुए कहते हैं कि किसी मनुष्य की पूर्ण रूप से कल्पना करने और उसके ऊपर आर्थिक परिस्थितियों का प्रभाव आँकने के लिए देश, काल तथा व्यवसाय का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। **सिस्मोंडी** के मतानुसार अर्थशास्त्र का विषय क्षेत्र इतना व्यापक है कि सामाजिक सम्बन्धों की विस्तृत व्याख्या करने के लिए उसे अनुभव तथा ऐतिहासिक ज्ञान पर आधारित होना चाहिए। इस प्रकार सिस्मोंडी निगमन तथा अमूर्त प्रणाली के स्थान पर आगमन, ऐतिहासिक तथा प्रयोगात्मक प्रणाली के अनुयायी थे। इनकी इस अध्ययन पद्धति के कारण ही इन्हें ऐतिहासिक सम्प्रदाय का मार्गदर्शक कहा जाता है। इसी धारणा के ऊपर आधारित होकर जर्मन के ऐतिहासिक सम्प्रदाय की नींव रखी गयी थी।

अर्थशास्त्र के अध्ययन के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण दो बातें निम्नलिखित हैं—

(अ) यद्यपि यह सत्य है कि सिस्मोंडी आगमन प्रणाली के अनुयायी थे परन्तु उन्हें इस प्रणाली का जन्मदाता नहीं कहा जा सकता क्योंकि इनसे पूर्व भी इस पद्धति को एडम स्मिथ और माल्थस द्वारा अपनाया जा चुका था।

(ब) सिस्मोंडी का आगमन पद्धति अपनाने का विचार केवल व्यावहारिक समस्याओं के अध्ययन तक ही सीमित है। वे स्वयं इस बात को स्वीकार करते हैं कि यदि अर्थशास्त्री को आर्थिक जगत के सामान्य पक्ष का विश्लेषण करना है तो अध्ययन की निगमन या अमूर्त प्रणाली को नहीं भुलाया जा सकता। सिस्मोंडी ने स्वयं अपने द्वारा किये गये आर्थिक विश्लेषण में कुछ स्थानों पर निगमन प्रणाली का प्रयोग किया है।

3. अत्युत्पादन का सिद्धान्त (Theory of Overproduction)

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों—एडम स्मिथ, रिकार्डो, जे०बी० से आदि का मत था कि अधिक उत्पादन की समस्या देश में कभी उत्पन्न नहीं हो सकती क्योंकि "पूर्ति स्वयं अपनी माँग उत्पन्न कर लेती है।" प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का यह विश्वास था कि उत्पादन की मात्रा हमेशा आवश्यकता के अनुसार ही रहती है और वह आवश्यकता से कम या अधिक नहीं होने पाती।

परन्तु सिस्मोंडी प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री के इस निष्कर्ष से सहमत नहीं है कि अर्थव्यवस्था में कभी भी अत्युत्पादन की स्थिति उत्पन्न नहीं हो सकती। सिस्मोंडी के अनुसार स्वतन्त्र प्रतियोगिता पर आधारित अर्थव्यवस्था में माँग और पूर्ति का 'साम्य' कभी भी व्यावहारिक जीवन में देखने को नहीं मिलता। सिस्मोंडी का मत था कि पूर्ति में वृद्धि करना सरल है लेकिन जब किसी वस्तु की माँग घट जाती है और पूर्ति पूर्ववत् ही रहती है तो वस्तु का उत्पादन माँग से अधिक हो जाता है जिससे अत्युत्पादन की समस्या उत्पन्न हो जाती है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का यह मत था कि उत्पादक वर्ग जब मूल्यों के गिरने से हानि होने लगती है तो वे अपने आप ही वस्तु का उत्पादन कम कर देते हैं, इसलिए अत्युत्पादन की समस्या नहीं रहती परन्तु सिस्मोंडी का मत है कि उत्पादन को घटाना इतना सहज एवं सरल नहीं है जितना कि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने सोचा है। उत्पादन को घटाने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। जैसे हमको उत्पादन के साधनों को एक व्यवसाय से हटाकर दूसरे व्यवसाय में लगाना पड़ेगा परन्तु ऐसा करना सरल नहीं है। एक व्यवसाय में जब पूँजी एक बार लगा दी जाती है, वह दूसरे उत्पादन में काम नहीं आती। उदाहरणार्थ, प्रिंटिग मशीनें कभी भी कपड़ा बुनने के काम में नहीं आ सकती। अत: पूँजी की गतिशीलता में कठिनाई होती है। इसी प्रकार से एक व्यवसाय का श्रमिक दूसरे व्यवसाय में सरलतापूर्वक नहीं जा सकता क्योंकि उसने प्रथम व्यवसाय में काफी समय एवं पैसा खर्च करके कार्य सीखा है और अधिक समय तक कार्य करने के कारण वह श्रमिक उस कार्य में कुशल हो गया है। ऐसी स्थिति में यदि वह किसी अन्य व्यवसाय में भेजा जाता है तो उसे फिर से कार्य सीखना पड़ेगा और दूसरे व्यवसाय में नया होने के कारण उसकी कार्यकुशलता भी घट जाएगी। अत: श्रमिक पुराने व्यवसाय में ही कार्य करना पसन्द करेगा। इस प्रकार से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पूर्ति सरलतापूर्वक नहीं घटायी जा सकती। अत: सिस्मोंडी ने बताया कि स्वतन्त्र प्रतियोगिता पर आधारित अर्थव्यवस्था में अत्युत्पादन की स्थिति का उत्पन्न होना स्वाभाविक है और हमें उसके खतरों से बचने के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

अपने इस कथन में जहाँ एक ओर सिस्मोंडी ने इस स्वयं-सन्तुलित सिद्धान्त से बचने का सुझाव दिया है, वहीं दूसरी ओर यह भी बताया है कि वस्तु की पूर्ति घटायी अवश्य जा सकती है परन्तु इसके लिए एक लम्बे समय की आवश्यकता है। यह पूर्ति किस प्रकार से लम्बे समय में कम होगी, इस पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने बताया है कि वस्तु की कीमत में कमी आने का परिणाम यह होगा कि श्रमिकों की मजदूरी कम होती जाएगी और उत्पादकों की हानि भी बढ़ती जाएगी। फलत: यह होगा कि कुछ उद्योगपति एवं श्रमिक नष्ट हो जाएँगे। उद्योगपतियों और श्रमिकों की संख्या कम होने लगेगी, फलत: उत्पादन भी घटेगा। इस प्रकार पूर्ति माँग के अनुरूप हो जाएगी परन्तु इसके लिए एक लम्बे समय की आवश्यकता होगी परन्तु इस बीच में श्रमिकों और उत्पादकों के समक्ष आने वाली कठिनाइयाँ समाज के हित में घातक सिद्ध होगी। इस अत्युत्पादन के कारण बेरोजगारी, आर्थिक संकट आदि अनेक विषम समस्याओं का जन्म होगा। सिस्मोंडी ने अत्युत्पादन की कटु आलोचना की और बताया कि ऐसी स्थिति समाज में कभी नहीं आनी चाहिए। इस परिस्थिति से बचने के लिए सरकारी हस्तक्षेप नितान्त आवश्यक है।

अत्युत्पादन किस प्रकार उत्पन्न हो जाता है, इस सम्बन्ध में सिस्मोंडी ने दो विचार व्यक्त किये हैं—(i) वार्षिक आय और वार्षिक उत्पादन में अन्तर होता है; (ii) एक वर्ष की वार्षिक आय अगले वर्ष के वार्षिक उत्पादन को खरीदने के लिए प्रयोग में लायी जाती है। सिस्मोंडी का मत था कि जब किसी वर्ष उत्पादन पिछले वर्ष की आय से बढ़ जाता है, तब सभी वस्तुओं की खपत नहीं हो पाती। फलत: कुछ वस्तुएँ अनबिकी रह जाती है और अत्युत्पादन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार सिस्मोंडी अत्युत्पादन के भय से चिन्तित है जो उनके अनुसार श्रम-विभाजन और बड़े पैमाने के उत्पादन का प्रत्यक्ष परिणाम है। सिस्मोंडी के अनुसार माँग उत्पादन से पहले आनी चाहिए किन्तु वास्तविक स्थिति इसके बिल्कुल भिन्न है। पूँजीवादी उत्पादन माँग पर आधारित नहीं होता बल्कि वह इस बात पर आधारित होता है कि उत्पादकों के पास कितनी पूँजी उपलब्ध है और इसलिए माँग में पर्याप्त वृद्धि हुए बिना ही उत्पादन बढ़ता जाता है और समाज में अत्युत्पादन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसीलिए सिस्मोंडी को अपने चारों ओर संसार में प्रत्येक स्थान पर बाजार ऐसी वस्तुओं से भरे नजर आते हैं जिनके लिए कोई उपभोक्ता नहीं है। यह सब नतीजा उत्पादन को माँग के अनुसार न करके उपलब्ध पूँजी के अनुसार करने का है।

4. प्रतियोगिता सम्बन्धी विचार (Views on Competition)

सिस्मोंडी ने बताया कि अत्युत्पादन की स्थिति पैदा करने में स्वतन्त्र प्रतियोगिता का काफी सीमा तक हाथ रहता है अर्थात् उन्होंने प्रतियोगिता को सदैव लाभप्रद नहीं माना लेकिन **एडम स्मिथ** तथा अन्य प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने बताया कि कोई भी व्यापार या

श्रम-विभाजन यदि लोगों के लिए लाभप्रद है तो जितनी अधिक प्रतियोगिता होती है, लाभ उतना ही अधिक होता है लेकिन सिस्मोंडी उक्त मत का विरोध करते हुए कहते हैं कि स्वतन्त्र प्रतियोगिता श्रमिकों एवं पूँजीपतियों दोनों के लिए हानिकारक है। उनकी आलोचना उत्पादन की गलत मात्रा पर आधारित है। वे कहते हैं कि जब तक अधिक माँग नहीं बढ़ती, उत्पादन की कोई भी वृद्धि बेकार है क्योंकि इससे अधिक शक्तिशाली पूँजीपति गला-काट प्रतियोगिता (Cut-throat Competition) द्वारा अपने प्रतियोगियों को बर्बाद करने पर तुल जाते हैं। इसका कारण यह है कि बड़े उद्योगपति अपने उत्पादन का नियन्त्रण सार्वजनिक हित को दृष्टिकोण में रखकर नहीं करते। वे तो केवल अधिक लाभ कमाने के उद्देश्य से प्रभावित होते हैं जिससे सामान्य लोगों को कोई लाभ प्राप्त नहीं होता।

सिस्मोंडी इसलिए भी स्वतन्त्र प्रतियोगिता की आलोचना करते हैं क्योंकि इससे उद्योगपतियों में सस्ता माल बेचने की प्रतियोगिता होती है जिससे श्रमिकों का शोषण होता है। सिस्मोंडी के विरोध में यह कहा जाता है कि वस्तुएँ सस्ती हो जाती हैं तो उपभोक्ता अपनी बची हुई आय से अन्य वस्तुओं को क्रय कर सकता है और अपनी सन्तुष्टि को बढ़ा सकता है परन्तु सिस्मोंडी ने इसके विरोध में अधिक शक्तिशाली तर्क उपस्थित किया है। वे कहते हैं कि उत्पादन लागत को घटाने के लिए उद्यमी, कम मजदूरी पर औरतों एवं बच्चों से काम लेते हैं अर्थात् मानवीय शक्ति का शोषण किया जाता है। सिस्मोंडी के अनुसार ऐसी परिस्थितियों में सस्ती वस्तुओं की क्या उपयोगिता है? स्पष्ट है कि उन्होंने मात्र भौतिकवादी दृष्टिकोण का सहारा न लेकर मानवीय समस्या को अधिक महत्त्व दिया है। वे कहते हैं कि प्रतियोगिता सर्वाधिक कीमती पूँजी मानव-जाति की जीवन-शक्ति को पंगु बना देती है। राष्ट्रीय व्यापार के प्रसार के लिए एक दु:खी एवं पीड़ित वर्ग का निर्माण करना वास्तव में एक बहुत बड़ी कीमत का भुगतान है। सिस्मोंडी के इस कथन में समाजवाद की झलक मिलती है। वे प्रतियोगिता को दो धार वाली तलवार मानते हैं और इस पर सरकारी नियन्त्रण को आवश्यक समझते हैं।

5. मशीनों के दोष (Demertis of Machinery)

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री यह मानते थे कि मशीनों का प्रयोग सबके लिए लाभप्रद है क्योंकि इससे बड़े पैमाने का उत्पादन सम्भव होता है जिससे उत्पादन की मात्रा बढ़ती है और वस्तुएँ सस्ती लागत पर तैयार होती हैं परन्तु सिस्मोंडी ने इस बात का खण्डन किया है कि मशीनें अमिश्रित वरदान हैं। उन्होंने मशीनों की बुराइयों पर प्रकाश डालते हुए उनके अत्यधिक प्रयोग की कड़ी आलोचना की। उन्होंने बताया कि मशीनों के प्रयोग से बेरोजगारी फैलती है। वे कहते हैं कि "मशीनों का तात्कालिक प्रभाव यह होता है कि कुछ श्रमिक रोजगार से हटा दिये जाते हैं जिससे श्रमिकों में प्रतियोगिता बढ़ जाती है फलस्वरूप सबकी मजदूरी कम हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि उपभोग कम हो जाता है और माँग भी घट जाती है।" किन्तु बड़े पैमाने के उत्पादन के कारण वस्तु की पूर्ति निरन्तर बढ़ती रहती है जिससे अत्युत्पादन की समस्या उपस्थित हो जाती है। वे यह स्वीकार नहीं करते कि मशीनें सदैव लाभदायक होती हैं। मशीनें उसी समय उपयोगी होती हैं जबकि इनके प्रयोग से आय में वृद्धि होती है और उन लोगों को रोजगार देने की सम्भावना बढ़ती है जिन्हें मशीनों के प्रयोग के कारण अलग कर दिया जाता है। वे कहते हैं कि "कोई भी व्यक्ति, एक मनुष्य के लिए मशीन को स्थानापन्न करने के लाभ को इंकार नहीं कर सकता यदि वह व्यक्ति कहीं अन्य जगह रोजगार पा सकता है।" सिस्मोंडी ने मशीनों के प्रयोग का विरोध इसलिए भी किया कि उनसे उत्पन्न होने वाले लाभ का केवल सीमित भाग ही श्रमिकों को मिलता है जबकि वे अधिक लाभ प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं।

मशीनों के अन्य दोषों को बताते हुए सिस्मोंडी कहते हैं कि वर्तमान सामाजिक ढाँचे में अत्यधिक जनसंख्या के कारण श्रमिकों में प्रतियोगिता होती है जिससे उनके फुरसत के समय में तो कोई वृद्धि नहीं होती बल्कि कमी होती है जो कि श्रमिकों के हित में नहीं है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि उनमें प्रतियोगिता तीव्र हो जाती है जिससे उनकी मजदूरी घटती है और श्रमिक पहले से ज्यादा श्रम करने को विवश होते हैं फलस्वरूप वे कार्य के घण्टे बढ़ाते हैं। यहाँ सिस्मोंडी ने इस महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर ध्यान दिया कि मशीनों के लाभ उसी समय उपयोगी हैं जबकि उपभोक्ताओं के साथ श्रमिक भी लाभान्वित हों।

सिस्मोंडी आविष्कारों का एक दुष्परिणाम यह भी मानते हैं कि श्रम के लिए माँग कम हो जाती है और इस प्रकार बेकारी बढ़ने से देश में निर्धनता आती है।

6. जनसंख्या सम्बन्धी विचार (Views on Population)

सिस्मोंडी के अनुसार मजदूरी का प्रभाव जनसंख्या पर पड़ता है अर्थात् मजदूरी की बढ़ी हुई दर समाज की जनसंख्या को बढ़ा सकती है। उन्होंने कहा कि अधिक बच्चे पैदा करना अन्यायपूर्ण और निर्दयता है क्योंकि ऐसी दशा में अन्य व्यक्तियों को या तो विवाह के सुखों से या वृद्धावस्था के आराम से वंचित हो जाना पड़ता है। अत: उन्होंने सुझाव दिया कि निर्धनों को जब तक कि वे कोई सम्पत्ति नहीं जुटा लेते, विवाह करने की मनाही होनी चाहिए। चूँकि श्रमिक पूरी तरह से पूँजीपति पर निर्भर रहता है।

7. सरकार द्वारा हस्तक्षेप (Government Interference)

व्यक्तिगत हितों को स्वतन्त्र आचरण की छूट होने से सामाजिक हितों को ठेस पहुँचती है। अत: सिस्मोंडी ने व्यक्तिगत क्रिया की सीमाएँ बाँधने तथा इसके हानिकारक प्रभावों को सुधारने के लिए सरकारी हस्तक्षेप का सुझाव दिया। वह चाहते थे कि सरकार उत्पादन पर अंकुश रखे तथा आविष्कारों के विकास को सीमित करे। वह धीमी गति से प्रगति चाहते थे, ताकि किसी को भी कोई हानि नहीं पहुँचे। अत: उनका सुझाव था कि सरकार उत्पादकों के उत्पादन बढ़ाने के उत्साह पर नियन्त्रण रखे। यह सुझाव देते समय सिस्मोंडी को इस बात का ध्यान नहीं रहा कि इसके कारण उन्हीं लोगों (अर्थात् श्रमिकों) की प्रगति में रोड़ा अटकेगा जिनके कल्याण के लिए वे चिन्तित थे।

8. आर्थिक संकट की व्याख्या (Explanation of Economic Crisis)

आर्थिक विचारों के इतिहास में सिस्मोंडी ही वह प्रथम व्यक्ति है जिन्होंने पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली के दोषों को स्पष्ट किया है और आर्थिक संकटों के कारणों को मालूम करने का प्रयत्न किया। उनके अनुसार आर्थिक संकटों के कारण निम्नलिखित हैं—

(अ) उन्होंने बताया कि औद्योगिक समाज ने ही समाज को पूँजीपति वर्ग और श्रमिक वर्ग में बाँटा है और स्वतन्त्र प्रतियोगिता ने इस विभाजन को और अधिक तीव्र बना दिया है।

सिस्मोंडी का मत है कि स्वतन्त्र प्रतियोगिता श्रमिकों से सम्पत्ति छीनकर धनी वर्ग अर्थात् बड़े-बड़े पूँजीपतियों के हाथों में सौंप देने से दो मुख्य परिणाम निकलते हैं—(i) श्रमिक वर्ग की क्रयशक्ति कम हो जाती है क्योंकि उसकी आय घट जाती है। परिणामस्वरूप उन उद्योगों की अवनति होती है जो जीवन की अनिवार्य वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। (ii) दूसरी ओर धनी वर्ग की क्रयशक्ति बढ़ जाती है क्योंकि उनकी आय में वृद्धि हो जाती है। फलत: उन उद्योगों का विकास होना प्रारम्भ हो जाता है जिनमें विलासिता सम्बन्धी वस्तुओं का उत्पादन बढ़ता है।

स्वाभाविक है कि ऐसी स्थिति में पूँजी एक उद्योग से दूसरे उद्योग में जाएगी। यदि विलासिता की वस्तुएँ शीघ्रता से देश में तैयार की जाती है तो वह विदेशों से मँगायी जाएगी और देश के पुराने उद्योगों को प्राय: समाप्त किया जाने लगता है। ऐसी स्थिति में आर्थिक संकट का जन्म होगा क्योंकि पुराने उद्योगों से निकाले गये श्रमिकों को नये उद्योगों द्वारा बहुत कम रोजगार मिल पाएगा जिससे उनमें बेरोजगारी उत्पन्न हो जाएगी। साथ ही वस्तुओं की माँग कम हो जाएगी और अति-उत्पादन की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी।

(ब) सिस्मोंडी के अनुसार कुछ अंशों में इन संकटों का कारण यह है कि बढ़ते हुए बाजारों का सही ज्ञान नहीं हो पाता। बाजारों के विस्तृत हो जाने के कारण वस्तु की माँग का अनुमान नहीं हो पाता। फलत: कभी तो पूर्ति माँग से कम हो जाती है और कभी पूर्ति माँग से अधिक हो जाती है। इस प्रकार न्यून-उत्पादन और अति-उत्पादन की स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। दोनों ही आर्थिक संकटों को जन्म देने वाले हैं।

(स) उद्योगपति किसी वस्तु का उत्पादन उसकी माँग के अनुसार नहीं करते बल्कि अपनी पूँजी की मात्रा के अनुसार करते हैं, फलत: पूर्ति को माँग के अनुरूप रखना कठिन हो जाता है और आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ता है।

(द) आर्थिक संकटों का सबसे महत्त्वपूर्ण कारण सिस्मोंडी के अनुसार राष्ट्रीय आय का असमान वितरण है। सिस्मोंडी का मत है कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में धन का असमान वितरण होता है जिसके कारण धनी व्यक्ति की क्रयशक्ति बढ़ती चली जाती है और गरीबों की आय घटती जाती है। इसका देश की अर्थव्यवस्था पर यह प्रभाव पड़ता है कि देश में उन उद्योग-धन्धों का विकास होने लगता है जिनमें विलासिता की वस्तुओं को तैयार किया जाता है और अन्य वस्तुओं को उत्पन्न करने वाले उद्योगों की कमी होती चली जाती है। विलासिता की वस्तुओं की माँग की मात्रा कम होती जाती है जिसके कारण इनको उत्पन्न करने वाले कम उद्योग खोले जाते हैं जबकि बन्द होने वाले उद्योगों की संख्या अधिक रहती है। इससे अधिक मजदूर बेरोजगार हो जाते हैं, उनकी आय कम हो जाती है और आर्थिक संकट उत्पन्न हो जाता है।

9. सुधार योजनाएँ (Reforms Project)

सिस्मोंडी ने समकालीन समाज में अनेक दोषों और बुराइयों को देखा, जैसे—धनी वर्ग को श्रमिकों का शोषण करते देखा तथा निर्धन वर्ग को धनाभाव के कारण आवश्यकताओं के उपभोग से वंचित रहते देखा। फलत: उनका सरस हृदय इन दोषों और बुराइयों को पिसते मानव को देखकर द्रवित हो गया। अत: इस दयनीय स्थिति को सुधारने के लिए सिस्मोंडी ने सुधार के अनेक उपाय बताये। सिस्मोंडी का मत था कि समाज में पूँजीपति वर्ग जो शोषण करता है, उसका मूल कारण सरकार का हस्तक्षेप न करना है अर्थात् एडम स्मिथ ने जो अहस्तक्षेप की नीति का समर्थन किया था, उसी ने पूँजीपति वर्ग को शोषण के लिए प्रोत्साहन दिया था। अत: उनका विश्वास था कि सरकारी हस्तक्षेप नीति द्वारा ही श्रमिकों के शोषण को समाप्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त सिस्मोंडी ने अग्रलिखित अन्य सुझाव भी दिये—

(i) बड़ी-बड़ी मशीनों और यन्त्रों का अनुसन्धान नियन्त्रित और धीरे-धीरे किया जाना चाहिए जिससे श्रमिकों को हानि न उठानी पड़े।
(ii) सरकार को वस्तु की माँग तथा उत्पादन में साम्य स्थापित करने का प्रयत्न करना चाहिए।
(iii) कृषि उद्योग में छोटे-छोटे भू-स्वामियों को प्राथमिकता मिलनी चाहिए।
(iv) श्रमिकों को कुछ सम्पत्ति दिलाने का प्रयत्न करना चाहिए।
(v) बड़े पैमाने के उद्योगों के स्थान पर छोटे पैमाने के उद्योगों को प्रोत्साहन देना चाहिए।
(vi) श्रमिक संघों की स्थापना करने तथा उनका संगठन करने का पूर्ण अधिकार श्रमिक वर्ग को दिया जाना चाहिए।
(vii) मिल-मालिकों को अधिनियम द्वारा बाध्य किया जाना चाहिए कि श्रमिकों की बीमारी, बेरोजगारी, आकस्मिक घटना तथा वृद्धावस्था के लिए बीमे का प्रबन्ध करें परन्तु इनका समस्त व्यय मिल-मालिक ही सहन करें।
(viii) कारखाना व्यवस्था की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। अन्य शब्दों में, कार्य के घण्टे कम करवाने चाहिए, बच्चों एवं स्त्रियों को नौकर रखने पर प्रतिबन्ध लगाना चाहिए, साप्ताहिक छुट्टी होनी चाहिए इत्यादि।

सिस्मोंडी के द्वारा समाज सुधार के लिए दिये गये इन सुझावों के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि वे आने वाले समाज सुरक्षा सम्बन्धी अधिनियमों के द्वारा स्थापित आदर्शों का एक पूर्वाभास है किन्तु इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि सिस्मोंडी आपत्तिकाल में श्रमिकों के जीवनयापन का उत्तरदायित्व समाज पर न रखकर केवल मिल-मालिकों पर रखना चाहते थे, इसलिए उनकी सुधार योजनाओं को केवल आंशिक रूप से सामाजिक सुरक्षा कहा जा सकता है।

इन सुझावों को देने के पश्चात् भी ऐसा प्रतीत होता है कि सिस्मोंडी सन्तुष्ट नहीं थे। वे यह समझते थे कि वे समाज की बुराइयों का इलाज बताने के लिए अयोग्य हैं। इसका कारण यह था कि उनके मन में सदैव ही तर्क और भावुकता के बीच संघर्ष होता रहता था। इसीलिए उन्होंने एक स्थान पर लिखा है, "मैं मानता हूँ कि यह बताने के बाद कि मेरे विचार में न्याय का सिद्धान्त क्या होना चाहिए, मैं अपने आपको उसे कार्यरूप में लाने की विधि को बताने में असमर्थ पाता हूँ।..... किन्तु एक ऐसे समाज की स्थापना जो उस समाज से पूर्णत: भिन्न हो जिससे हम परिचित हैं, मनुष्य की वृद्धि से परे परिचित होता है।"

प्र.2. "यद्यपि सिस्मोंडी एक समाजवादी नहीं था, समाजवादियों द्वारा उसका अध्ययन बहुत अधिक किया जाता है।" व्याख्या कीजिए।

"Though Sismondi was not a socialist, he is much studied by socialists." Comment.

उत्तर

सिस्मोंडी
(Sismondi)

यह एक अत्यन्त विवादग्रस्त विषय रहा है कि सिस्मोंडी समाजवादी थे अथवा नहीं। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि सिस्मोंडी का प्रभाव समाजवादी लेखकों पर सबसे अधिक रहा है और उनके लेखकों में समाजवादी विचार काफी मिलते हैं और इसलिए कभी-कभी उन्हें गलती से समाजवादी लेखकों के रूप में रख दिया जाता है। **प्रो० जीड** एवं **रिस्ट** के अनुसार, "यद्यपि सिस्मोंडी स्वयं समाजवादी नहीं थे किन्तु फिर भी उनके लेखों को समाजवादियों के द्वारा उत्साह के साथ पढ़ा जाता है और उनका बहुत अच्छी प्रकार अध्ययन किया जाता है। इन्हीं के बीच में उनका प्रभाव सबसे अधिक स्पष्ट है।"

संक्षेप में सिस्मोंडी के निम्नलिखित विचारों के कारण उन्हें समाजवादी समझा जाता है—

(i) हम जानते हैं कि समाजवादी समाज को धनी और निर्धन दो वर्गों में बाँटते हैं और यह विश्वास करते हैं कि धनी वर्ग सदा निर्धन वर्ग का शोषण करने का प्रयत्न करते हैं। सिस्मोंडी ने ही सर्वप्रथम यह विचार हमारे सामने रखा था और इनके इसी विचार को बाद में अन्य समाजवादियों ने भी स्वीकार किया।
(ii) सिस्मोंडी ने समाज सुधार के लिए जो सुझाव दिये थे, उनके अनुसार उसको समाजवादियों के वर्ग में सम्मिलित किया जा सकता है।
(iii) व्यक्तिगत मामलों में सरकारी हस्तक्षेप का पक्ष लेकर उसने सिद्ध कर दिया था कि उसको सामाजवादियों की श्रेणी में सम्मिलित होने का अधिकार था।
(iv) यदि समाजवादी श्रमिक वर्ग को अधिक महत्त्व देते हैं कि तो सिस्मोंडी ने भी इनको कम महत्त्व नहीं दिया है और समाजवादियों की भाँति इसने भी श्रमिकों की रक्षा के लिए सरकार को ही उत्तरदायी ठहराया है। सिस्मोंडी पहला व्यक्ति था जिसने फ्रांस में फैक्टरी अधिनियम के लिए आवाज उठायी थी।

TOUCH 'n' PASS

(v) सिस्मोंडी ही पहला व्यक्ति था जिसने अपने विचार उदारतावाद के विरोध में दिये थे परन्तु उनका उपयोग अनेक राज्य समाजवादियों ने किया।

(vi) यदि समाजवादी समाज में धन के समान वितरण का नारा लगाते हैं तो सिस्मोंडी ने भी धन के असमान वितरण को घृणा की दृष्टि से देखा है।

सिस्मोंडी के उपर्युक्त विचारों को देखने से ऐसा लगता है कि वे समाजवादी थे किन्तु वास्तविकता इसके बिल्कुल विपरीत है और उन्हें समाजवादी लेखक कहना एक भूल होगी। वास्तव में सिस्मोंडी को किसी भी एक सम्प्रदाय के साथ सम्बन्धित करना उचित नहीं होगा क्योंकि उनके विचारों में कई सम्प्रदायों के मूल विचार मिलते हैं।

सिस्मोंडी एक असमाजवादी के रूप में (Sismondi as Antisocialist)

सिस्मोंडी समाजवादी नहीं थे, यह निम्नलिखित बातों से सिद्ध हो जाता है—

(i) वह क्रान्तिकारी परिवर्तनों में विश्वास नहीं करता था। वह चाहता था कि समाज की प्रगति इस प्रकार हो कि किसी को भी हानि न पहुँचे।

(ii) समाजवादी व्यक्तिगत सम्पत्ति के विपक्ष में होते हैं किन्तु सिस्मोंडी इसके पक्ष में था। उसके अनुसार कुछ थोड़े-से हाथों में सम्पत्ति के केन्द्रित हो जाने के कारण ही समाज में दोष उत्पन्न हो गये थे। इसलिए उसने सम्पत्ति के विकेन्द्रीकरण का सुझाव दिया था।

(iii) वह केवल बड़े-बड़े पूँजीपतियों का ही विरोधी था। छोटे-छोटे भूस्वामियों व उद्योगपतियों को तो वह प्रमुखता देने के पक्ष में था।

(iv) वह पूँजी तथा लगान के पक्ष में था। उसका मत था कि ब्याज पूँजीपति को और लगान भूस्वामी को लेने का अधिकार है। वह आय को सीमित करने के पक्ष में भी नहीं था।

(v) प्रतिष्ठित प्रणाली का विरोध करने के बावजूद वह उसका प्रशंसक था। उसका विश्वास था कि प्रतियोगिता के दोषों को दूर करने के लिए स्वयं प्रतिष्ठित प्रणाली से कुछ विचार लिये जा सकते हैं।

(vi) सिस्मोंडी ने साम्यवाद की कड़ी आलोचना की थी। उसने **ओवन, टामसन** और **फुए** की योजनाओं की निन्दा की थी।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सिस्मोंडी ने पूँजीवाद और समाजवाद दोनों का ही विरोध किया। समाजवाद की वे इसलिए निन्दा करते थे क्योंकि उसमें केन्द्रीय नियन्त्रण बहुत अधिक होता है और व्यक्ति की स्वतन्त्रता बहुत कम रह जाती है। पूँजीवाद का उन्होंने इसलिए विरोध किया क्योंकि वह शोषण पर आधारित समाज होता है। निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि सिस्मोंडी समाजवादी नहीं थे किन्तु फिर भी उन्होंने समाजवादी चिन्तन को प्रोत्साहित किया और समाजवादियों ने उनसे प्रेरणा ली।

आर्थिक विचारों के इतिहास में सिस्मोंडी का स्थान एवं उनका प्रभाव (Place and Effects of Sismondi in History of Economic Thoughts)

सिस्मोंडी को आर्थिक विचारों के इतिहास में इसलिए महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है क्योंकि 19वीं सदी के बहुत-से सामाजिक विचारों का स्रोत उनके लेखन में मिलता है। उनके प्रभाव का अध्ययन नीचे दी हुई पंक्तियों में किया गया है—

1. **समाजवाद पर प्रभाव** (Effects on Socialism)—सिस्मोंडी के विचारों ने साहचर्य समाजवादी विचारों को अत्यधिक प्रभावित किया। इनमें **राबर्ट ओवन, लुई ब्लैंक** एवं **लार्ड सेफ्ट्सबरी** इत्यादि के नाम लिये जा सकते हैं। लुई ब्लैंक ने प्रतियोगिता के विरोध में सिस्मोंडी द्वारा दिये गये तर्कों का प्रयोग किया। सिस्मोंडी ने ही सरकार को फैक्टरी कानून बनाने के लिए प्रेरित किया। उन्हीं के सुधारों से प्रभावित होकर साहचर्य समाजवादियों ने सरकार को श्रम सम्बन्धी कानून (Labour Legislation) बनाने का सुझाव दिया।

2. **ऐतिहासिक सम्प्रदाय पर प्रभाव** (Effects on Historical School)—सिस्मोंडी ने अर्थविज्ञान के अध्ययन की ऐतिहासिक प्रणाली पर जोर दिया जिससे जर्मन के ऐतिहासिक सम्प्रदाय के विचारक प्रभावित हुए। इस सम्प्रदाय के संस्थापकों—**रोशर** (Roscher), **नीज** (Knies) तथा **हिल्डेब्रान्ड** (Hildebrand)—ने सिस्मोंडी को समाजवादी माना तथा इसी सम्प्रदाय के नवीन अर्थशास्त्रियों ने सिस्मोंडी के साथ पूर्ण न्याय किया एवं उन्हें अपना प्रारम्भिक प्रतिनिधि माना है। उनके तथ्यों के सूक्ष्म निरीक्षण के तर्क एवं ऐतिहासिक प्रणाली का उल्लेख फ्रांस के लीप्ले (Le Play), जर्मनी के **श्मोलर** तथा इंग्लैण्ड के **क्लिफ लेजली** (Cliff Leslie) एवं **टायनबी** (Toynbee) के विचारों में स्पष्ट रूप से मिलता है।

TOUCH 'n PASS

3. **राज्य समाजवादियों पर प्रभाव** (Effects on State Socialists)—राज्य समाजवादी अर्थशास्त्री भी सिस्मोंडी के विचारों से प्रभावित हुए। इनमें **रोडबर्टस** (Rodbertus) का नाम प्रमुख है जिन्होंने सिस्मोंडी के नाम का उल्लेख किये बिना उनके आर्थिक संकट के सिद्धान्त को ग्रहण किया। वे इस विचार से भी प्रभावित हुए कि निरन्तर औद्योगिक प्रगति से सदैव धनी वर्ग को लाभ होता है।
4. **मार्क्सवादी विचारों पर प्रभाव** (Effects on Marxian Thought)—प्रसिद्ध समाजवादी अर्थशास्त्री **कार्ल मार्क्स** (Karl Marx) भी सिस्मोंडी से प्रभावित हुए। मार्क्स ने उनकी व्याख्या से जो भी ग्रहण किया है, उसका उल्लेख कर उनके साथ पूर्ण न्याय किया है। इसकी चर्चा करते हुए **प्रो० जीड** एवं **रिस्ट** कहते हैं कि "मार्क्स द्वारा ग्रहण किया गया सबसे अधिक सफल विचार वह है जिसका सम्बन्ध कुछ शक्तिशाली पूँजीपतियों के हाथ में धन के केन्द्रीकरण से है जिसका परिणाम श्रमिक वर्ग की पराधीनता बढ़ाने में होता है।" मार्क्स ने जो अतिरिक्त मूल्य (Surplus Value) का सिद्धान्त प्रतिपादित किया, उसके कुछ अंश भी सिस्मोंडी के सिद्धान्तों में ढूँढ़े जा सकते हैं। मार्क्स ने स्वयं अपने 'कम्युनिस्ट मेनीफेस्टो' में यह स्वीकार किया है कि अपने विश्लेषण के लिए वे सिस्मोंडी के ऋणी हैं। यह स्मरणीय है कि सिस्मोंडी एवं मार्क्स दोनों के उद्देश्य अलग-अलग थे। जहाँ सिस्मोंडी पूँजीवादी प्रणाली को सुधारकर समाजवाद लाना चाहते थे, वहाँ कार्ल मार्क्स पूँजीवाद को समाप्त कर समाजवाद लाने के पक्ष में थे। फिर भी सिस्मोंडी का प्रभाव कार्ल मार्क्स पर स्पष्ट है।
5. **नवीन प्रतिष्ठित सम्प्रदाय पर प्रभाव** (Effects of New Classical Schools)—इस सम्प्रदाय के जनक मार्शल ने अपनी अर्थशास्त्र की परिभाषा में कल्याण पक्ष पर जोर दिया। इसके पूर्व ही सिस्मोंडी ने अपने विश्लेषण में नैतिक पहलू पर बल देकर मानवीय कल्याण को महत्त्वपूर्ण बताया था। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि धन मनुष्य के लिए है, न कि मनुष्य धन के लिए।
6. **अन्य प्रभाव** (Other Effects)—सिस्मोंडी की मानवीय कल्याणकारी योजनाओं से प्रभावित होकर **रस्किन** (Ruskin) एवं **कार्लाइल** (Carlyle) सरीखे साहित्यकारों ने प्रतिष्ठित विचारों का खण्डन किया। इस सन्दर्भ में इनकी एडम स्मिथ की अर्थशास्त्र की धन सम्बन्धी परिभाषा की आलोचना का उल्लेख किया जा सकता है।

संस्थात्मक अर्थशास्त्री वेबलेन (Veblen) तथा **मिचेल** (Mitchell) भी सिस्मोंडी के विचारों से प्रभावित हुए। मुख्य रूप से सिस्मोंडी का प्रभाव समाजवादी विचारकों पर पड़ा।

सिस्मोंडी की आलोचना (Criticism of Sismondi)

सिस्मोंडी की आलोचना इस आधार पर की जाती है कि उन्होंने श्रमिकों की जिस दयनीय दशा का वर्णन किया है एवं उनके जिस स्वामित्व की बात कही है, उसे प्राप्त करने के साधनों पर उन्होंने कोई बल नहीं दिया है। उनका अन्तिम रुख बहुत-कुछ असहायता और किंकर्तव्यविमूढ़ता का-सा है क्योंकि उनके सामने एक ऐसी समस्या खड़ी है जिसका वे कोई हल नहीं ढूँढ़ पाते। वे अपने आपको समाजवाद का विरोधी कहते हैं। उन्होंने यद्यपि **ओवन, थाम्पसन** एवं **चार्ल्स फूरिया** के सिद्धान्तों को अस्वीकार किया लेकिन वे यह देखने में असफल रहे कि उनके विचार भी वैसे ही मिथ्या हैं जैसे कि साम्यवादी विचार, जिनकी आलोचना कर सिस्मोंडी ने उन्हें त्याग दिया। सिस्मोंडी ने इस सम्बन्ध में जो विचार प्रस्तुत किये, उनसे उन्होंने कोई स्पष्ट परिणाम नहीं निकाले। अत्युत्पादन तथा मशीनों एवं यान्त्रिक सुधारों के विषय में सिस्मोंडी ने जो विचार प्रस्तुत किये हैं, उनमें आर्थिक जीवन के अधिकांश तथ्यों की ओर ध्यान दिया है और उन सम्भावित प्रतिक्रियाओं की उपेक्षा की गई है जिनका प्रभाव माँग पर हो सकता है।

सिस्मोंडी के विचारों ने यद्यपि प्रारम्भ में काफी उत्साह का संचार किया लेकिन बाद में उनकी कटु आलोचना हुई। **प्रो० ग्रे०** के शब्दों में "यह कहना शायद अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सिस्मोंडी के कोई भी अद्भुत सिद्धान्त समय के सामने टिक नहीं सके हैं फिर भी वे भुलाने योग्य नहीं हैं। उस युग में जब विरोध आवश्यक था, उन्होंने सिद्ध किया कि धन मनुष्य के लिए है, न कि मनुष्य धन के लिए। आज भी समाजवादी सिस्मोंडी के तर्कों का सहारा लेते हैं। **प्रो० हेने** के अनुसार सिस्मोंडी एक इतिहासकार थे जो एक समाज सुधारक बन गये। उनका अर्थशास्त्र नैतिक आदर्शों पर आधारित था।

क्या सिस्मोंडी समाजवादी थे?—सिस्मोंडी को उनके निम्नलिखित विचारों के कारण समाजवादी समझा जाता है—(i) समाज को धनी एवं निर्धन दो वर्गों में बाँटते हैं। (ii) समाज सुधार के लिए सुझाव दिये थे। (iii) सरकारी हस्तक्षेप का पक्ष। (iv) श्रमिक वर्ग को अधिक महत्त्व। (v) उदारवाद के विरोधी। (vi) समान वितरण का नारा।

TOUCH 'n' PASS

इसके विपरीत सिस्मोंडी एक असमाजवादी थे। इसके सम्बन्ध में निम्नलिखित तर्क दिये जाते हैं—(i) क्रान्तिकारी परिवर्तनों में विश्वास। (ii) व्यक्तिगत सम्पत्ति के विपक्ष में। (iii) केवल बड़े-बड़े पूँजीपतियों का विरोध। (iv) पूँजी और लगान के पक्ष में। (v) साम्यवाद की कड़ी आलोचना।

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि सिस्मोंडी समाजवादी नहीं थे। फिर भी उन्होंने समाजवादी चिन्तन को प्रोत्साहित किया है।

आर्थिक विचारों के इतिहास में सिस्मोंडी का स्थान एवं प्रभाव—सिस्मोंडी का प्रभाव व महत्त्व का अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं—1. समाजवाद पर प्रभाव। 2. ऐतिहासिक सम्प्रदाय पर प्रभाव। 3. राज्य समाजवादियों पर प्रभाव। 4. मार्क्सवादी विचारों पर प्रभाव। 5. नवीन प्रतिष्ठित सम्प्रदाय पर प्रभाव।

प्र.3. कार्ल मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद क्या है? उन्होंने इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या किस प्रकार की है?
What is Karl Marx's dialectical materialism? How has Marx made materialistic interpretation of history?

उत्तर

कार्ल मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद
(Dialectical Materialism of Karl Marx)

दो विरोधी शक्तियों में संघर्ष होने की प्रक्रिया को ही द्वन्द्व कहा जाता है। द्वन्द्ववाद के समर्थकों का कहना है कि संसार में जो भी परिवर्तन होते हैं, वे सब इसी द्वन्द्व के कारण होते हैं।

मार्क्स का द्वन्द्ववाद भौतिकवाद हीगल के द्वन्द्ववाद से प्रभावित है। हीगल का मत है कि मानव समाज एक विकास की कहानी है और विकास के इस क्रम के चलते रहने का मूलभूत कारण विरोधी शक्तियों का संघर्ष है। प्रत्येक क्रिया (Thesis) की प्रतिक्रिया प्रक्रिया (वाद-प्रतिवाद-समन्वय) निरन्तर चलती रहती है और मानव के विकास-क्रम को स्पष्ट करती है। मार्क्स ने बताया कि पूँजीवाद स्वयं विरोधी शक्तियों के संघर्षों का परिणाम है। अन्य शब्दों में सामन्तवाद के अन्तर्गत सामन्तों और कृषक दासों के मध्य सदैव संघर्ष होता रहता था, इस संघर्ष के परिणामस्वरूप सामन्तवाद का पतन हो जाने पर इसका स्थान पूँजीवाद ने ले लिया किन्तु स्वयं पूँजीवाद के पूँजीपतियों और श्रमिकों के आपसी संघर्ष के परिणामस्वरूप भविष्य में साम्यवाद स्थापित होगा। **मार्क्स** के शब्दों में, "यह बात इतिहास से भली-भाँति स्पष्ट हो जाती है कि कोई भी मानवीय एवं सामाजिक संस्था स्थायी नहीं होती, अत: पूँजीवाद की आर्थिक व सामाजिक संस्थाएँ भी अस्थायी हैं।" संक्षेप में, इतिहास आवश्यक रूप से विभिन्न वर्गों के निरन्तर संघर्ष का अभिलेख है।

इस प्रकार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की मूल धारणा है कि विश्व का आधार भौतिक तत्त्व या पदार्थ है। वह अपने आन्तरिक स्वभाव द्वारा स्वत: विकसित होता है तथा समय-समय पर नाना प्रकार के रूप धारण करता है। यह विकास भौतिक पदार्थ में निहित आन्तरिक विरोध के कारण संचालित होता है और इसमें, जैसा कि हीगल ने कहा, वाद, प्रतिवाद और संवाद की त्रयी को लेकर आगे चलता है और भौतिक विकास का पथ प्रशस्त करता जाता है। मार्क्स ने इसे मानव इतिहास का अटल और अपरिवर्तनशील नियम (Inexorable Law of Human History) कहा है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की विशेषताएँ (Features of Dialectical Materialism)

मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की आधारभूत विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. **घटनाएँ अन्तर्सम्बन्धित और आत्मनिर्भर होती हैं**—द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद इस मान्यता पर आधरित है कि प्रकृति की प्रत्येक घटना अनेक अन्य घटनाओं से घिरी रहती है और उन सबका प्रभाव प्रत्येक पर और प्रत्येक का प्रभाव सब पर पड़ता है। अत: किसी घटना को घटनाओं की अन्तर्सम्बन्धिता और अन्तर्निर्भरता के आधार पर ही समझा जा सकता है। उदाहरण के लिए, मार्क्स के अनुसार अर्थव्यवस्था उत्पादन शक्तियों पर निर्भर करती है और उत्पादन का ढंग सामाजिक, राजनीतिक तथा आध्यात्मिक आदि क्षेत्रों में रूपरेखा निर्धारित करती है।
2. **प्रावैगिक प्रकृति**—द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की द्वितीय विशेषता यह है कि विश्व में सभी वस्तुएँ परिवर्तनशील व अस्थायी है। इस परिवर्तनशीलता के कारण कुछ वस्तुएँ विनाश या अवनति की ओर भी जाती हैं।
3. **तीव्र एवं क्रान्तिकारी परिवर्तन**—मार्क्स के जिस द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, वह सरल न होकर अत्यन्त जटिल है। उन्होंने परिवर्तन की व्याख्या करते हुए लिखा है कि परिमाणात्मक परिवर्तन धीरे-धीरे एकत्रित

TOUCH 'n' PASS

होते रहते हैं। जब परिमाणात्मक परिवर्तन ऐसी स्थिति में पहुँच जाते हैं जिसके आगे परिवर्तन सम्भव नहीं होता तो विस्फोटक या क्रान्तिकारी स्थिति पैदा हो जाती है और समाज में शीघ्र ही गुणात्मक परिवर्तन हो जाते हैं।

4. **भौतिक पदार्थ प्राथमिक है**—द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद पदार्थ अर्थात् प्रकृति को प्रमुख मानता है। मनुष्य की भौतिक परिस्थितियाँ ही विचार को जन्म देती हैं।
5. **आन्तरिक विरोध की प्रक्रिया**—द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद इस मान्यता पर आधारित है कि समस्त वस्तुओं तथा प्रकृति की घटनाओं में आन्तरिक विरोध की प्रक्रिया स्वाभाविक रूप में पायी जाती है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्त के उद्देश्य (Objectives of Dialectical Materialism Theory)

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मार्क्स ने हीगल की द्वन्द्वात्मक प्रणाली को भौतिक आधार प्रदान करके उसे आदर्शात्मक से यथार्थवादी, काल्पनिक से वैज्ञानिक और आध्यात्मिक से भौतिकवादी बना दिया है।

(i) **समाजवादी व्यवस्था की स्थापना**—द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के आधार पर मार्क्स का विश्लेषण यह व्यक्त करता है कि दासता की समाप्ति हुई; सामन्त शाही का अन्त हुआ और पूँजीवाद के विनाश के साथ समाजवाद का जन्म अवश्यम्भावी है।

(ii) **क्रान्ति का औचित्य**—इस सिद्धान्त के माध्यम से मार्क्स सर्वहारा वर्ग द्वारा की जाने वाली क्रान्ति को न्यायोचित ठहराना चाहते थे।

(iii) **वर्ग-संघर्ष की अनिवार्यता**—इस सिद्धान्त द्वारा मार्क्स ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि समाज में दो विरोधी शक्तियाँ विद्यमान रहती हैं जिनके बीच संघर्ष चलता रहता है। समाजवाद की स्थापना के बाद वर्ग-भेद और वर्ग-संघर्ष समाप्त हो जाएँगे और एक वर्गहीन समाज की स्थापना होगी।

आलोचनाएँ (Criticisms)—द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की निम्नलिखित आलोचनाएँ की जाती हैं—

1. **प्रमाणों के बजाय दृष्टान्तों पर बल**—मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक पद्धति को पुष्ट करने के लिए केवल दृष्टान्त दिये हैं, कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं दिये हैं। यह कैसे मान लिया जाए कि भौतिक जगत में जो नियम काम करते हैं, वही नियम उसी रूप में मानव समाज में भी लागू हो सकते हैं।
2. **भौतिकवाद की धारणा अस्पष्ट एवं गूढ़**—मार्क्स ने अपने ग्रन्थों में भौतिकवाद की सुस्पष्ट व्याख्या नहीं की है। उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयत्न नहीं किया है कि पदार्थ किस प्रकार गति करते हैं।
3. **भौतिकवादी दर्शन**—मार्क्स का दर्शन अत्यन्त भौतिकवादी है। आलोचकों के अनुसार केवल भौतिकवादी दर्शन के आधार पर एक आदर्शवादी दर्शन की सृष्टि नहीं की जा सकती है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का महत्त्व (Importance of Dialectical Materialism)

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट होता है—

(क) मार्क्स ने इस सिद्धान्त का प्रयोग धार्मिक रूढ़ियों तथा धर्माधिकारी सत्ताओं के आडम्बरों के विरुद्ध भी किया। भौतिकवाद के इस सिद्धान्त ने समाज में 'धर्मनिरपेक्षता की शक्तियों को सुदृढ़ किया।

(ख) द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के आधार पर मार्क्स इस नये समाज की स्थापना का तर्कपूर्ण औचित्य सिद्ध करना चाहते थे जिसकी भविष्य में निर्माण की वे कल्पना करते थे।

(ग) गुणात्मक परिवर्तन के आधार पर वे बतलाते हैं कि शोषण जब तक विशेष मंजिल तक पहुँचेगा, श्रमिक वर्ग की संख्या तथा शक्ति बढ़ेगी तो श्रमिक वर्ग क्रान्ति करेगा, न कि धीरे-धीरे पूँजीवाद का अन्त करेगा।

इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या (Materialistic Interpretation of History)

मानवीय विकास को समझने के लिए द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्त को ऐतिहासिक विकास पर लागू करने के मार्क्स के प्रयोग को हम इतिहास की भौतिक व्याख्या के सिद्धान्त के नाम से पुकारते हैं। इतिहास या समाज का विकास द्वन्द्व की प्रणाली से होता है तथा भौतिक पदार्थ उस विकास को चलायमान करते हैं, यह इतिहास की भौतिक व्याख्या के सिद्धान्त की प्रमुख मान्यता है। इस सिद्धान्त को 'आर्थिक नियतवादी' (Economic Determinism), ऐतिहासिक भौतिकवाद अथवा 'इतिहास की आर्थिक व्याख्या' जैसे नामों से पुकारा गया है।

TOUCH 'n PASS

इस सिद्धान्त द्वारा मार्क्स ने यह प्रदर्शित करने का प्रयास किया है कि चूँकि भौतिक जगत में परिवर्तन निरन्तर होते रहते हैं, अत: सामाजिक जीवन में भी परिवर्तन होते रहते हैं। इन परिवर्तनों का कारण कोई दैवी-सत्ता या ईश्वरीय नियम नहीं है प्रत्युत भौतिक परिस्थितियों का होना है। इन भौतिक परिस्थितियों से मार्क्स का अभिप्राय आर्थिक सम्बन्धों से है।

मार्क्स के इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या को हम निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट कर सकते हैं—

(i) **उत्पादन प्रणाली** (Mode of Production)—ऐतिहासिक भौतिकवाद की व्याख्या मानव-जीवन को बनाये रखने वाले भौतिक मूल्यों (भोजन, कपड़ा, मकान आदि) को प्राप्त करने वाली उत्पादन की प्रणाली पर आधारित है। मार्क्स के मतानुसार उत्पादन प्रणाली का प्रभाव ही इतिहास की घटनाओं को निर्धारित करता है। मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद का प्रमुख तथ्य **आर्थिक निर्णायकवाद** (Economic Determinism) है। मार्क्स ने कहा कि समाज एक पूर्व रचित वस्तु नहीं है बल्कि इसमें अविराम गति से परिवर्तन होते रहते हैं। मनुष्य को जीवित रहने के लिए कुछ भौतिक वस्तुएँ, जैसे—रोटी, कपड़ा, आवास आदि की आवश्यकता होती है। इन भौतिक वस्तुओं के उत्पादन हेतु मानव को विभिन्न उपकरणों, साधनों आदि की आवश्यकता होती है, जिन्हें उत्पादन प्रणाली कहा जाता है। उत्पादन के इन साधनों को ही प्रौद्योगिकी कहा गया है।

(ii) **उत्पादन प्रणाली के दो पक्ष** (Two Aspects of Mode of Production)—उत्पादन प्रणाली द्वारा भौतिक वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है। उत्पादन करने में मनुष्य की कार्यकुशलता व उत्पादन अनुभव का भी अब उपयोग किया जाता है। मनुष्य, उत्पादन अनुभव तथा श्रम की कार्यकुशलता—ये सब तत्त्व मिलकर उत्पादक शक्ति का निर्माण करते हैं लेकिन यह उत्पादक शक्ति उत्पादन प्रणाली की केवल एक पहलू का ही प्रतिनिधित्व करती है जबकि उत्पादन प्रणाली का दूसरा पक्ष उत्पादन सम्बन्धों का प्रतिनिधित्व करता है। उत्पादन के साधनों द्वारा उत्पादन सम्बन्धों का निर्माण होता है। उत्पादन किसी व्यक्ति विशेष द्वारा नहीं बल्कि प्रत्येक परिस्थिति और प्रत्येक समय में सामूहिक अथवा सामाजिक होता है। फिर सामूहिक उत्पादन में प्रत्येक व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के साथ मिलता-जुलता है, कार्य करता है और किसी-न-किसी प्रकार का सम्बन्ध अन्य व्यक्तियों के साथ स्थापित कर लेता है। इसी दृष्टि से उत्पादन के लिए व्यक्तियों की एक-दूसरे के प्रति क्रियाशीलता और कार्यों का आदान-प्रदान ही उत्पादन सम्बन्धों का निर्माण करते हैं। चित्र 1 द्वारा उत्पादन प्रणाली को समझाया गया है।

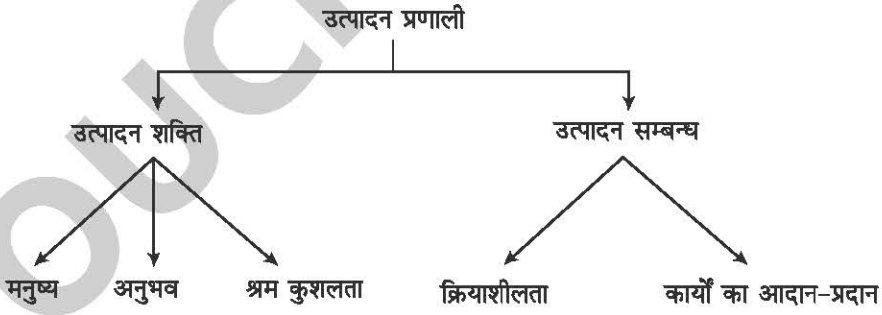

(iii) **उत्पादन सम्बन्धों में परिवर्तन** (Changes in Production Relations)—उत्पादन प्रणाली स्थायी या स्थिर नहीं रहती बल्कि समय के अनुसार इसमें परिवर्तन और विकास होता रहता है। उत्पादन के साधनों अथवा उत्पादन प्रणाली में परिवर्तन हो जाने पर उत्पादन सम्बन्धों में भी परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार उत्पादन सम्बन्ध मनुष्य की इच्छा से स्वतन्त्र होते हैं। उदाहरणार्थ औद्योगिक युग में उत्पादन के साधन में परिवर्तन हो जाने के कारण उत्पादन सम्बन्ध मजदूरों और पूँजीपति के रूप में बदल गये, परिणामस्वरूप कृषि अर्थव्यवस्था के स्थान पर पूँजीवाद का विकास हुआ। ये उत्पादन सम्बन्ध ही समाज की आर्थिक संरचना का निर्माण करते हैं, जिसे मार्क्स ने अधो-संरचना (Super-structure) कहा है और यह नैतिक, धार्मिक, राजनीतिक, वैधानिक आदि सम्बन्धों को प्रभावित करती है। इस प्रकार इस प्रभावित होने वाली संरचना (नीति, धर्म, कानून, कला आदि) को अधि-संरचना (Sub-structure) कहा गया है। वास्तव में कार्ल मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को आर्थिक (उत्पादन) सम्बन्धों का कारण बताया है।

TOUCH 'n PASS

कार्ल मार्क्स के अनुसार सामाजिक परिवर्तन-एक दृष्टि में—

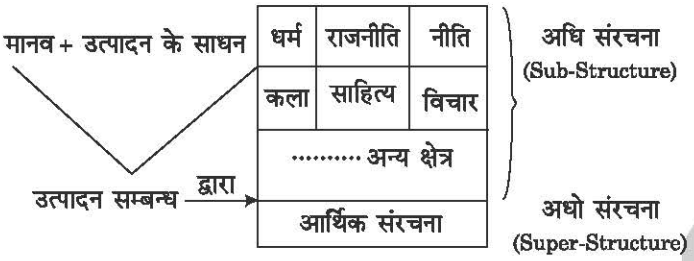

(iv) **पाँच समाज** (Five Societies)—इस प्रकार मार्क्स उत्पादन पद्धति को सामाजिक व्यवस्था का आधार सिद्ध करते हुए उस परिवर्तन प्रक्रिया का वर्णन करता है जो उत्पादन के साधनों में परिवर्तन के साथ सामाजिक विकास के नये चरणों को जन्म देती है। मार्क्स के अनुसार, ऐतिहासिक क्रम की प्रत्येक अवस्था चाहे वह कितनी ही खराब क्यों न दिखाई दे, अपनी पिछली अवस्था से उत्तम होती है क्योंकि यह विकास की चरम परिणति के निकट होती है।

उत्पादन के साधनों के आधार पर बदलने वाले समाज के इतिहास को मार्क्स ने निम्नलिखित पाँच युगों में बाँटा है—

1. **आदिम साम्यवादी युग**—यह इतिहास का प्रारम्भिक युग था जिसमें उत्पादन तथा वितरण साम्यवादी ढंग से होता था अर्थात् उत्पादन के साधनों पर किसी व्यक्ति-विशेष का अधिकार न होकर सम्पूर्ण समुदाय का होता था। इस युग में समाज न तो वर्गों में बँटा था और न ही किसी प्रकार का शोषण अस्तित्व में था।
2. **दासता का युग**—इस युग के अन्तर्गत उत्पादन के साधनों पर कुछ चन्द व्यक्तियों का अधिकार होता था, जिन्हें मालिक कहा जाता था। अधिकांश व्यक्ति इन मालिकों के दास होते थे जो उत्पादन कार्य सम्पन्न करते थे। अत: समाज—मालिक तथा दास—इन दो वर्गों में बँटा हुआ था जिनमें संघर्ष होना स्वाभाविक था।
3. **सामन्तवादी युग**—फिर सामन्तवादी युग आया जिसमें उत्पादन के साधनों, विशेषकर भूमि पर सामन्तों का अधिकार होता था। खेती भूमिविहीन कृषक दासों द्वारा करायी जाती थी। यद्यपि कृषक दास तो न थे, फिर भी उनका अनेक प्रकार से शोषण किया जाता था।
4. **पूँजीवादी युग**—सामन्तवादी युग के समाप्त होने पर पूँजीवादी युग का उदय हुआ जो आज भी अस्तित्व में है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादन के साधनों पर पूँजीपतियों का स्वामित्व है और उत्पादन कार्य मजदूरों द्वारा सम्पन्न किया जाता है। पूँजीपति श्रमिकों से अधिक कार्य लेते हैं और कम-से-कम मजदूरी देते हैं अर्थात् पूँजीपति श्रमिकों का शोषण करते हैं। इस शोषण को बढ़ते रहने के कारण श्रमिकों की आर्थिक दशा दिन-प्रतिदिन बिगड़ती जाएगी और श्रमिक बाध्य होकर क्रान्ति द्वारा पूँजीपतियों को उखाड़ देगा। अन्तत: पूँजी और समाज की बागडोर श्रमिकों के हाथ में आ जाएगी।
5. **साम्यवादी युग**—मार्क्स ने बताया कि पाँचवाँ तथा अन्तिम युग समाजवादी या साम्यवादी युग होगा जिसमें उत्पत्ति के साधनों पर सामाजिक स्वामित्व होगा तथा समस्त उत्पत्ति समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर की जाएगी। समाजवादी समाज में वर्ग-भेद नहीं होगा। प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार कार्य करेगा और अपनी आवश्यकतानुसार पारिश्रमिक पाएगा। यही मार्क्स का ऐतिहासिक भौतिकवाद तथा समाजवाद है।

मार्क्स ने साम्यवादी युग के दो लक्षण बतलाये हैं—(क) यह समाज अन्ततोगत्वा राज्यविहीन तथा वर्गविहीन (State and Classless Society) होगा। (ख) इस समाज के अन्दर वितरण का सिद्धान्त होगा—"प्रत्येक अपनी योग्यता के अनुसार कार्य करे एवं उसे अपनी आवश्यकता के अनुसार धन प्राप्त हो।"

मार्क्स द्वारा प्रतिपादित मानव इतिहास के 'आर्थिक नियतिवाद' को निम्नांकित ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है—
(क) उत्पादन सम्बन्धों तथा आर्थिक अवस्थाओं के आधार पर समाज के इतिहास को पाँच मुख्य युगों में बाँटा गया है।
(ख) इतिहास की आर्थिक व्याख्या के माध्यम से मार्क्स पूँजीवाद के अन्त तथा साम्यवाद के आगमन की अनिवार्यता व्यक्त करता है।

आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation)

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि मार्क्स की इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या उत्पादन-प्रणाली, उत्पादन-सम्बन्ध तथा भौतिक जीवन को आधार मानकर विकसित हुई है। यह उनके द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की पद्धति का सफल प्रयोग है। मार्क्स के इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या की अग्रलिखित आलोचनाएँ की जाती हैं—

TOUCH 'n PASS

1. **गैर-आर्थिक पक्षों की अवहेलना**—मार्क्स ने इतिहास के राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि पक्षों के प्रभाव की अवहेलना की है। मनुष्य के पारस्परिक प्रेम-भाव, नैतिकता, शिक्षा एवं अन्य राजनैतिक तथा सामाजिक स्थितियाँ भी अपना महत्त्वपूर्ण सामाजिक स्थान रखती हैं और देश के विकास को नियन्त्रित करती हैं।
2. **उत्पादन व विनिमय को अधिक महत्त्व**—ऐतिहासिक विकास में उत्पादन और विनिमय के ढंग महत्त्वपूर्ण अवश्य हैं किन्तु केवल ये ही उसे निर्धारित नहीं करते।
3. **अव्यावहारिक**—मार्क्स का आर्थिक दृष्टिकोण व्यावहारिक नहीं है क्योंकि वे यह बताने में असफल रहे हैं कि स्वयं आर्थिक कारक में किन कारणों से परिवर्तन होता है। आर्थिक कारक का अर्थ भी स्पष्ट नहीं है।
4. **अवैज्ञानिक**—मार्क्स का यह सिद्धान्त अवैज्ञानिक है क्योंकि उसमें कार्य और कारण की सदैव संगति नहीं है। समाज में अनेक विरोधी व्यवस्थाएँ होती हैं। एक ही कारक दो विरोधी परिणामों को कैसे उत्पन्न कर सकता है, यह अनुचित ही है।
5. **उत्पादन प्रणाली व सामाजिक सम्बन्ध**—विश्व में विभिन्न प्रौद्योगिक स्तर वाले अनेक देशों में पूँजीवादी व्यवस्था पायी जाती है। ऐसी स्थिति में उत्पादन प्रणाली की विशिष्टता सामाजिक सम्बन्धों का निर्माण करने में असफल रहती है।
6. **शक्तिपूर्ण सामाजिक विकास**—सामाजिक विकास और परिवर्तन केवल संघर्ष और क्रान्ति से ही नहीं होता। इतिहास में बहुत-से ऐसे उदाहरण मिलते हैं जबकि सामाजिक जीवन का विकास क्रान्तियों और संघर्षों की अपेक्षा शान्तिपूर्ण व्यवस्था और सहयोग से हुआ है।

यद्यपि इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या की काफी आलोचना तथा प्रत्यालोचना हुई है फिर भी मार्क्स की इस विचारधारा का व्यावहारिक महत्त्व है। भारत भी इसके प्रभाव से नहीं बच सका है। भारत के सीमावर्ती प्रान्तों में आर्थिक आधारों पर ही साम्यवादी विचारधारा फैल रही है। 1960 में भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में जो भूमि-छीन आन्दोलन शुरू हुआ था, उसका आधार भी आर्थिक ही था। फिर भी यह कहा जा सकता है कि आर्थिक आधारों को सामाजिक परिवर्तन का एकमात्र कारण मानना उचित नहीं है। स्वयं मार्क्स तथ एंजिल्स ने अपनी इस त्रुटि को ठीक करने का प्रयत्न किया है और बाद में घोषित किया है कि वे धार्मिक, राजनीतिक व बौद्धिक आदि अन्य कारकों का भी महत्त्व स्वीकार करते हैं किन्तु आर्थिक कारण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं।

प्र.4. कार्ल मार्क्स का परम्परावाद एवं आधुनिक अर्थशास्त्रियों से सम्बन्ध का विस्तृत वर्णन कीजिए। मार्क्सवाद की आलोचनाओं का भी उल्लेख कीजिए।

Describe in detail Carl Marx's relationship with classicism and modern economists. Also, mention the criticisms of Marxism.

उत्तर

मार्क्स तथा परम्परावाद
(Marx and Classicism)

"मार्क्सवाद केवल परम्परावादी तने पर उगी हुई एक शाखामात्र है।" ("Marxism is simply a branch grafted on the classical trunk.")

कार्ल मार्क्स ने न केवल अपने पूर्वज समाजवादियों के विचारों का अध्ययन किया था बल्कि परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के विचारों का भी अध्ययन किया था। अपनी पुस्तक (The Critique of Political Economy) में कार्ल मार्क्स ने स्पष्ट रूप से बताया है कि ब्रिटिश म्यूजियम लाइब्रेरी में *'Das Capital'* के लिए सामग्री एकत्रित करते हुए उन्होंने परम्परावादी अर्थशास्त्र का अध्ययन किया। अत: मार्क्स ने किसी मौलिक सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया बल्कि अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और विलक्षण विचार शक्ति का प्रयोग करते हुए उसने परम्परावादियों के सिद्धान्त में ही संशोधन करके उन्हें नवीन रूप प्रदान किया है। इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि मार्क्सवाद की आधारशिला परम्परावादी अर्थशास्त्र है। **प्रो० जीड एवं रिस्ट** लिखते हैं कि "मार्क्सवाद के सिद्धान्त प्रत्यक्ष रूप से 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में होने वाले प्रमुख अर्थशास्त्रियों, विशेषकर रिकार्डो के सिद्धान्तों से उदित हुए हैं।" वास्तव में मार्क्स के लगभग सभी प्रमुख आर्थिक सिद्धान्तों के स्रोत स्मिथ व रिकार्डो के आर्थिक विचार हैं। अन्य शब्दों में, मार्क्स के विचारों में एडम स्मिथ और रिकार्डो का प्रभाव स्पष्टत: परिलक्षित होता है। रिकार्डो के मुख्यत: निम्न सिद्धान्त हैं जिनसे मार्क्स प्रभावित हुए हैं—

1. **'मूल्य का श्रम सिद्धान्त'** का प्रतिपादन सर्वप्रथम एडम स्मिथ ने किया था। उन्होंने बताया कि किसी वस्तु का मूल्य उसे बनाने में लगने वाले श्रम की मात्रा पर निर्भर करता है। स्मिथ ने बताया कि यदि हम किसी वस्तु का विनिमय मूल्य ज्ञात करना चाहते हैं तो उसका एकमात्र तरीका यह है कि हम उस वस्तु के उत्पादन व्यय पर होने वाली श्रम की मात्रा का ज्ञान प्राप्त कर लें। उदाहरण के लिए, यदि 'अ' वस्तु के उत्पादन पर श्रमिक 4 घण्टे व्यय करता है और 'ब' के उत्पादन पर 12 घण्टे व्यय करता है तो 'ब' वस्तु का मूल्य 'अ' वस्तु की अपेक्षा तिगुना होगा।

इसके बाद रिकार्डो ने अपने मूल्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उन्होंने मूल्य को दो भागों में बाँटा है—(अ) प्रयोग मूल्य, (ब) विनिमय मूल्य। रिकार्डो ने बताया कि प्रयोग मूल्य महत्त्वपूर्ण अवश्य है किन्तु अर्थशास्त्र का सम्बन्ध विनिमय मूल्य से है। कारण यह है कि प्रयोग मूल्य का सम्बन्ध उपयोगिता से है और उपयोगिता एक भावनात्मक विषय है जिसको मापा नहीं जा सकता परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि प्रयोग मूल्य अर्थात् उपयोगिता का कोई महत्त्व नहीं है। अगर किसी वस्तु में उपयोगिता नहीं है तो कोई व्यक्ति उसे नहीं खरीदेगा। रिकार्डो के मतानुसार किसी वस्तु का विनिमय मूल्य दो बातों पर निर्भर करता है—

वस्तु की दुर्लभता और वस्तु को प्राप्त करने में लगे श्रम की मात्रा। जो वस्तुएँ दुर्लभ हैं, उनके मूल्य का उनके बनाने में व्यय किये गये श्रम से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता है किन्तु जो वस्तुएँ दुर्लभ नहीं हैं, उनके मूल्य का निर्धारण श्रम के आधार पर होता है। अत: ऐसी वस्तुएँ जिनकी पूर्ति को श्रम के द्वारा घटाया-बढ़ाया जा सकता है, उन्हीं के सम्बन्ध में रिकार्डो ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं।

यद्यपि रिकार्डो का यह मूल्य सिद्धान्त पूर्ण नहीं था लेकिन इसके बावजूद मार्क्स पर इस सिद्धान्त का काफी प्रभाव पड़ा। मार्क्स ने मूल्य को इसी सिद्धान्त के द्वारा पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को नष्ट करने हेतु शोषक सिद्धान्त का निर्माण किया।

2. **अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त**—मूल्य के श्रम के सिद्धान्त पर मार्क्स ने अपने अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त के द्वारा मार्क्स ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि किस प्रकार पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में पूँजीपति श्रमिकों और उपभोक्ताओं का शोषण करते हैं, ताकि उनके लाभ में बढ़ोत्तरी हो सके।
3. **लाभ व ब्याज अनुपार्जित आय**—रिकार्डो के लगान सिद्धान्त ने भी मार्क्स को अत्यधिक प्रभावित किया। रिकार्डो ने बताया कि लगान एक अनुपार्जित आय है जिसके लिए भूमिस्वामी को कोई परिश्रम नहीं करना पड़ता। रिकार्डो के इस सिद्धान्त से प्रभावित होकर ही मार्क्स ने निजी सम्पत्ति का विरोध करते हुए कहा कि भूमिस्वामी लगान के रूप में पूँजीपति ब्याज के रूप में व साहसी लाभ के रूप में जो कुछ प्राप्त करते हैं वह सब अनुपार्जित आय है और इस पर सम्पूर्ण समाज का अधिकार होना चाहिए। इसके अतिरिक्त मार्क्स ने औद्योगिक सेना का जो विचार प्रस्तुत किया, वह रिकार्डो के उन विचारों पर आधारित है जो उसने मशीनों के प्रभावों का वर्णन करते समय दिये हैं। साथ ही रिकार्डो व मार्क्स दोनों ही ने एकाधिकार मूल्य और अपूर्ण प्रतियोगिता में मूल्य निर्धारण की चर्चा नहीं की। इस प्रकार मार्क्स ने जो कुछ लिखा और कहा, उसे बड़ी सरलता से परम्परावादी अर्थशास्त्रियों की रचनाओं में खोजा जा सकता है।

   व्यापारिक मन्दी के सिद्धान्त के विषय में उन्होंने जे०बी० से को त्यागकर माल्थस की बात मानी है। 'माल्थस' के अनुसार 'मार्क्स' भी मानते हैं कि मजदूरी कम होने से समाज की क्रय-शक्ति कम हो जाती है और इस कारण अति-उत्पादन होता है। यद्यपि मजदूरी कम होने के दोनों कारणों में अन्तर है।

मार्क्स केवल परम्परावादी विचारधारा से ही प्रभावित नहीं थे बल्कि उनकी शैली को भी उन्होंने अपनाया। अपने सिद्धान्त के प्रतिपादन में मार्क्स ने अधिकांश परम्परावादी अर्थशास्त्रियों की भाँति निगमन प्रणाली का उपयोग किया। समानता का दूसरा प्रमाण हमें मार्क्स के सिद्धान्तों की सार्वभौमिकता में मिलेगा। स्मिथ की भाँति मार्क्स ने भी अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन किसी राष्ट्र-विशेष के सन्दर्भ में न करके सम्पूर्ण विश्व के लिए किया।

मार्क्सवादी विचारधारा के ऊपर परम्परावादी विचारधारा के इन प्रभावों को देखकर ही **प्रो० जीड एवं रिस्ट** ने लिखा है, "मार्क्सवाद केवल परम्परावादी तने पर उगी हुई शाखामात्र है।"

विचारों के दृष्टिकोण में तो मार्क्स तथा परम्परावादियों के बीच पायी जाने वाली समानता को हमने ऊपर देखा। यह समानता केवल विचारों तक ही सीमित नहीं बल्कि रचना के विस्तार में भी लागू होती है। कुछ विचारकों के मत में मार्क्स की पुस्तक *'Das Capital'* का शीर्षक एडम स्मिथ की पुस्तक *'Wealth of Nations'* के शीर्षक से प्रभावित होता है। इतना ही नहीं, कुछ अन्य बातों में भी *'Das Capital'* स्मिथ की 'Wealth of Nations' से मिलती-जुलती है।

उपर्युक्त समानताओं का यह कदापि अर्थ नहीं है कि 'मार्क्स' और प्रतिष्ठित विचारधाराओं में कोई अन्तर नहीं है। वस्तुत: 'मार्क्स' कई आधारभूत विषयों में प्रतिष्ठित विचारकों से भिन्न हैं। उदाहरण के लिए—

1. **वातावरण**—प्रतिष्ठित या परम्परावादी कहते थे कि वातावरण स्थायी है तथा उसमें कभी भी परिवर्तन नहीं होगा किन्तु 'मार्क्स' का कहना था कि वातावरण और परिस्थितियाँ परिवर्तनशील हैं तथा वे कभी भी स्थिर नहीं रह सकतीं।
2. **जनसंख्या सिद्धान्त**—कार्ल मार्क्स ने कई प्रतिष्ठित सिद्धान्तों को अस्वीकार भी किया है। उदाहरण के लिए, मार्क्स को माल्थस का जनसंख्या का सिद्धान्त अमान्य है। निर्धनता और भुखमरी को वे जनसंख्या की वृद्धि के कारण नहीं वरन्

पूँजीवादी शोषण के परिणामस्वरूप मानते हैं। पूँजीवादी की समाप्ति के बाद ही जनसंख्या में वृद्धि से उत्पन्न खतरा समाप्त हो जाएगा। [उल्लेखनीय है कि साम्यवादी चीन का अनुभव माल्थस के सिद्धन्त की सच्चाई को प्रकट करता है।]

3. **आशा व निराशा**—परम्परावादी विचारकों जैसे 'माल्थस' एवं 'एडम स्मिथ' के विचारों में निराशा झलकती है परन्तु कार्ल मार्क्स के पूरे साहित्य में आशा का संदेश है। वे कहते हैं कि समाजवाद वह उज्ज्वल भविष्य है जिसे मजदूरों को प्राप्त करना चाहिए।
4. **शाश्वत नियम**—अर्थशास्त्री अर्थशास्त्र के नियमों को भी लगभग शाश्वत समझते थे। मार्क्स के अनुसार आर्थिक नियम शाश्वत नहीं होते। प्रत्येक अर्थव्यवस्था के, चाहे पूँजीवाद हो या समाजवाद, अपने नियम होते हैं। इस बात की ओर प्रसिद्ध मार्क्सवादी विचारक एवं लेनिन के सहयोगी लियो ट्राटस्की (Leon Trotsky) ने अपने ग्रन्थ *'Living Thoughts of Karl Marx'* में ध्यान दिलाया है। उन्होंने लिखा है कि "मार्क्स का उद्देश्य अर्थशास्त्र के शाश्वत नियमों को खोजना नहीं था। वे इस प्रकार के नियमों का अस्तित्व नहीं मानते थे। मानव समाज के विकास का इतिहास अनेक आर्थिक व्यवस्थाओं का क्रम है और प्रत्येक व्यवस्था अपने स्वयं के नियमों से संचालित होती है।"
5. **गरीबी तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति**—रिकार्डो एवं 'माल्थस' के अनुसार गरीबी तथा व्यक्तिगत सम्पत्ति के स्थायी लक्षण हैं किन्तु 'मार्क्स' ऐसा कुछ नहीं मानते।
6. **बाजार के नियम**—मार्क्स ने **जे०बी० से** के बाजार के नियम को भी अस्वीकार कर दिया है। वह यह नहीं मानते कि पूर्ति स्वयं अपनी माँग पैदा करती है। उनके अनुसार मन्दी पूँजीवादी व्यवस्था का अनिवार्य लक्षण है।

यही नहीं, कुछ अंश तक मार्क्स का विश्लेषण रिकार्डो के विश्लेषण से अधिक अच्छा है। उदाहरण के लिए, उसने रिकार्डो के चल और अचल सम्पत्ति के स्थान पर स्थिर व परिवर्तनशील पूँजी व अधिक स्पष्ट शब्दों का प्रयोग किया है। इसी प्रकार उसने रिकार्डो के उत्पादन की पद्धति के समय के क्षुद्र विचारों के स्थान पर पूँजी की आंगिक रचना (Organic Structure) का एक बहुत शक्तिशाली विचार हमारे सामने रखा। इसके अतिरिक्त उसने पूँजी के सिद्धान्त में भी कुछ महत्त्वपूर्ण विचारों को प्रस्तुत किया है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि मार्क्स स्वयं एक मौलिक विचारक नहीं थे बल्कि परम्परावादी शाखा, विशेषकर रिकार्डो से प्रभावित थे परन्तु इसके कहने के स्थान पर कि "मार्क्सवाद परम्परावादी तने पर उगी हुई एक शाखा है" यह कहना उचित होगा कि "Classical economists had already nibbled at that the roots of the Marxist tree, before the root could grow into the trunk."

मार्क्स तथा आधुनिक अर्थशास्त्री (Marx and Modern Economists)

कुछ विद्वानों का मत है कि मार्क्स के विचार आधुनिक अर्थशास्त्रियों से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। मार्क्स ही सर्वप्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने वैज्ञानिक ढंग से सम्पूर्ण आर्थिक प्रणाली की समस्या का अध्ययन करने की चेष्टा की थी और इस प्रकार उसने बाद में आने वाले अर्थशास्त्रियों के मार्ग को सरल बनाया था। विशेषकर कीन्स के लिए जिसने व्यापक अर्थशास्त्र का विस्तृत ढाँचा तैयार किया था परन्तु मार्क्स और कीन्स के दृष्टिकोण में मूल अन्तर यह है कि कीन्स उपस्थित संस्थाओं को सुरक्षित रखना चाहता था परन्तु मार्क्स का दृष्टिकोण विनाशकारी और समालोचक का था।

पूँजी के एकत्रीकरण व शोषण सम्बन्धी सिद्धान्तों को प्रतिपादित करते समय मार्क्स ने अपूर्ण प्रतियोगिता सिद्धान्त की ओर संकेत किया है। मार्क्स ने पूँजी के संकेन्द्रण में आधुनिक साख प्रणाली के महत्त्व पर भी प्रकाश डाला है। पूँजी के एकत्रीकरण के सम्बन्ध में उसने स्पष्ट रूप से कहा है कि पूँजी का एकत्रीकरण प्रतियोगिता का प्रत्यक्ष परिणाम है और प्रतियोगिता ही पूँजीवादी व्यवस्था की आत्मा है।

यद्यपि मार्क्स ने व्यापार चक्र सिद्धान्त ही स्पष्ट शब्दों में व्याख्या नहीं की फिर भी वह उन पहले अर्थशास्त्रियों में एक था जिन्होंने पूँजीवादी प्रणाली में व्यापार चढ़ाव सम्बन्धी विषय की विवेचना की थी। मार्क्स उन पहले थोड़े-से लेखकों में से एक था जिन्होंने यह बताया कि थोड़े-थोड़े समय में उत्पन्न होने वाले औद्योगिक संकट मंदी व तेजी आदि सभी प्राविधिक क्षेत्र में रहने वाली प्रगति का परिणाम है। उसने यह भी लिखा कि व्यापार चक्र का काल मशीन के उपयोग की रफ्तार और मशीन के जीवन पर निर्भर करता है। स्पष्टत: उसके विचार, विशेषकर व्यापार चक्रों के क्षेत्र में, आधुनिक सिद्धान्तों जैसे थे। प्रभावपूर्ण माँग के विश्लेषण में भी वह आधुनिक अर्थशास्त्रियों से कन्धा मिलाकर चलता हुआ दिखायी देता है।

मार्क्सवाद की आलोचनाएँ (Criticisms of Marxism)

कार्ल मार्क्स के विचारों एवं सिद्धान्तों की निम्नलिखित आलोचनाएँ की जाती हैं—

1. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद सिद्धान्त की आलोचनाएँ, 2. इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या की आलोचनाएँ,

3. मूल्य के श्रम सिद्धान्त की आलोचनाएँ, 4. अतिरिक्त मूल्य सिद्धान्त की आलोचनाएँ,
5. पूँजी संचय सिद्धान्त की आलोचनाएँ।

उपर्युक्त सिद्धान्तों की आलोचनाएँ यथास्थान की जा चुकी है। अत: अब हम उनकी पुनरावृत्ति नहीं कर रहे हैं।

6. **मालिक विचारक न होना** (Not a Original Thinker)—निम्न बातों के आधार पर मार्क्स को मौलिक विचारक नहीं कहा जाता है—
   (i) मार्क्स ने इतिहास के आधार आर्थिक प्रगति की जो श्रेणियाँ गिनाई हैं, वे **एडम स्मिथ** तथा **लिस्ट** से ली हुई है।
   (ii) रिकार्डो ने अपने अध्ययन में **निगमन प्रणाली** (Deductive Method) को अपनाया था। बाद में मार्क्स ने भी इसी प्रणाली को अपने अध्ययन का आधार बनाया था।
   (iii) मार्क्स भी अन्य प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की तरह से यह मानता है कि आर्थिक नियम विश्वव्यापी होते हैं।
   (iv) मार्क्स का वर्ग-संघर्ष का सिद्धान्त कोई मौलिक नहीं है। वर्ग-संघर्ष की बात तो रिकार्डो ने भी कही थी।
7. **मार्क्स की भविष्यवाणी का गलत होना** (Wrong Prodictions)—मार्क्स ने भविष्यवाणी की थी कि जब पूँजीवाद अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है, तब वह स्वत: ही समाप्त हो जाता है। उसकी यह भविष्यवाणी सही नहीं है। दुनिया के अनेक देशों में पूँजीवाद फल-फूल रहा है, परन्तु अभी तक उसमें समाप्ति के चिह्न नहीं दिखायी देते हैं, हाँ समाजवादी देश भी अब पूँजीवाद की ओर आकर्षित हो रहे हैं।

प्र.5. 'जे०बी० से' के आर्थिक विचारों की व्याख्या कीजिए तथा 'कीन्स' द्वारा 'जे०बी० से' के बाजार सिद्धान्त की आलोचनाओं का वर्णन कीजिए।

'J.B. Say' critically Examine the economic ideas of 'J.B. Say' and mention the criticism of "J.B. Say' law of market by Keynes.

उत्तर

जे०बी० से
(J.B. Say)

फ्रांस में प्रतिष्ठित विचारधारा के संस्थापक एवं अग्रणी **जे०बी० से** का जन्म लियोन्स (फ्रांस) में 5 जनवरी, 1767 को हुआ था। मूल रूप में **जे०बी० से** एक व्यापारी थे लेकिन एडम स्मिथ की **'वेल्थ ऑफ नेशन्स'** के अध्ययन ने इन्हें एक अर्थशास्त्री बना दिया। अपने सम्पूर्ण जीवन में 'से' (Say) की ख्याति एक पत्रकार, सैनिक, राजनीतिज्ञ, व्यापारी एवं अर्थशास्त्री के रूप में रही। इनके प्रमुख ग्रन्थ *Political Economy'* का प्रकाशन सन् 1803 में हुआ। इसके अतिरिक्त इनके अन्य दो ग्रन्थों—*'Calechism of Political Economy'* एवं 'A Complete Course in Practical Political Economy' का प्रकाशन क्रमश: 1817 एवं 1828-29 में हुआ। जे०बी० से की सबसे बड़ी उपलब्धि यही थी कि उन्होंने फ्रांस में **एडम स्मिथ** के विचारों का प्रचार एवं प्रसार किया एवं उनके सिद्धान्तों की अपने देश के लोगों के समक्ष व्याख्या प्रस्तुत की।

प्रमुख आर्थिक विचार
(Main Economic Thought)

जे०बी० से के प्रमुख आर्थिक विचारों का अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं—

1. **अर्थ-विज्ञान की परिभाषा एवं स्वरूप** (Definition and Nature of Economic Science)—राजनीतिक अर्थ-विज्ञान का क्या स्वरूप होना चाहिए, इसके सम्बन्ध में 'से' के स्पष्ट विचार थे। वे इसे एक यथार्थ विज्ञान मानते थे जिसके स्वरूप का निर्माण कुछ मूलभूत सिद्धान्तों, अधिक अनुमानों एवं इन सिद्धान्तों के परिणामों द्वारा होता है। भौतिक नियमों के समान अर्थ-विज्ञान के नियम भी प्रकृति से निकाले जाते हैं। इन्होंने अर्थ-विज्ञान के तीन भाग किये—उत्पादन, वितरण एवं सम्पत्ति का उपभोग। विनिमय को उत्पादन का ही अंग माना। 'से' के अनुसार राष्ट्रीय आय का निर्माण तीन अंशों—लगान, मजदूरी एवं लाभ—द्वारा होता है। वे इस विज्ञान को सैद्धान्तिक एवं वर्णनात्मक मानते थे एवं उनके मत में अर्थशास्त्री का कार्य केवल निरीक्षण करना, विश्लेषण करना एवं विवरण देना है, न कि सलाह देना। इस प्रकार 'से' अर्थ-विज्ञान को व्यावहारिक कला मानने के पक्ष में नहीं थे।
2. **अर्थशास्त्र के नियम** (Laws of Economics)—'से' ने अर्थशास्त्र को भौतिकशास्त्र (Physics) के समान एक विज्ञान माना और उसके कुछ प्राकृतिक नियम बताये जिनको खोजना अर्थशास्त्री का प्रधान कार्य है। उन्होंने लिखा है,

TOUCH 'n PASS

"(इस) विज्ञान के नियम भौतिकशास्त्र के नियमों के समान ही प्राकृतिक और अमानवीय है। वे सत्ता में सहज रूप से विद्यमान हैं। वे बनाये नहीं जाते, खोजे जाते हैं। स्वयं विधायक और शासक भी इन नियमों के अधीन होते हैं और कोई भी बिना सजा के इनका उल्लंघन नहीं कर सकता।"

3. **मूल्य का सिद्धान्त** (Theory of Value)—बिना मूल्य सिद्धान्त की विवेचना के **प्रो० से** के योगदान का लेखा-जोखा अपूर्ण ही रहेगा। प्रो० से ने मूल्य के सम्बन्ध में उपयोगिता एवं उसके मनोवैज्ञानिक पक्ष पर अधिक बल दिया है। स्मिथ ने इस सम्बन्ध में उपयोग-मूल्य का केवल उल्लेख करके अपना समस्त ध्यान विनिमय-मूल्य पर केन्द्रित किया था परन्तु **प्रो० से** ने माँग और पूर्ति का विश्लेषण करते समय उपयोगिता को अधिक महत्त्व दिया है। उनका कथन है कि किसी वस्तु में उपयोगिता के कारण ही मूल्य का उदय होता है। कीमत वस्तु के अर्घ का माप है एवं अर्घ उपयोगिता का माप है परन्तु **से** ने लागत पर आधारित सामान्य मूल्य की भी चर्चा की है। उन्होंने स्मिथ के श्रम-मूल्य सिद्धान्त (Labour Cost Theory) की आलोचना करते हुए कहा है कि लगान एवं लाभ सहित **औद्योगिक लागत** (Industrial Cost) ही मूल्य का निर्धारण करती है। उनका कथन है कि वस्तु की उपयोगिता उसकी कीमत को उत्पादन लागत के बराबर कर देती है और यदि ऐसा सम्भव नहीं हो पाता तो वास्तव में कुछ भी उत्पादन नहीं किया जाता। इस सम्बन्ध में उत्पत्ति के साधनों की चर्चा करते हुए वे कहते हैं कि "उत्पत्ति के साधनों का मूल्य वस्तुओं का मूल्य निर्धारित नहीं करता वरन् इसके विपरीत वस्तु की उपयोगिता ही उत्पत्ति के साधनों की खोजकर उन्हें मूल्य प्रदान करती है।"
प्रो० रिकार्डो ने **से** के मूल्य सिद्धान्त की यह कहकर आलोचना की है कि वह भ्रमपूर्ण है परन्तु इस सम्बन्ध में **प्रो० ग्रे** कहते हैं कि "मूल्य के सिद्धान्त में प्रो० से ने कुछ दूर तक नये पथ का अनुसरण किया यद्यपि वे उसका फल प्राप्त करने के लिए अधिक समय तक नहीं रुके।"
4. **स्मिथ के सिद्धान्तों का संशोधन** (Modification in Smith's Laws)—यद्यपि स्मिथ की **'वेल्थ ऑफ नेशन्स'** से जे०बी० से से बहुत प्रभावित हुए एवं इस पुस्तक के कारण ही उन्हें अर्थशास्त्री बनने की प्रेरणा मिली किन्तु वे स्मिथ के सारे विचारों से सहमत नहीं थे एवं उनके कुछ सिद्धान्तों में 'से' न संशोधन भी प्रस्तुत किये जिन्हें मान्यता मिली। स्मिथ भूमि को अधिक उत्पादक मानते थे एवं अन्य प्राकृतिक शक्तियों, जैसे—जल, बिजली, वाष्प इत्यादि में उत्पादन शक्ति नहीं मानते थे परन्तु 'से' ने इस मत को नहीं माना एवं इस बात पर जोर दिया कि केवल कृषि में वरन् अन्य क्षेत्रों में भी प्रकृति, मानव के साथ सहयोग करती है। **से** के अनुसार मनुष्य किसी वस्तु का निर्माण नहीं करता वरन् वस्तु के रूप का परिवर्तन कर देता है। उन्होंने बताया कि उत्पादन, उपयोगिता का सृजन है, अत: इस अर्थ में सारी शक्तियाँ, चाहे वे उद्योग में, व्यापार में या कृषि में कार्यशील हों, उत्पादक हैं। 'से' ने डॉक्टर, वकील इत्यादि की सेवाओं को अभौतिक उत्पादन में शामिल किया। इसे हम एक उदाहरण द्वारा प्रस्तुत करेंगे। एक डॉक्टर एक मरीज को अपनी दवा एवं निर्देश देकर अच्छा कर देता है। क्या यह कार्य अनुत्पादक एवं विनिमय से परे है। नहीं, डॉक्टर का सलाह का विनिमय फीस द्वारा हुआ है—डॉक्टर की सलाह देना उत्पादन है एवं उसका सुनना उपयोग है—दोनों कार्य एक साथ हुए हैं, सलाह की आवश्यकता उसके देने के साथ ही समाप्त हो गई, अत: इस प्रकार के अनैतिक उत्पादन का संग्रह नहीं किया जा सकता एवं उनसे राष्ट्र की पूँजी नहीं बढ़ायी जा सकती।
5. **मुक्त व्यापार का समर्थन** (Support of Free Trade)—प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र की परम्परानुसार से ने भी मुक्त व्यापार का समर्थन किया है। वे भी स्मिथ के समान मानते थे कि जो सहज है, वह कल्याणकारी भी है। वे राज्य के हस्तक्षेप को अत्यन्त हानिप्रद समझते थे।
6. **बाजार का नियम** (Law of Market)—जे०बी० से द्वारा प्रतिपादित आर्थिक विचारों में बाजार का नियम अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मौलिक विचार है जिसके अनुसार पूर्ति स्वयं अपनी माँग का निर्माण करती है" (Supply creates its own demand) जिसका अर्थ यह है कि प्रत्येक उत्पादक जो बाजार में वस्तुओं की पूर्ति करता है, वह ऐसा वस्तुओं को अन्य वस्तुओं से विनिमय करने के उद्देश्य से करता है। अत: एक विनिमयशील अर्थव्यवस्था में जो भी उत्पादन किया जाता है, वह अन्य वस्तुओं की माँग का प्रतिनिधित्व करता है। **से** के शब्दों में, "उत्पादन ही वस्तुओं के लिए बाजार पैदा करता है। इसका अर्थ यह है कि बाजार ही उत्पादन का सृजन करता है। उसके मतानुसार माँग का मुख्य स्रोत उत्पादन के विभिन्न साधनों से प्राप्त होने वाली आय होती है और यह आय उत्पादन प्रक्रिया से स्वत: ही उत्पन्न होती है। फलत: जितना माल तैयार होता है, वह सारा स्वत: बिक जाता है। **'से'** के अनुसार, "यह उत्पादन है जिसके द्वारा वस्तु की बाजार उत्पन्न की जाती है।" (It is production which creates market for goods)।

'से' के नियम की मौद्रिक अर्थ-प्रणाली में क्रियाशीलता को निम्नलिखित विधि द्वारा व्यक्त किया जा सकता है—

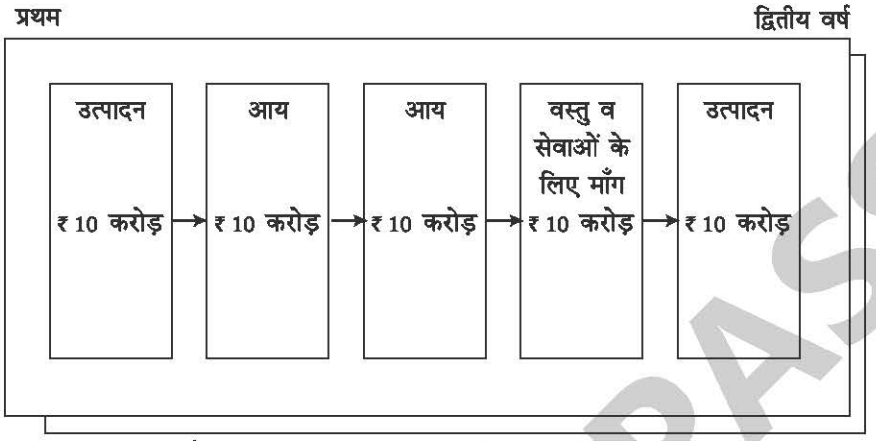

मौद्रिक अर्थव्यवस्था में 'से' के नियम की क्रियाशीलता

उपर्युक्त उदाहरण से ज्ञात होता है कि प्रथम वर्ष अर्थव्यवस्था में ₹ 10 करोड़ का उत्पादन (समस्त पूर्ति) होता है। इसके फलस्वरूप उत्पादन के साधनों की आय में ₹ 10 करोड़ की वृद्धि होगी। वे ₹ 10 करोड़ की आय को कुल पूर्ति खरीदने में खर्च कर देंगे। इस प्रकार कुल माँग में ₹ 10 करोड़ की वृद्धि होगी। अत: कुल पूर्ति अपनी माँग का स्वयं निर्माण कर लेगी। कुल माँग के कारण राष्ट्रीय आय फिर से उत्पादकों के पास पहुँच जाएगी तथा वे दूसरे वर्ष ₹ 10 करोड़ का उत्पादन कर सकेंगे। इस प्रकार यह चक्रीय प्रवाह चलता रहेगा और किसी प्रकार की सामान्य बेरोजगारी या अति उत्पादन की शंका नहीं रहेगी।

अपने सिद्धान्त से **प्रो० से** ने यह निष्कर्ष निकाला कि **सामान्य अत्युत्पादन** (Over-production) असम्भव है। यदि कहीं अत्यधिक उत्पादन है तो इसका कारण है कि कहीं उत्पादन में कमी है। अत: इसे दूर करने का उपाय यह है कि दूसरे क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाया जाना चाहिए। **से** के अनुसार, "वस्तुओं की कुल पूर्ति एवं उनकी कुल माँग आवश्यक रूप से बराबर रहना चाहिए क्योंकि कुल माँग केवल उत्पादन की जाने वाली वस्तुओं का समूह ही है। अत: साधारण **तौर** पर अत्युत्पादन एक मूर्खता की बात है।"

अपने बाजार के सिद्धान्त से **प्रो० जे०बी० से** ने तीन निष्कर्ष निकाले हैं—**प्रथम,** बाजार जितने विस्तृत होंगे, उतने ही लाभदायक होंगे क्योंकि माँग में वृद्धि होगी जिससे कीमतें भी बढ़ेंगी। **द्वितीय,** प्रत्येक अन्य दूसरे की उन्नति में अभिरुचि रखता है। एक राष्ट्र को उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं के समूह में बाँटना निरर्थक है क्योंकि प्रत्येक राष्ट्र उत्पादक एवं उपभोक्ता दोनों है। राष्ट्र के सन्दर्भ में प्रो० से का कथन है कि कृषि, उद्योग एवं वाणिज्य का साथ ही विकास होना चाहिए एवं अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एक राष्ट्र, समृद्ध पड़ोसी देशों से घिरे रहने में अभिरुचि रखता है। **तृतीय,** देश के उत्पादन के लिए आयात बाधक नहीं हो सकते क्योंकि विदेशों से जो कुछ भी खरीदा जाता है, वह देश की वस्तुओं के माध्यम से ही खरीदा जाता है।

मान्यताएँ (Assumptions)—यह सिद्धान्त निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है—

(i) अर्थव्यवस्था में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति पायी जाती है।
(ii) एक मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था में सदैव पूर्ण रोजगार की अवस्था को प्राप्त करने की प्रवृत्ति पायी जाती है।
(iii) सरकार द्वारा आर्थिक शक्तियों की क्रियात्मकता में कोई बाधा नहीं डाली जाती।
(iv) अर्थव्यवस्था में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार नहीं हो रहा है।
(v) कीमतों, मजदूरी की दरों, ब्याज की दरों में लोचशीलता होती है।
(vi) समस्त आय अपने आप उपयोग व निवेश पर खर्च हो जाती है।
(vii) बाजार के विस्तार की सम्भावना हो सकती है।

'कीन्स' द्वारा 'जे०बी से' के बाजार सिद्धान्त की आलोचनाएँ
(Criticisms of 'J.B Say's Law of Market by Keynes)

'से' के बाजार नियम की प्रमुख धारणा है कि 'पूर्ति स्वयं माँग पैदा करती है' व्यावहारिक रूप से आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं पर लागू नहीं होती जिसके परिणामस्वरूप 'सामान्य से अधिक उत्पादन' एवं 'सामान्य बेरोजगारी' नहीं हो सकती और 1929-33 की

TOUCH 'n' PASS

विश्वव्यापी मन्दी के समय ये अवास्तविक सिद्ध हुईं। कीन्स ने अपनी पुस्तक *'General Theory'* में इन धारणाओं की निम्नलिखित आलोचनाएँ कीं—

1. **गलत मान्यता** (Wrong Assumptions)—'से' का रोजगार का सिद्धान्त एवं प्रतियोगिता की गलत या अवास्तविक मान्यता पर आधारित है। वास्तविक जगत में पूर्ण प्रतियोगिता नहीं बल्कि अपूर्ण प्रतियोगिता पायी जाती है।
2. **अवास्तविक आधार** (Unrealistic Base)—यद्यपि उत्पादन की प्रक्रिया में उत्पत्ति के साधनों के स्वामी आय अर्जित करते हैं परन्तु यह आवश्यक नहीं कि वे इस आय को उत्पादित वस्तुओं को खरीदने में पूर्णतया व्यय कर दें बल्कि वे अपनी आय का एक भाग बचा लेते हैं। इस प्रकार राष्ट्रीय बचत के परिणामस्वरूप वस्तुओं की वर्तमान माँग कम हो जाती है और अन्ततः वर्तमान उत्पादन का कुछ भाग बाजार में बिक नहीं पाता।
3. **ब्याज दर की लोचशीलता** (Flexibility of Rate of Interest)—'से' के सिद्धान्त की यह धारणा भ्रमपूर्ण है कि बचत और विनियोग को ब्याज द्वारा बराबर किया जा सकता है। बचत और विनियोग ब्याज सापेक्ष नहीं होते बल्कि कीन्स के अनुसार ये आय सापेक्ष होते हैं। आय में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप बचत और विनियोग में समानता स्थापित की जा सकती है। राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि में परिवर्तन आता रहता है। इसके फलस्वरूप रोजगार के स्तर में परिवर्तन आता रहता है।
4. **अपूर्ण सिद्धान्त** (Incomplete Theory)—यह सिद्धान्त उन सब तत्त्वों की व्याख्या नहीं करता जो रोजगार के स्तर को निर्धारित करते हैं। इस सिद्धान्त में तो पूर्ण रोजगार को केवल एक सामान्य अवस्था तथा दी हुई स्थिति मानकर चलता है तथा केवल इस स्थिति में अवस्थायी विचलनों की ओर उन तथ्यों की व्याख्या करता है जो इन अस्थायी विचलनों के बाद पूर्ण रोजगार की सामान्य स्थिति को पुनः स्थापित करते हैं।
5. **सरकारी हस्तक्षेप** (Government Interference)—कीन्स ने स्वतन्त्र बाजार और प्रतियोगिता पर आधारित अर्थव्यवस्था की भी आलोचना की और कीमत प्रणाली द्वारा स्वतः सन्तुलन के लक्षण पर भी सन्देह प्रकट किया। उन्होंने आर्थिक विषयों में राज्य की हस्तक्षेप नीति को उचित बताया। **कीन्स** के शब्दों में, "आजकल की अर्थव्यवस्था में बिना सरकारी हस्तक्षेप के जनकल्याण नहीं हो सकता।" आर्थिक मन्दी और मुद्रा प्रसार दोनों ही समयों में कीन्स सरकारी हस्तक्षेप के पक्ष में थे।

आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation)

आर्थिक विचारों के इतिहास में **प्रो० से** का महत्त्व भुलाने योग्य नहीं है। फ्रांस के बाहर के अर्थशास्त्रियों ने प्रायः उन्हें पूर्ण रूप से नहीं पहचाना और यह कहकर उसकी आलोचना की है कि राजनीतिक अर्थविज्ञान की समस्याओं को हल करने की अपेक्षा प्रो० से से उनका चित्रण उथले ढंग से किया है। इस सम्बन्ध में **प्रो० हेने** का मत है कि प्रो० से की उपलब्धियों का अवमूल्यन (Underestimation) किया गया है। इस सम्बन्ध में **अलेक्जेंडर ग्रे** कहते हैं कि "जिस सिद्धान्त ने दीर्घकाल तक 'से' को अमर लोगों के साथ रहने की योग्यता प्रदान की, वह प्रशंसित एवं माना हुआ बाजार का सिद्धान्त था।"

से ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र को आगे बढ़ाया और कई मौलिक विचार दिये। उन्होंने अर्थशास्त्र से विज्ञान पक्ष को महत्त्व देकर विश्लेषणात्मक एवं आगमन पद्धति को लोकप्रिय बनाया। उन्होंने फ्रांस में प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र की नींव डाली और प्रकृतिवाद के प्रभाव से उसे मुक्त किया।

प्रो० से को इस बात का श्रेय है कि स्मिथ के विचारों को उन्होंने ईमानदारी से फ्रेंच भाषा में अनूदित किया एवं उनके कई विवादग्रस्त मतों को ठीक कर आने वाली पीढ़ी को उन भूलों से बचा लिया। **प्रो० जीड** एवं **रिस्ट** का मत है कि प्रो० से ने फ्रांस की राजनीतिक अर्थव्यवस्था पर अपनी छाप छोड़ी है।

❐

TOUCH 'n PASS

UNIT-VI

मूल्य निर्धारण

Price Determination

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. शुम्पीटर एवं मार्क्स की विचारधारा में अन्तर लिखिए।
Write the difference between Schumpeter and Marx's views.

उत्तर शुम्पीटर एवं मार्क्स की विचारधारा में निम्नलिखित अन्तर हैं—

(i) मार्क्स के विपरीत शुम्पीटर ने पूँजीवाद के पतन के तीन कारण बताये हैं—(अ) नव-प्रवर्तनों अर्थात् साहसी के कार्यों का अनुपयोगी व अप्रचलित होना; (ब) पूँजीवाद समाज में पाये जाने वाले संस्थागत ढाँचे का पतन होना; (स) पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध शिक्षित व जागरूक वर्ग द्वारा आवाज उठाने पर राजनीतिक संरचना का पतन होना।

(ii) शुम्पीटर ने मार्क्स के विपरीत विकास प्रक्रिया को एक नियमित व समरूप प्रक्रिया नहीं माना है।

(iii) शुम्पीटर ने नव-प्रवर्तनों एवं साहसी की भूमिका को स्वीकार किया है, जबकि मार्क्स ने यह स्थान श्रम को दिया है।

इन दोनों के पूँजी संचयन सम्बन्धी विचारों में भी विभिन्नता है।

प्र.2. मार्शल की मुख्य पुस्तकों के नाम लिखिए।
Write the name of main books of Marshall.

उत्तर मार्शल ने अपने जीवन काल में कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं जिनमें से कुछ के नाम निम्न प्रकार हैं—

1. उद्योग अर्थशास्त्र (The Economics of Industry), 1879,
2. अर्थशास्त्र के सिद्धान्त (Principles of Economics), 1890,
3. उद्योग व व्यापार (Industry and Trade), 1917,
4. मुद्रा, साख तथा वाणिज्य (Money, Credit and Commerce), 1923

प्र.3. मार्शल का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
Give the introduction of Marshall in short.

उत्तर नवप्रतिष्ठित अर्थशास्त्र के प्रवर्तक एल्फ्रेड मार्शल का जन्म 26 जुलाई, 1842 को इंग्लैण्ड में हुआ था। इनके पिता बैंक ऑफ इंग्लैण्ड (Bank of England) में खजांची थे। उनके पिता विलियम मार्शल चाहते थे कि मार्शल धार्मिक शिक्षा ग्रहण करके पादरी बने। अत: नौ वर्ष की आयु में उन्हें मर्चेण्ट टेलर स्कूल (Merchant Taylor's School) भेजा गया जहाँ उन्होंने उच्च कोटि के ग्रन्थों पर अध्ययन किया।

प्र.4. मार्शल के विचारों को प्रभावित करने वाले तीन कारण बताइए।
State any three causes that in fluenced Marshall.

उत्तर मार्शल के जीवन और विचारों पर निम्नलिखित बातों का मुख्य रूप से प्रभाव पड़ा है—

1. बाल्यकाल में उसने धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन किया जिस कारण वह उदार चित्त हो गया।
2. वह एडम स्मिथ, माल्थस तथा रिकार्डो के विचारों से अत्यधिक प्रभावित हुआ।
3. मार्शल ने डार्विन के सिद्धान्त का गहन अध्ययन किया था और वे इससे इतने प्रभावित थे कि सभी अर्थशास्त्रियों को इसे पढ़ने की राय देते थे।

TOUCH 'n' PASS

प्र.5. पीगू के अनुसार अर्थशास्त्र का क्या अर्थ है?
What is the meaning of economics according to Pigu.

उत्तर प्रो० पीगू मार्शल के ही शिष्य थे। उन्होंने यद्यपि मार्शल की परिभाषा के मूल तत्त्वों को स्वीकार किया, किन्तु अर्थशास्त्र के क्षेत्र को व्यापक बनाने के लिए 'भौतिक कल्याण' (Material Welfare) के स्थान पर आर्थिक कल्याण (Economic Welfare) के पक्ष को विशेष महत्त्व प्रदान किया। उनके अनुसार अर्थशास्त्र आर्थिक कल्याण का अध्ययन है। आर्थिक कल्याण से हमारा अभिप्राय सामाजिक कल्याण के उस भाग से है, जिसे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मुद्रा के मापदण्ड से सम्बन्धित किया जा सकता है।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. मार्शल का जीवन परिचय दीजिए तथा मार्शल के विचारों को प्रभावित करने वाले कारकों का उल्लेख कीजिए।
Give a life sketch of Marshall and mention the factors that influenced Marshall's ideas.

उत्तर

मार्शल
(Marshall)

नवप्रतिष्ठित अर्थशास्त्र के प्रवर्तक एल्फ्रेड मार्शल का जन्म 26 जुलाई, 1842 को इंग्लैण्ड में हुआ था। इनके पिता बैंक ऑफ इंग्लैण्ड (Bank of England) में खजांची थे। उनके पिता विलियम मार्शल चाहते थे कि मार्शल धार्मिक शिक्षा ग्रहण करके पादरी बने। अत: नौ वर्ष की आयु में उन्हें मर्चेण्ट टेलर स्कूल (Merchant Taylor's School) भेजा गया जहाँ उन्होंने उच्च कोटि के ग्रन्थों का अध्ययन किया।

19 वर्ष की आयु में इन्होंने सेन्ट जॉन्स कॉलेज, कैम्ब्रिज में दाखिला लिया तथा कॉलेज में गणित लेकर स्नातक की उपाधि प्राप्त की। सन् 1867 में मार्शल ने अर्थशास्त्र का अध्ययन किया और शीघ्र ही उस समय के सभी अर्थशास्त्रियों के ग्रन्थों से वे अवगत हो गये। सन् 1870 में मार्शल ने 'मेरी पाले' (Mary Paley) नाम की एक शिष्या से विवाह किया। मार्शल ने कई पदों पर सेवा की। सन् 1868 से 1881 तक वे यूनिवर्सिटी कॉलेज ब्रिस्टल के प्रिंसिपल रहे। सन् 1885 से 1908 तक वे वहाँ के कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के अध्यक्ष रहे तथा सन् 1908 से अपनी मृत्युपर्यन्त 1924 तक वे वहाँ के शोध विभाग के संचालक रहे अर्थात् उनके कार्य का क्षेत्र कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय ही रहा।

यद्यपि मार्शल ने अपने जीवन काल में कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं जिनमें से कुछ के नाम निम्न प्रकार हैं—

(i) उद्योग अर्थशास्त्र (The Economics of Industry), 1879,
(ii) अर्थशास्त्र के सिद्धान्त (Principles of Economics), 1890,
(iii) उद्योग व व्यापार (Industry and Trade), 1917,
(iv) मुद्रा, साख तथा वाणिज्य (Money, Credit and Commerce), 1923

मार्शल के विचारों को प्रभावित करने वाले कारक
(Factors that Influenced Marshall's Ideas)

मार्शल के जीवन और विचारों पर निम्नलिखित बातों का मुख्य रूप से प्रभाव पड़ा है—

(i) बाल्यकाल में उसने धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन किया जिस कारण वह उदार चित्त हो गया।
(ii) वह एडम स्मिथ, माल्थस तथा रिकार्डो के विचारों से अत्यधिक प्रभावित हुआ।
(iii) मार्शल ने डार्विन के सिद्धान्त का गहन अध्ययन किया था और वे इससे इतने प्रभावित थे कि सभी अर्थशास्त्रियों को इसे पढ़ने की राय देते थे।
(iv) मार्शल इतिहासकार टॉयनबी से भी विशेष रूप से प्रभावित थे। उनके विचारों को पढ़ने की वजह से उन्हें इतिहास का अच्छा ज्ञान हो गया था।

TOUCH 'n' PASS

(v) मार्शल ने राष्ट्रवादी शाखा, ऐतिहासिक शाखा, ऑस्ट्रियन शाखा, गणित शाखा व समाजवादी शाखा आदि के विद्वानों के विचारों का भी गहन अध्ययन किया था जिसके फलस्वरूप मार्शल को परम्परावादी अर्थशास्त्र की त्रुटियों का ज्ञान हो गया और साथ ही उन्हें अपनी विचारधारा के प्रस्तुतीकरण के लिए उच्चतम पृष्ठभूमि मिल गयी।

प्र.2. मार्शल के उपयोगितावाद पर टिप्पणी लिखिए।
Write a note on Marshall's utilitarianism.

उत्तर

मार्शल का उपयोगितावाद
(Marshall's Utilitarianism)

समय-समय पर उपभोक्ता की माँग की व्याख्या करने के लिए विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है और उनसे माँग सिद्धान्त बनाया गया है। गणनावाचक तुष्टिगुण सिद्धान्त माँग का सबसे पुरातन सिद्धान्त है। परन्तु इसको अन्तिम रूप मार्शल द्वारा प्रदान किया गया है।

मार्शल ने यह प्रतिपादित किया कि उपयोगिता (तुष्टिगुण) केवल सैद्धान्तिक नहीं है बल्कि उसे मुद्रा के रूप में वास्तव में मापा जा सकता है।

मार्शल के मतानुसार किसी वस्तु के उपभोग से वंचित रहने के स्थान पर व्यक्ति किसी वस्तु की एक इकाई को प्राप्त करने के लिए जो मुद्रा देने को तैयार रहता है उसी को इस वस्तु से प्राप्त उपयोगिता या तुष्टिगुण माना जा सकता है। इस प्रकार, उनके अनुसार मुद्रा तुष्टिगुण का मापदण्ड है।

संक्षेप में, मार्शल का यह विचार है कि सीमान्त उपयोगिता जो केवल सैद्धान्तिक रूप से ही मापनीय नहीं है बल्कि वास्तविक रूप में भी उसे मुद्रा से मापा जा सकता है।

आर्थिक सिद्धान्त में मार्शल की उपयोगिता परिकल्पना केवल माँग सिद्धान्त का ही आधार नहीं है बल्कि कल्याणवादी अर्थशास्त्र का भी आधार है। प्रो० जे०के० मेहता ने तो यहाँ तक कहा है कि "लगभग सम्पूर्ण आर्थिक ढाँचा सीमान्त उपयोगिता के विचार पर आधारित है।"

मार्शल की सीमान्त अवधारणा का महत्त्व अर्थशास्त्र के विभिन्न क्षेत्रों में निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट हो जाएगा।

1. उपभोग के क्षेत्र में सीमान्त उपयोगिता के विचार पर ही सीमान्त उपयोगिता ह्रास-नियम सम-सीमान्त उपयोगिता नियम, माँग का नियम, उपभोक्ता की बचत आदि आधारित है। प्रत्येक उपभोग में सीमान्त उपयोगिता के समान होने पर ही अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त होती है।
2. उत्पादन के क्षेत्र में सीमान्त उत्पादन और सीमान्त लागत की धारणा से उत्पादक को अपना लाभ अधिकतम करने तथा उत्पत्ति के साधनों—भूमि, श्रम, पूँजी तथा प्रबन्ध को इस प्रकार उत्पादन कार्य में नियोजित करने में सहायता मिलती है कि प्रत्येक उपभोग में प्रत्येक साधन का सीमान्त उत्पत्ति (Marginal Product) लगभग बराबर हो जाये।
3. **विनिमय के क्षेत्र में**—इस क्षेत्र में सीमान्त अवधारणा के महत्त्व को निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है—(i) एक व्यक्ति किसी वस्तु के लिए कितनी कीमत चुकाएगा वह उस वस्तु की सीमान्त उपयोगिता पर निर्भर करता है। (ii) विक्रेता भी अपनी वस्तु को बेचने के लिए तभी तत्पर होगा जबकि उसे कम-से-कम अपनी सीमान्त लागत के बराबर कीमत प्राप्त होगी। (iii) मूल्य का निर्धारण उस बिन्दु पर होगा जहाँ सीमान्त इकाई की सीमान्त उपयोगिता, सीमान्त लागत के बराबर हो जाती है।
4. **वितरण के क्षेत्र में**—प्रत्येक उत्पादन के साधन को पुरस्कार उसकी सीमान्त उत्पादकता के बराबर दिया जाता है। इस प्रकार 'सीमान्त' का विचार साधनों को दिये जाने वाले पुरस्कार के निर्धारण में सहायक है।
5. **राजस्व के क्षेत्र में**—एक व्यक्ति की ही भाँति सरकार भी अपनी सीमित आय को इस प्रकार व्यय करना चाहती है कि समाज को अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके। इसके लिए वह सीमान्त सामाजिक लाभ का सिद्धान्त (Principle of Maximum Advantage) का सहारा लेती है।

यद्यपि आजकल अर्थशास्त्री व्यक्तिगत व्यवहार की अपेक्षा मानव के समग्र व्यवहार (Aggregate Behaviour) पर जोर देने लगे हैं फिर भी वैयक्तिक आर्थिक समस्याओं, वैयक्तिक मूल्य निर्धारण आदि में सीमान्त विश्लेषण की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है।

TOUCH 'n' PASS

प्र.3. मार्शल के वितरण सम्बन्धी विचार का उल्लेख कीजिए।
Mention Marshall's idea of distribution.

उत्तर

मार्शल के वितरण सम्बन्धी विचार
(Marshall's Idea of Distribution)

1. **राष्ट्रीय आय** (National Income)—"देश के प्राकृतिक साधनों पर श्रम और पूँजी द्वारा कार्य करने पर प्रति वर्ष भौतिक व अभौतिक एवं वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन होता है। इन सबके शुद्ध उत्पत्ति के योग को राष्ट्रीय लाभांश कहते हैं।
मार्शल के अनुसार, "राष्ट्रीय आय की गणना के लिए निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए—(अ) सामान्यतया राष्ट्रीय आय की गणना वार्षिक आधार पर की जाती है; (ब) कुल उत्पादन में से मशीनों की टूट-फूट व ह्रास निकाल दिया जाता है; (स) विदेशी विनियोगों से प्राप्त होने वाली शुद्ध आय इसमें जोड़ देनी चाहिए; (द) वे सेवाएँ जो कि परिवार के सदस्यों तथा मित्रों को बिना मूल्य प्रदान की जाती है और अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति से या सार्वजनिक सम्पत्ति से प्राप्त लाभ इत्यादि को राष्ट्रीय आय में सम्मिलित करना चाहिए।
2. **योग्यता लगान** (Ability Rent)—सर्वप्रथम मिल ने यह अनुमान किया था कि प्रकृति का योगदान केवल भूमि में ही नहीं वरन् श्रम तथा संगठन में भी होता है और इस प्रकार उत्पत्ति के इन साधनों में लगान सम्भव है। मार्शल ने श्रम में इस बचत को योग्यता का लगान (Rent of Ability) कहा और निम्न परिभाषा दी है, "वह आय जो कोई आदमी अपनी दुर्लभ और प्राकृतिक योग्यता के कारण अर्जित करता है, योग्यता का लगान है।"
3. **आभास लगान** (Quasi Rent)—इस लगान का सर्वप्रथम विचार मार्शल ने किया था। **प्रो० मार्शल** के शब्दों में, "आभास लगान उस अतिरिक्त आय को कहते हैं जो उत्पादन के निर्मित साधनों की पूर्ति के अल्पकाल में सीमित होने के कारण होती है।"
मार्शल का कहना था कि जिस तरह भूमि से लगान प्राप्त होता है, उसी तरह उत्पादन के अन्य साधनों से भी लगान प्राप्त हो सकता है। हम जानते हैं कि लगान के उदय होने का मुख्य कारण—किसी साधन की माँग की तुलना में पूर्ति का कम होना है। भूमि की पूर्ति सीमित अथवा बेलोच होने के कारण इससे प्राप्त आय इस पर किये गये व्यय से अधिक होती है और इस प्राप्त बचत को लगान कहते हैं। इसी प्रकार उत्पत्ति के अन्य साधन, जैसे—मशीन आदि की पूर्ति भी अल्पकाल में नहीं बढ़ायी जा सकती अर्थात् अल्पकाल में उसकी पूर्ति भी भूमि की तरह सीमित होती है। दूसरे शब्दों में, अल्पकाल में उत्पत्ति के किसी साधन में (भूमि को छोड़कर) माँग की अपेक्षा कमी होने पर जो आधिक्य मिलता है, उसे आभास लगान कहते हैं। इसको लगान न कहकर आभास लगान इसलिए कहते हैं क्योंकि इसका सम्बन्ध अल्पकाल से है, दीर्घकाल से नहीं।
4. **मजदूरी** (Wages)—मजदूरी के विषय में मार्शल का मत था कि सामान्य मजदूरी जीवन स्तर के व्यय के लिए पर्याप्त होनी चाहिए। मार्शल के अनुसार अल्पकालीन मूल्य पर श्रम की माँग और पूर्ति दोनों का ही प्रभाव पड़ता है—"मजदूरी श्रम की सीमान्त उपज के बराबर होने की प्रवृत्ति रखती है। इसकी सीमान्त उत्पादकता इसके माँग मूल्य को निर्धारित करती है। दूसरी तरफ मजदूरी एक अप्रत्यक्ष किन्तु घनिष्ठ तथा जटिल सम्बन्ध कुशल श्रम के निर्माण एवं निर्वाह के व्यय से भी बनाये रखती है।"
5. **ब्याज सिद्धान्त** (Theory of Interest)—ब्याज सिद्धान्त के विषय में बताते हुए मार्शल ने कहा कि पूँजी के प्रयोग के बदले में जो मूल्य अथवा भाग राष्ट्रीय आय से दिया जाता है, वह ब्याज कहलाता है। एक अन्य स्थान पर उन्होंने लिखा कि ब्याज प्रतीक्षा का प्रतिफल है। मार्शल के अनुसार ब्याज का निर्धारण भी माँग और पूर्ति के सिद्धान्त द्वारा होता है। पूँजी का माँग-मूल्य उसकी सीमान्त उत्पादकता द्वारा एवं पूर्ति-मूल्य पूँजीपति के परिश्रम तथा त्याग द्वारा निर्धारित होता है।
मार्शल ने बताया कि अल्पकाल में यदि पूँजी की माँग पूँजी की पूर्ति से अधिक हो जाती है तो ब्याज की दर बढ़ जाएगी क्योंकि समयाभाव के कारण पूँजी की पूर्ति को बढ़ाना सम्भव नहीं होगा परन्तु ज्यों ही समय बढ़ेगा, त्यों ही ब्याज की दर पुनः समान स्तर पर आ जाएगी क्योंकि इस समय पूर्ति को बढ़ाने में पर्याप्त समय मिल जाएगा।
मार्शल ने दो प्रकार की ब्याज बतायी—(अ) **कुल ब्याज** (Gross Interest) एवं (ब) **शुद्ध ब्याज** (Net Interest)। कुल ब्याज में शुद्ध ब्याज के अतिरिक्त जोखिम का पुरस्कार तथा प्रबन्ध का पुरस्कार भी सम्मिलित होता है जबकि शुद्ध ब्याज केवल प्रतीक्षा का प्रतिफल है।

TOUCH 'n PASS

6. **लाभ सिद्धान्त** (Theory of Profit)—"लाभ के क्षेत्र में मार्शल ने कोई मौलिक विचार प्रस्तुत नहीं किया है। उन्होंने अपने परम्परावादी विचारकों के विचारों की ही पुष्टि कर दी है।" मार्शल ने पूँजीपति और साहसी में भेद नहीं किया है, अत: वह लाभ को भी 'प्रबन्ध की आय' मानते हैं। उनका मत है कि प्रबन्ध की आय का निर्धारण भी माँग व पूर्ति के सिद्धान्त द्वारा होता है।

मार्शल के शब्दों में "लाभ वह औसत पारिश्रमिक है जो उद्यमियों की पर्याप्त पूर्ति को अस्तित्व में लाने और अस्तित्व में रखने के लिए आवश्यक है।" दीर्घकाल में एक उद्यमी केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त कर सकता है जो कि उत्पादन की लागत का एक भाग होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मार्शल ने वितरण की समस्याओं का अध्ययन करने के लिए अपने मूल्य निर्धारण में प्रयुक्त होने वाले माँग और पूर्ति सिद्धान्त को ही लागू किया।

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. मार्शल के उपभोग, उत्पादन एवं विनिमय सम्बन्धी विचारों का वर्णन कीजिए।
Describe Marshall's of views consumption, production and exchange.

उत्तर

उपभोग सम्बन्धी विचार
(Views on Consumption)

मार्शल के उपभोग सम्बन्धी विचार निम्नलिखित हैं—

1. **उपभोग का महत्त्व** (Importance of Consumption)—परम्परावादी अर्थशास्त्रियों ने अपना ध्यान धन के उत्पादन और वितरण की समस्याओं तक ही केन्द्रित रखा। उन्होंने उपभोग (माँग) पर विशेष ध्यान नहीं दिया। मार्शल ने परम्परावादी विचारकों की उपभोग के अध्ययन के प्रति रहने वाली उदासीनता की प्रवृत्ति का विरोध किया तथा मनुष्य की सम्पूर्ण आर्थिक क्रियाओं का आदि और अन्त उपभोग ही है। इस सम्बन्ध में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'अर्थशास्त्र के सिद्धान्त' में उत्पादन से पूर्व उपभोग का विवेचन करके मार्शल ने उपभोग के अध्ययन के महत्त्व को सबसे अधिक महत्त्व प्रदान किया है। उपभोग के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने लिखा है, "कुछ समय पूर्व तक माँग अथवा उपभोग का विषय बहुत-कुछ उपेक्षित रहा है परन्तु हाल में आर्थिक विवाद में इस विषय को महत्त्व प्रदान करने के लिए कुछ कारण आपस में संयुक्त हो गये हैं।" वस्तुत:
2. **आवश्यकताओं की विशेषताएँ तथा वर्गीकरण** (Characteristics and Classification of Wants)—मार्शल ने आवश्यकताओं की निम्न विशेषताएँ बतलायी हैं—(i) आवश्यकताएँ असीमित हैं; (ii) किसी समय-विशेष में एक आवश्यकता की सन्तुष्टि की जा सकती है; (iii) आवश्यकताएँ एक-दूसरे की पूरक होती हैं; (iv) आवश्यकताएँ परस्पर प्रतिस्पर्द्धा करती हैं; (v) आवश्यकताएँ वैकल्पिक होती हैं; (vi) आवश्यकताएँ मनुष्य की आदत बन जाती हैं; (vii) आवश्यकताओं की तीव्रता समान नहीं होती।
   मार्शल ने आवश्यकताओं को तीन वर्गों में विभाजित किया है—(i) आवश्यक आवश्यकताएँ, (ii) आरामदायक आवश्यकताएँ एवं (iii) विलासितापूर्ण आवश्यकताएँ।
   आवश्यकताओं को इन तीन वर्गों में विभाजित करने के साथ ही मार्शल ने अपनी सम्बन्धों को बतलाते हुए कहा कि यह वर्गीकरण सापेक्षिक है क्योंकि यह समय, स्थान, व्यक्ति आदि के अनुसार बदलता रहता है। एक ही वस्तु एक व्यक्ति के लिए आरामदायक और दूसरे व्यक्ति के लिए विलासितादायक हो सकती है।
   आवश्यकताओं की विशेषताओं और उनका वर्गीकरण करने के उपरान्त मार्शल ने **उपयोगिता ह्रास नियम** और **समसीमान्त उपयोगिता नियम** की सुन्दर विवेचना प्रस्तुत की है।
3. **माँग की लोच** (Elasticity of Demand)—मार्शल ने माँग की लोच की परिभाषा इस प्रकार दी है, "माँग की लोच कम या अधिक होना इस बात पर निर्भर है कि मूल्य में एक निश्चित कमी होने से माँग अधिक बढ़ती है या कम और मूल्य में निश्चित वृद्धि होने से माँग कम घटती है या अधिक।"
   मार्शल ने माँग की लोच का निम्न पाँच उपशीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन किया है—
   (i) **पूर्णतया लोचदार माँग** (Perfectly Elastic Demand)—जब मूल्य में बिना परिवर्तन हुए माँग में अनन्त परिवर्तन हो जाए।

TOUCH 'n' PASS

(ii) **पूर्णतया बेलोचदार माँग** (Perfectly Inelastic Demand)—जब माँग में परिवर्तन न हो, तब यह लागू होती है। मार्शल ने लोच को मापने की प्रणाली भी बतायी जोकि व्यय पद्धति (Outlay Method) कहलाती है।

(iii) **लोचदार माँग** (Elastic Demand)—जब मूल्य तथा माँग में एक ही अनुपात में परिवर्तन हो।

(iv) **अधिक लोचदार माँग** (Highly Elastic Demand)—जब मूल्य में थोड़ा परिवर्तन होने पर भी माँग में भारी परिवर्तन होता है।

(v) **बेलोचदार माँग** (Inelastic Demand)—जब मूल्य में अधिक परिवर्तन होने पर भी ये माँग में कम परिवर्तन हो। मार्शल ने माँग की लोच मापने के लिए इकाई रीति का प्रतिपादन किया है जिसके अनुसार, लोच की दर निम्नलिखित तीन प्रकार की हो सकती है—

(a) **माँग की लोच इकाई के बराबर** ($e = 1$)—यदि मूल्य में परिवर्तन के फलस्वरूप वस्तु पर व्यय की गई कुल मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं होता (अर्थात् कुल व्यय स्थिर रहता है) तो माँग की लोच इकाई के बराबर होती है।

(b) **माँग की लोच इकाई से अधिक** ($e > 1$)—किसी वस्तु पर किये गये कुल व्यय की राशि यदि उसके मूल्य में कमी के साथ बढ़ जाती है तथा मूल्य में वृद्धि के साथ घट जाती है तो माँग की लोच इकाई से अधिक कही जाती है।

(c) **माँग की लोच इकाई से कम** ($e < 1$)—किसी वस्तु पर किये गये कुल व्यय की राशि, यदि मूल्य में कमी के साथ कम हो जाती है तथा मूल्य में वृद्धि के साथ अधिक हो जाती है तो माँग की लोच इकाई से कम हो जाती है।

4. **उपभोक्ता की बचत** (Consumer's Surplus)—यद्यपि उपभोक्ता की बचत की धारणा सर्वप्रथम फ्रांसीसी अर्थशास्त्री **ड्यूपिट** (Dupit) ने व्यक्त की थी। किन्तु मार्शल वह प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होंने उस धारणा को वैज्ञानिक तथा विस्तृत रूप प्रदान किया। उन्होंने उपभोक्ता की बचत की परिभाषा इस प्रकार दी, "किसी वस्तु के उपभोग से वंचित रहने की अपेक्षा उपभोक्ता, जो कीमत वस्तु के लिए देने को तैयार रहता है और जो कीमत वास्तव में वह देता है, उसके अन्तर को उपभोक्ता की बचत कहते हैं।"

यह एक सामान्य अनुभव की बात है कि यदि कोई वस्तु ऐसी है जिसके लिए आवश्यकता बहुत तीव्र है और जिसे प्राप्त करने में कठिनाई है तो उसे प्राप्त करने के लिए उपभोक्ता अधिक मूल्य देने के लिए तत्पर हो जाता है परन्तु वह उसे बाजार से साधारण कीमत पर ही मिल जाती है। इस प्रकार ज्ञात या अज्ञात रूप से उपभोक्ता को एक अतिरिक्त मानसिक सन्तुष्टि प्राप्त होती है और वह सोचता है कि वास्तव में उसे किसी प्रकार की कुछ बचत प्राप्त हुई है। इसी अतिरिक्त सन्तुष्टि को उपभोक्ता की बचत कहते हैं। मान लीजिए, आप एक मेज खरीदने के लिए बाजार जाते हैं जिसके लिए आप 30 रुपये देने के लिए तैयार हैं परन्तु यदि आप उस मेज को ₹ 25 में ही बाजार में पा जाते हैं तो $(30 - 25) = ₹ 5$ की बचत होगी। यह बचत ही उपभोक्ता की बचत कहलाती है।

यह 'प्रत्याय' (Concept) वातावरण या अवसरों से प्राप्त ऐसे अनेक लाभों का ज्ञान कराता है जिनके विषय में हम जागरूक नहीं हैं या सामान्यतया हमारा ध्यान उनकी तरफ नहीं जाता। जैसे हम डाक-टिकट या समाचार-पत्र केवल 20 पैसे देकर खरीदते हैं, दियासलाई के लिए हम 10 पैसे देते हैं, नमक के लिए 25 पैसे प्रति किलो देते हैं किन्तु हम इस ओर कभी ध्यान नहीं देते कि इन वस्तुओं से वंचित रहने की अपेक्षा हम इनमें से हर एक को प्राप्त करने के लिए ₹ 10-10 तक भी देने को तैयार हो सकते हैं।

उत्पादन सम्बन्धी विचार
(Views on Production)

मार्शल के उत्पादन सम्बन्धी विचार निम्नलिखित हैं—

1. **उत्पत्ति के साधन**—मार्शल ने उत्पादन के चार साधन बताये हैं—भूमि, श्रम, पूँजी और संगठन। इन्होंने संगठन को भी दो भागों में विभाजित किया है—(i) प्रबन्ध—जिसका कार्य उत्पत्ति के विभिन्न साधनों को जुटाना है तथा (ii) साहस—जिसमें उत्पादन सम्बन्धी जोखिम सहना है। इस प्रकार उत्पादन के पाँच साधन माने गये हैं—
(i) भूमि (Land), (ii) श्रम (Labour), (iii) पूँजी (Capital), (iv) संगठन (Organisation) और (v) साहस (Enterprise)।
2. **आन्तरिक व बाह्य बचतें** (Internal and External Economies)—प्रो० मार्शल का मत है कि बड़े पैमाने पर उत्पादन से उत्पादकों को प्राय: दो प्रकार की बचतें प्राप्त होती हैं—
(अ) आन्तरिक बचतें (Internal Economies),
(ब) बाह्य बचतें (External Economies)।

TOUCH 'n' PASS

(अ) **आन्तरिक बचतें (मितव्ययिताएँ)** (Internal Economies)—आन्तरिक बचतें वे बचते हैं जो कि उत्पादन के पैमाने में वृद्धि के फलस्वरूप किसी एक फर्म को अपनी आन्तरिक कुशलता तथा व्यवस्था आदि की श्रेष्ठता के कारण स्वतन्त्र रूप से प्राप्त होती है। ये बचतें सम्पूर्ण उद्योग को प्राप्त नहीं होतीं बल्कि किसी एक फर्म तक ही सीमित रहती हैं। फलत: ये बचतें प्रत्येक उद्योग में प्रत्येक फर्म के लिए अलग-अलग होती हैं।
मार्शल (Marshall) के अनुसार, "आन्तरिक मितव्ययिताएँ वे होती हैं जो एक फर्म को उसकी आन्तरिक कुशलता तथा व्यवस्था आदि की श्रेष्ठता के कारण होती हैं।"

(ब) **बाह्य बचतें (मितव्ययिताएँ)** (External Economies)—किसी फर्म की लागत केवल उसकी उत्पादन मात्रा पर ही निर्भर न होकर सम्पूर्ण उद्योग की उत्पादन मात्रा के स्तर पर निर्भर करती है। बाह्य मितव्ययिताएँ वे हैं जो विभिन्न फर्मों को सम्पूर्ण उद्योग के विस्तार के कारण उपलब्ध होती हैं और ये किसी व्यक्तिगत फर्म के उत्पादन पैमाने के स्तर पर निर्भर नहीं होती हैं। इन्हें बाह्य इस अर्थ में कहा जाता है कि ये किसी फर्म को उसकी आन्तरिक स्थिति के फलस्वरूप प्राप्त नहीं होती हैं बल्कि ये किन्हीं बाह्य कारणों, जैसे—उद्योग के क्षेत्र में बैंक का खुलना, तारघरों की स्थापना, रेलवे लाइन का बनना आदि से उत्पन्न होती हैं।

3. **उत्पत्ति के नियम** (Laws of Production)—मार्शल ने उत्पत्ति के तीन नियम बताये हैं—
   (i) क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम (Law of Diminishing Returns),
   (ii) क्रमागत पद्धति वृद्धि नियम (Law of Increasing Returns) तथा
   (iii) क्रमागत उत्पत्ति समता नियम (Law of Constant Returns)।

उत्पत्ति ह्रास नियम का सबसे पहले उल्लेख प्रकृतिवादी अर्थशास्त्री श्री तुर्गो ने किया था। बाद में रिकार्डो और माल्थस ने इस नियम को क्रमश: अपने-अपने लगान सिद्धान्त और जनसंख्या सिद्धान्त का आधार माना किन्तु मार्शल ने सर्वप्रथम इसकी वैज्ञानिक विवेचना प्रस्तुत की।

नियम की व्याख्या—मार्शल ने इस नियम की व्याख्या इस प्रकार की है, "यदि कृषि कला में कोई सुधार न हो तो भूमि पर उपयोग की जाने वाली पूँजी एवं श्रम की मात्रा में वृद्धि करने से कुल उपज में सामान्यतया अनुपात से कम वृद्धि होती है।"
मार्शल के उपरोक्त कथन का अर्थ यह है कि कृषि-कार्य में भूमि की मात्रा को स्थिर रखते हुए यदि पूँजी और श्रम की मात्रा को बढ़ाया जाता है तो इससे कुल उत्पत्ति में वृद्धि होती है परन्तु उत्पादन साधनों में होने वाली वृद्धि के अनुपात में नहीं बढ़ता अर्थात् यदि श्रम तथा पूँजी की मात्रा दोगुनी या तिगुनी कर दी जाये तो उत्पादन दोगुना या तिगुना नहीं होगा बल्कि उत्पादन में आनुपातिक रूप से कम वृद्धि होगी।

उत्पत्ति ह्रास नियम की क्रियाशीलता की शर्तें—यदि हम मार्शल की परिभाषा को ध्यानपूर्वक देखें तो इस नियम की दो सीमाएँ मिलेंगी—

(अ) **सामान्यतया**—यह नियम सामान्यतया सत्य होता है अर्थात् यदि कुछ विशेष परिस्थितियाँ न हों तो भी यह नियम क्रियाशील होगा। जैसे—भूमि नपी न हो, श्रम व पूँजी की मात्रा आवश्यकता से कम न हो आदि।

(ब) **कृषि में सुधार**—इस नियम के क्रियान्वित होने के लिए यह आवश्यक है कि कृषि-प्रणाली पूर्ववत् हो, उसमें कोई सुधार न किया जाये।

उपरोक्त दोनों सीमाओं का सम्बन्ध अल्पकाल से है। अन्तत: यह नियम एक स्थिति के बाद अवश्य ही लागू होता है।
उत्पत्ति ह्रास नियम का प्रतिष्ठित (Classical) रूप उचित नहीं है क्योंकि वह इस तथ्य पर प्रकाश नहीं डालता कि उत्पत्ति ह्रास नियम लागू क्यों होता है।
मार्शल के अनुसार यह आवश्यक नहीं है कि उत्पादन में सदैव उत्पत्ति ह्रास नियम ही लागू हो। वह यह मानता है कि कृषि सम्बन्धी विधियों में उन्नति करने से उत्पादन में क्रमागत वृद्धि नियम लागू हो सकता है किन्तु यह वृद्धि केवल अस्थायी ही रहेगी। उत्पादन समता नियम भी कुछ समय के लिए लागू हो सकता है।

4. **श्रम विभाजन** (Division of Labour)—मार्शल के विचार में कुछ विशेष वस्तुओं की माँग के बढ़ने तथा बाजार का विस्तार होने के कारण श्रम विभाजन को जन्म मिलता है। मशीनों में सुधार और श्रम विभाजन दोनों साथ-साथ चलते हैं। श्रमिकों की कार्यकुशलता और मशीनों का पूरा-पूरा लाभ प्राप्त करने के लिए श्रम विभाजन को लागू करना आवश्यक हो जाता है। मार्शल ने कहा है, "उत्पत्ति में मितव्ययिता का अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति एक छोटे-से काम में लगातार

TOUCH 'n PASS

लगा रहे परन्तु यह भी आवश्यक है कि जब वह भिन्न-भिन्न कार्यों को अपने हाथ में लें तो यथासम्भव कार्यकुशलता तथा कार्यक्षमता का प्रयोग ला सके।"

5. **जनसंख्या** (Population)—प्रो० मार्शल ने माल्थस के जनसंख्या सम्बन्धी विचारों को तीन भागों में विभाजित किया है—
श्रम की पूर्ति (Supply of Labour)—प्रो० मार्शल ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "Principles of Economics" में श्रम की पूर्ति के सम्बन्ध में माल्थस के विचार को स्पष्ट करते हुए लिखा है, "प्रत्येक मनुष्य, जिसके इतिहास का विश्वसनीय प्रमाण है, इतना अधिक उपजाऊ रहा है कि उसकी वृद्धि तेजी के क्रम से होती, यदि उसे जीवन-निर्वाह के साधनों की सीमितता, बीमारी, युद्ध, शिशुवध और संयम नियन्त्रित करते।"
श्रम की माँग (Demand of Labour)—मार्शल ने अपने एकत्र किये हुए आँकड़ों के द्वारा यह भी बताने का प्रयत्न किया कि जनसंख्या में वृद्धि अत्यधिक तीव्रगति से होती है परन्तु श्रम की माँग का निर्धारण खाद्यान्न की मात्रा द्वारा होता है। माल्थस ने स्पष्ट किया कि कृषि में उत्पादन ह्रास नियम लागू होने के कारण खाद्यान्न में वृद्धि बहुत मन्द गति से होती है, इसीलिए श्रम की माँग में आनुपातिक वृद्धि नहीं हुई है। माल्थस के श्रम की माँग सम्बन्धी विचार पर प्रकाश डालते हुए प्रो० मार्शल ने लिखा है, "प्रकृति मनुष्य को उसके कार्य के बढ़ाने में उपज प्रदान करती है, जो कि जनसंख्या के लिए माँग है। जनसंख्या में तेजी से वृद्धि न होने पर भी श्रम की माँग में आनुपातिक वृद्धि नहीं हुई है।" दूसरे शब्दों में, उनके समय तक जिस अनुपात में जनसंख्या बढ़ी है, उस अनुपात में खाद्यान्नों में वृद्धि नहीं हुई है।
प्रो० मार्शल के अनुसार माल्थस ने यह निष्कर्ष निकाला था, "जो भूतकाल में हुआ है उसी की भविष्य में होने की सम्भावना है और जनसंख्या की वृद्धि को गरीबी अथवा अन्य किसी कष्टदायक साधन द्वारा रोका जाएगा। यदि उसे स्वेच्छापूर्वक संयम से न रोका गया। इसलिए वह (माल्थस) मनुष्यों से अनुरोध करते हैं कि वे इस संयम का प्रयोग करें और नैतिक पवित्रता का जीवन व्यतीत करने के साथ-साथ शीघ्र विवाह से बचें।"

विनिमय सम्बन्धी विचार
(Views of Exchange)

मार्शल के विनिमय सम्बन्धी विचार निम्नलिखित हैं—

1. **मूल्य का सिद्धान्त-सन्तुलन विश्लेषण** (Theory of Value-Equilibrium Analysis)—मूल्य निर्धारण की समस्या को अर्थशास्त्र में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है परन्तु मूल्य निर्धारण सम्बन्धी प्रारम्भिक विचारों में काफी मतभेद रहा है। एडम स्मिथ तथा डेविड रिकार्डो आदि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने कहा है कि किसी वस्तु का मूल्य उस वस्तु के **उत्पादन व्यय** (Cost of Production) द्वारा निर्धारित होता है। इसे मूल्य का उत्पादन-व्यय सम्बन्धी सिद्धान्त (Cost of Production Theory) कहते हैं परन्तु यह सिद्धान्त एकपक्षीय था क्योंकि इसमें केवल पूर्ति पक्ष पर ही विचार किया गया था। इसके विपरीत **जेवन्स** ने कहा, "निरन्तर अध्ययन के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि वस्तु का मूल्य सम्पूर्णत: उपयोगिता पर निर्भर करता है।"
प्रो० मार्शल ने एडम स्मिथ और जेवन्स दोनों के दृष्टिकोण को एकांगी माना और कहा कि पूर्ण प्रतिस्पर्द्धा की स्थिति में किसी वस्तु का मूल्य एक ओर उसकी माँग (जो उसकी उपयोगिता पर आधारित होती है) और दूसरी ओर उसकी पूर्ति (जो उसकी उत्पादन लागत द्वारा निर्धारित होती है) की सापेक्षिक शक्तियों द्वारा निश्चित होती है। वे मानते हैं कि जिस प्रकार जब तक कैंची की दोनों धारें नहीं होंगी, तब तक काटने का कार्य नहीं हो सकता, ठीक उसी प्रकार जब तक माँग एवं पूर्ति दोनों आपस में नहीं मिलतीं, तब तक मूल्य का निर्धारण नहीं होता। जिस बिन्दु पर ये दोनों आपस में मिलती हैं, उसे साम्य बिन्दु कहते हैं और उस बिन्दु पर मूल्य का निर्धारण होता है।"

2. **मूल्य निर्धारण में समय तत्त्व का महत्त्व** (Importance of Time Element in the Theory)—मूल्य सिद्धान्त में समय तत्त्व का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन अर्थशास्त्रियों ने मूल्य निर्धारण में समय तत्त्व को ध्यान में नहीं रखा है जिसका फल यह हुआ कि मूल्य निर्धारण के सम्बन्ध में उन्होंने जो निष्कर्ष निकाले, वे असत्य थे। वास्तव में मूल्य निर्धारण की समस्याओं के समय तत्त्व को सर्वप्रथम महत्त्व देने का श्रेय **मार्शल** को है।
मार्शल के प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र के **सामान्य मूल्य** (Normal Price) और **बाजार मूल्य** (Market Price)—इस वर्गीकरण को भी स्वीकार किया है। यही नहीं वरन् समय के आधार पर उसका और भी बारीक विवेचन किया है। उनके अनुसार, "अल्पकालीन मूल्य पर माँग का अधिक प्रभाव होता है, दीर्घकालीन मूल्य पर पूर्ति का परन्तु माँग और पूर्ति दोनों

TOUCH 'n PASS

ही कैंची के दो फलों के समान हैं—दोनों ही जरूरी हैं।'' वे यह भी मानते हैं कि ''दीर्घकाल में मूल्य की प्रवृत्ति अपनी लागत के बराबर होने की होती है।'' सामान्य मूल्य स्थायी साम्य (Stable Equilibrium) पर आधारित होता है।
मार्शल ने पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकार दोनों के मूल्य का विश्लेषण किया है। पूर्ण प्रतियोगिता में जहाँ मूल्य बाजार की शक्तियों से निर्धारित होता है, एकाधिकार में वह उस बिन्दु पर निश्चित किया जाता है जिस पर एकाधिकारी को अधिकतम लाभ या बचत मिलती है।

3. **प्रतिनिधि फर्म** (Representative Firm)—**मार्शल** के अनुसार, दीर्घकालीन सामान्य मूल्य प्रतिनिधि फर्म की औसत लागत के बराबर होना चाहिए।'' प्रतिनिधि फर्म की परिभाषा **प्रो० मार्शल** ने इस प्रकार दी है, ''प्रतिनिधि फर्म वह फर्म है जो काफी समय से चालू हो, जिसे पर्याप्त सफलता मिली हो, जिसका प्रबन्ध सामान्य योग्यता वाले व्यक्ति द्वारा किया जाता हो और जिसे उत्पादित वस्तु की श्रेणी, विक्रय की दशाएँ एवं सामान्य आर्थिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए वे आन्तरिक और बाह्य बचतें प्राप्त हों जो कि उत्पादन की कुल मात्रा के परिणामस्वरूप प्राप्त होती हों।''
प्रतिनिधि फर्म का विचार प्रतिपादित करते समय मार्शल ने प्राकृतिक वन के वृक्षों का दृष्टान्त दिया है। वनों में वृक्ष कुछ इस प्रकार के होते हैं जो अंकुरित होते रहते हैं, कुछ पूरी ऊँचाई तक बढ़ चुके हैं और कुछ पुराने होकर धीरे-धीरे नष्ट होते रहते हैं। वनों में वृक्षों की भाँति किसी उद्योग के अन्तर्गत विभिन्न फर्मों को भी मार्शल ने निम्न वर्गों में बाँटा है—
(अ) नई फर्में जो कि हाल ही में प्रारम्भ हुई हैं जिनका लाभ बढ़ रहा है।
(ब) सुव्यवस्थित फर्में जो अनुभवी हो चुकी हैं और आन्तरिक तथा बाह्य बचतों का पूरा लाभ कमा रही हैं।
(स) पुरानी फर्में, जो अपनी कुशलता खो चुकी हैं और नीचे की ओर जा रही हैं।
मार्शल ने दूसरी श्रेणी की फर्म को प्रतिनिधि फर्म कहा है तथा इनके अनुसार इस फर्म की औसत लागत से ही मूल्य निर्धारित होता है।

4. **मौद्रिक सिद्धान्त** (Monetary Theory)—मुद्रा के सम्बन्ध में मार्शल के विचार सर्वप्रथम 1886 में ज्ञात हुए थे जबकि उन्होंने 'Royal Commission on the Depression of Trade and Industry' के सामने प्रश्नों का उत्तर दिया था। 1887 में उसने 'Gold & Silver Commission' के सम्मुख भी अपने विचार विस्तार में प्रकट किये थे। सन् 1889 में 'Indian Currency Committee' के सामने भी उसने गवाही दी थी। 1923 में उसकी पुस्तक *'Money Credit & Commerce'* प्रकाशित हुई जिसमें मार्शल के मुद्रा सम्बन्धी विचार सुसंगठित रूप से प्राप्त हो सके। मौद्रिक सिद्धान्त के क्षेत्र में मार्शल का प्रमुख योगदान इस प्रकार है—
   (i) मार्शल के मतानुसार अन्य वस्तुओं की तरह मुद्रा का मूल्य भी मुद्रा की माँग और पूर्ति की सापेक्षिक शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है।
   (ii) मार्शल ने निर्देशांक (Index Number) बनाने की शृंखला आधार रीति (Chain Base Method) को आरम्भ किया। इस रीति में दिये हुए वर्ष के निर्देशांक पिछले वर्ष को आधार मानकर निकाले जाते हैं अर्थात् 1958 का आधार वर्ष 1957 होगा। शृंखला आधार रीति में मूल्य अनुपात की गणना इस प्रकार की जाती है—

$$\text{शृंखला मूल्य अनुपात} = \frac{\text{चालू वर्ष का मूल्य}}{\text{पिछले वर्ष का मूल्य}} \times 100$$

   (iii) क्रयशक्ति समता सिद्धान्त के प्रतिपादन का श्रेय यद्यपि **प्रो० कैसल** को दिया जाता है परन्तु वास्तविकता यह है कि मार्शल ने 'Indian Currency Committee' के सामने अपने विचार प्रस्तुत करते हुए इस सिद्धान्त का पूर्व संकेत किया था।
   (iv) मार्शल ने ही द्विधातुमान के स्थान पर मिश्रित धातुमान पर आधारित पत्र-मुद्रा के प्रयोग के लिए प्रस्ताव रखा था।

प्र.2. पीगू के आर्थिक विचारों की विवेचना कीजिए।
Describe the economic thoughts of Pigou.

उत्तर

पीगू के आर्थिक विचार
(Economic Thoughts of Pigou)

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से पीगू के आर्थिक विचारों को हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित कर सकते हैं—
1. अर्थशास्त्र की परिभाषा।
2. साम्य फर्म की अवधारणा।

TOUCH 'n PASS

3. राष्ट्रीय आय व आर्थिक कल्याण सम्बन्धी विचार। 4. रोजगार का सिद्धान्त।
5. मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त। 6. व्यापार चक्र का मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त।

1. अर्थशास्त्र की परिभाषा (Definition of Economics)

प्रो० पीगू मार्शल के ही शिष्य थे। उन्होंने यद्यपि मार्शल की परिभाषा के मूल तत्त्वों को स्वीकार किया, किन्तु अर्थशास्त्र के क्षेत्र को व्यापक बनाने के लिए 'भौतिक कल्याण' (Material Welfare) के स्थान पर आर्थिक कल्याण (Economic Welfare) के पक्ष को विशेष महत्त्व प्रदान किया। उनके अनुसार अर्थशास्त्र आर्थिक कल्याण का अध्ययन है। आर्थिक कल्याण से हमारा अभिप्राय सामाजिक कल्याण के उस भाग से है, जिसे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मुद्रा के मापदण्ड से सम्बन्धित किया जा सकता है। आलोचनात्मक दृष्टिकोण से अध्ययन करने पर पीगू के द्वारा प्रस्तुत परिभाषा में अनेक दोष प्रतीत होते हैं, जैसे—
(अ) आर्थिक कल्याण की व्याख्या सम्भव नहीं है और मुद्रा द्वारा मापनीय भौतिक तथा अभौतिक साधनों का वर्गीकरण करना भी कठिन है।
(ब) सामाजिक प्राणियों का अध्ययन करके उनकी केवल मुद्रा सम्बन्धी क्रियाओं की विवेचना करके पीगू ने अर्थशास्त्र के क्षेत्र को द्रव्य अर्थव्यवस्था तक ही सीमित कर दिया है। अत: मुद्रा रहित समाज में प्रो० पीगू की परिभाषा महत्त्वहीन है।

2. साम्य फर्म की अवधारणा (Concept of Equity Firm)

पीगू का 'साम्य फर्म' सम्बन्धी विचार मार्शल के प्रतिनिधि फर्म सम्बन्धी विचार का ही यथार्थ में एक संशोधित रूप है। पीगू का मत है कि विभिन्न फर्मों वाले किसी सम्पूर्ण उद्योग के साम्य की स्थिति में होने पर भी सम्भव है कि उस उद्योग की सभी फर्में साम्य की अवस्था में न हों अर्थात् जबकि उद्योग विशेष में न तो विस्तार हो रहा हो और न संकुचन, तब भी व्यक्तिगत रूप से कुछ फर्मों का विस्तार या संकुचन हो सकता है। यह भी सम्भव है कि कोई ऐसी भी फर्म हो, जिसका न तो विस्तार होता हो और न संकुचन अर्थात् साम्य की स्थिति में हो। ऐसी फर्म को पीगू ने साम्य फर्म कहा है।
पीगू ने साम्य फर्म की परिभाषा इस प्रकार दी है—"साम्य फर्म से अभिप्राय यह है कि जब सम्पूर्ण उद्योग इस अर्थ में साम्य की स्थिति में होता है कि वह एक सामान्य पूर्ति मूल्य पर नियमित रूप से वस्तु की Y मात्रा का उत्पादन कर रहा हो तो उस समय एक ऐसी फर्म भी विद्यमान होगी जो वस्तु की नियमित मात्रा X का उत्पादन करके व्यक्तिगत रूप से साम्य की स्थिति में होगी।"
साम्य फर्म की आलोचना—(i) विभिन्न फर्मों के साम्य में न रहने पर भी उद्योग के साम्य में रहने की मान्यता ठीक नहीं है, क्योंकि व्यवहार में ऐसा नहीं देखा जाता कि विस्तार करने वाली फर्मों का उत्पादन उतनी ही मात्रा में बढ़ता हो जितना कि संकुचन करने वाली फर्मों का उत्पादन घटता है।
(ii) वस्तुत: इस धारणा में भी वही त्रुटि पायी जाती है जो कि मार्शल के प्रतिनिधि फर्म के विचार में पायी जाती है।

3. राष्ट्रीय आय एवं आर्थिक कल्याण सम्बन्धी विचार (National Income and Economic Welfare Thoughts)

पीगू ने भी मार्शल की भाँति उत्पादन धन को राष्ट्रीय आय का आधार माना है। परन्तु पीगू ने राष्ट्रीय आय की गणना में केवल उन्हीं वस्तुओं और सेवाओं को शामिल किया है, जिन्हें द्रव्य के रूप में नापा जा सकता है। उनके शब्दों में "राष्ट्रीय आय देश के लोगों की बाह्य आय का वह भाग है, जिसमें विदेशों में कमाई गई आय भी शामिल है, जिसे द्रव्य के रूप में नापा जा सकता है।" इस परिभाषा में दो बातों पर विशेष जोर दिया गया है—(अ) देश के नागरिकों द्वारा विदेशों में लगायी गई पूँजी से प्राप्त आय को राष्ट्रीय आय में शामिल करना चाहिए। (ब) राष्ट्रीय आय में केवल उन्हीं वस्तुओं और सेवाओं को शामिल किया जाना चाहिए, जिनके बदले में मुद्रा चुकायी जाती है।
प्रो० पीगू की परिभाषा सरल एवं कार्य योग्य होते हुए भी त्रुटि रहित नहीं कही जा सकती। इनकी परिभाषा के दोष निम्नलिखित हैं—

(i) प्रो० पीगू के विचार बहुत **संकीर्ण तथा विरोधाभास** से भरपूर हैं। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति अपनी नौकरानी को उसकी सेवाओं के लिए ₹ 100 प्रति माह चुकाता है, तो उस नौकरानी की सेवाएँ राष्ट्रीय आय में शामिल की जाएगी, क्योंकि उसकी सेवाओं का मूल्य मुद्रा के रूप में व्यय किया गया है। अब यदि वह व्यक्ति अपनी नौकरानी से विवाह कर लेता है तो उसकी सेवाएँ राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं की जाएँगी, क्योंकि अब उन्हें नौकरानी को अपनी सेवाओं के बदले मुद्रा के रूप में कोई पुरस्कार नहीं मिलता है। स्पष्ट है कि नौकरानी की सेवाएँ वही हैं लेकिन कभी तो वह राष्ट्रीय आय में शामिल होती हैं, कभी नहीं।

TOUCH 'n' PASS

(ii) यह परिभाषा केवल मौद्रिक अर्थव्यवस्था में ही लागू हो सकती है और जिन देशों में अधिकांश वस्तुओं एवं सेवाओं का विनिमय नहीं किया जाता वरन् प्रत्यक्ष रूप से अदल-बदल हो जाता है, इस परिभाषा का कोई महत्त्व नहीं है।

प्रो० पीगू के अनुसार, "आर्थिक कल्याण कुल कल्याण का वह भाग है, जिसकी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से मुद्रा के रूप में माप की जा सकती है। पीगू ने बताया कि राष्ट्रीय आय और आर्थिक कल्याण के बीच इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि एक में परिवर्तन होने से दूसरे में भी परिवर्तन हो जाता है। प्रो० पीगू के शब्दों में, "यदि गरीबों को मिलने वाली आय के अंश में कमी नहीं आती तो कुल राष्ट्रीय आय के परिमाण में वृद्धि होने से अन्य बातों के समान रहने पर आर्थिक कल्याण में अवश्य वृद्धि हो जाती है।" इसका कारण यह है कि गरीबों की आय में थोड़ी वृद्धि कुल आर्थिक कल्याण को बहुत बढ़ा देती है, जबकि अमीरों की आय में बहुत अधिक वृद्धि भी कुल आर्थिक कल्याण में अधिक वृद्धि नहीं करती।

पीगू ने यह बताया कि सामान्यतया यदि राष्ट्रीय आय के वितरण में निर्धन के पक्ष में कोई परिवर्तन होता है तो उससे आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है। प्रो० पीगू के शब्दों में, "हमें यह निष्कर्ष निकालने में कोई संकोच नहीं करना चाहिए कि यदि राष्ट्रीय आय के परिमाण में कमी नहीं होती तो विस्तृत सीमाओं के भीतर धनिकों की आय में कमी करने से गरीबों की वास्तविक आय में जो वृद्धि होती है, उससे निश्चित रूप से आर्थिक कल्याण बढ़ता है।"

4. रोजगार का सिद्धान्त (Employment Theory)

रोजगार के सम्बन्ध में पीगू ने मुख्यतया प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के विचारों का ही समर्थन किया है। बेरोजगारी का कारण उन्होंने मजदूरी की दरों को ऊँचा होना ही बताया है, अर्थात् उन्होंने बताया है कि बेरोजगारी को मजदूरी की दरों में कटौती करके दूर किया जा सकता है। **प्रो० पीगू** के अनुसार, "बेरोजगारी के दबाव में मजदूरी की दरें गिर जाती हैं और ये तब तक गिरती रहती हैं, जब तक काम के इच्छुक सभी व्यक्तियों को रोजगार नहीं मिल जाता।" यदि देश में बेरोजगारी है तो वह मजदूरी की दर में कमी के द्वारा स्वत: ही ठीक हो जाएगी, क्योंकि मजदूरी में कमी के कारण उत्पादक अधिक मजदूरों की माँग करेंगे।

अपने निष्कर्ष को सिद्ध करने के लिए प्रो० पीगू ने एक गणितीय सूत्र का उपयोग किया, जो इस प्रकार है—

$$N = \frac{qY}{W}$$ जहाँ N = कार्यरत श्रमिकों की संख्या

W = मजदूरी की दर

Y = राष्ट्रीय आय

qY = राष्ट्रीय आय का वह अनुपात, जो मजदूरियों के रूप में दिया जाता है।

पीगू का मत है कि श्रमिकों की संख्या (N) को सदा ही, मजदूरी की दर (W) में कमी करके बढ़ाया जा सकता है। जिस प्रकार किसी वस्तु का मूल्य बहुत नीचा होने की स्थिति में उसकी समस्त पूर्ति बिक जाती है, ठीक इसी प्रकार मजदूरी की दर बहुत नीची होने की दशा में भी श्रमिकों को रोजगार मिल जाएगा।

प्रो० केनन ने भी पीगू के विचारों का पूरी तरह से समर्थन किया और कहा कि सामान्य बेरोजगारी अत्यधिक मजदूरी माँगने का परिणाम है। प्रो० शुम्पीटर ने भी यह विश्वास प्रकट किया कि पूर्ण पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में निरन्तर बेरोजगारी नहीं रह सकती। प्रो० कीन्स ने पीगू के मजदूरी कटौती सम्बन्धी विचारों की कटु आलोचना की है।

5. मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त (Quantity Theory of Money)

मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त के कैम्ब्रिज समीकरण में **पीगू** ने सुधार किया है। उन्होंने अर्थशास्त्र को दो महत्त्वपूर्ण समीकरण दिये हैं।

$$P = \frac{KR}{M}$$

जहाँ,

P = मुद्रा की एक इकाई का मूल्य।

K = वास्तविक आय का वह अनुपात जो मुद्रा के रूप में रखा जाता है।

R = देश की कुल वास्तविक आय।

M = मुद्रा की प्रचलित मात्रा।

उक्त समीकरण को बाद में ऐसी अवस्था के स्पष्टीकरण के लिए संशोधित किया गया कि जिसमें नकदी अंशत: कानूनी मुद्रा में अंशत: बैंक निक्षेपों (deposits) के रूप में रखी जाती है। यदि बैंक डिपाजिट्स को भी शामिल कर लिया जाये तो समीकरण का रूप अग्र प्रकार होगा—

TOUCH 'n PASS

$$P = \frac{KR}{M} + \{C + H(I - C)\}$$

इस समीकरण में, C = कुल मुद्रा का वह भाग जो नकद में रखा जा रहा है।

$I - C$ = कुल मुद्रा का वह भाग जो बैंकों में जमा किया जा रहा है।

H = बैंकों में कुल जमा रकम का वह भाग जो बैंक नकद के रूप में रखते हैं।

पीगू द्वारा अपने समीकरण में उक्त संशोधन किये जाने के पश्चात् भी सामान्यत: नकद शेष समीकरण के सरल रूप में $P = \frac{M}{KR}$ का ही प्रयोग किया जाता है, क्योंकि व्यवहार में साख मुद्रा को वास्तविक मुद्रा में ही सम्मिलित माना जाता है।

पीगू के समीकरण की आलोचना (Criticism of Pigu's Equation)—कीन्स ने पीगू के मुद्रा के परिमाण समीकरण को निम्नलिखित कारणों से अपर्याप्त बताया है—

(i) पीगू ने बचतों और विनिमयों में होने वाले परिवर्तनों पर कोई विचार नहीं किया, केवल नकदी की मात्रा में होने वाले परिवर्तनों का ही अध्ययन किया है।

(ii) मुद्रा के दो मुख्य कार्य—विनिमय का माध्यम व मूल्य संचय—में से पीगू ने केवल मूल्य संचय कार्य का वर्णन किया है जबकि फिशर ने विनिमय माध्यम वाले कार्य को भी महत्त्व दिया है।

(iii) पीगू ने प्रसाधनों (resources) और चालू आय (current income) को एक जैसी चीज समझ लिया है जो सर्वथा अनुचित है।

(iv) पीगू ने केवल गेहूँ के मूल्यों से ही मुद्रा का मूल्य मापने का प्रयत्न किया है, जो उचित नहीं है। मुद्रा सिद्धान्त का उद्देश्य गेहूँ की कीमत का पता लगाना ही नहीं बल्कि मुद्रा की क्रय-शक्ति ज्ञात करना भी है।

(v) पीगू का समीकरण विभिन्न उद्देश्यों (बचत, व्यवसाय एवं आय) के लिए रखी जाने वाली निक्षेपों के अनुपात में होने वाले विघ्नों पर भी ध्यान नहीं देता है।

6. व्यापार-चक्र का मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त (Psychological Theory of Business Cycle)

पीगू के अनुसार, औद्योगिक उच्चावचन व्यापारियों की मनोवृत्ति के परिवर्तनों का परिणाम है, अर्थात् व्यापार-चक्र हमारी मनोवृत्तियों में ही निहित है। व्यापारियों के मस्तिष्क में आशावादिता व निराशावादिता की लहरें एक के बाद एक उठा करती हैं। इन लहरों को जीवन की भौतिक दशाओं में प्रोत्साहन मिला करता है। यही लहरें हैं जिनमें व्यापार के चाक्रिक उतार-चढ़ाव के कारणों का स्पष्टीकरण होता है।

प्रो० पीगू का दृष्टिकोण इस प्रकार है—कुछ (या कई बार एक ही) महत्त्वपूर्ण व्यापारियों के निराशावादी हो जाने से निराशा की लहर फैल जाती हैं—जिसके परिणामस्वरूप व्यापारी अपने संग्रह को कम करने लगते हैं तथा माल की खरीद में कमी कर देते हैं। अत: उत्पादन घटता है, आय कम होती है। आय कम हो जाने से उपभोक्ताओं की माँग घट जाती है जिससे व्यापारियों को स्टॉक और भी कम करने पड़ते हैं। इस प्रकार निराशावादिता → उत्पादन में कमी → आय में कमी → माँग में कमी आदि का कुचक्र एक-दूसरे का पीछा करने लगते हैं जिसके परिणामस्वरूप मन्दी उपस्थित होती है। ठीक इसी प्रकार कुछ ही समय पश्चात् सारी अर्थव्यवस्था में तेजी व अभिवृद्धि की अवस्था उत्पन्न हो जाती है।

आलोचनाएँ—(i) यद्यपि यह कहना सत्य है कि व्यापार पर व्यापारियों की मनोवृत्ति का गहरा प्रभाव पड़ता है परन्तु व्यापारियों की मनोवृत्ति पर अनेक बाह्य कारणों का प्रभाव पड़ता है। व्यापार चक्र का यह सिद्धान्त इन बाह्य कारणों की किसी प्रकार से कोई व्याख्या नहीं करता है।

(ii) यद्यपि इस सिद्धान्त में तेजी व मन्दी के सामूहिक स्वभाव का स्पष्टीकरण किया गया है, परन्तु इससे तेजी व मन्दी या स्थिरता से आशावादिता की ओर मुड़ने का सन्तोषजनक स्पष्टीकरण नहीं मिलता।

प्र.3. शुम्पीटर के प्रमुख आर्थिक विचारों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
Describe in detail the main economic thoughts of Schumpeter.

उत्तर

जे०ए० शुम्पीटर
(J.A. Schumpeter)

सन् 1883 ई० में ट्रीस (मोराविया) में जन्मे **प्रो० जोसेफ ए० शुम्पीटर** ने वियना विश्वविद्यालय से सन् 1906 में कानून की उच्च शिक्षा प्राप्त की तथा वकालत का व्यवसाय प्रारम्भ किया किन्तु इनका झुकाव अर्थशास्त्र की ओर होने के कारण ये वकालत

के साथ कोई सामंजस्य स्थापित नहीं कर सके तथा इन्होंने अर्थशास्त्र का अध्ययन करने का निश्चय किया। ऑस्ट्रियन अर्थशास्त्री **बामबावर्क** और **वीजर** के निर्देशन में इनका अध्ययन प्रारम्भ हुआ। इन दोनों के अतिरिक्त शुम्पीटर पर **इरविंग फिशर, जे० बी० क्लार्क** तथा **वालरस** के विचारों का भी प्रभाव पड़ा। शुम्पीटर ने मार्क्सवादी दर्शन एवं समाजवादी आन्दोलन का भी अच्छा अध्ययन किया। इन्होंने वियना विश्वविद्यालय, ऑस्ट्रिया में जनरोविज एवं जर्मनी में बॉन विश्वविद्यालयों में शिक्षण का कार्य किया तथा 1927 में अमेरिका के हार्वर्ड विश्वविद्यालय में चले गये जहाँ 1950 (अपनी मृत्यु के समय) तक रहे। शुम्पीटर अपनी विद्वता के लिए विख्यात थे और इसी कारण वे अमेरिकन इकोनॉमिक सोसायटी के 1949 में अध्यक्ष रहे तथा 1937 से 1941 तक इकोनामेट्रिक सोसायटी के भी अध्यक्ष रहे। थोड़े समय के लिए आप ऑस्ट्रियन रिपब्लिक के वित्तमन्त्री भी रहे।

प्रो० शुम्पीटर द्वारा लिखी गई कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकें इस प्रकार हैं—The Theory of Economic Development (1912), दो खण्डों में Business Cycles (1930), Capitalism, Socialism and Democracy (1942), Ten Great Economists (1951), Essays (1951), Imperialism and Social Classes (1951), History of Economic Analysis (1954), Economic Doctrine and Method (1957)।

शुम्पीटर के प्रमुख आर्थिक विचार (Main Economic Thoughts of Schumpeter)

अब हम शुम्पीटर के मुख्य आर्थिक विचारों का अध्ययन करेंगे—

1. **अर्थशास्त्र के अध्ययन की विधियाँ** (Methods of Study of Economics)—शुम्पीटर के अनुसार अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए निगमन (Deductive) और आगमन (Inductive) दोनों विधियाँ आवश्यक हैं। किसी भी एक विधि को निरपेक्ष रूप से श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक विधि का विशिष्ट क्षेत्र में प्रयोग होता है। जहाँ मूल्य सिद्धान्त के अध्ययन के लिए निगमन विधि आवश्यक है, वहीं आर्थिक संगठन का अध्ययन करने के लिए आगमन विधि महत्त्वपूर्ण है। व्यापार-चक्रों के सिद्धान्त का विश्लेषण करने के लिए शुम्पीटर ने सांख्यिकीय विधि का प्रयोग किया था किन्तु अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में उन्होंने यह अनुभव किया कि यह विधि बहुत सहायक सिद्ध नहीं हुई है। उन्होंने यह स्वीकार किया कि सैद्धान्तिक, सांख्यिकीय एवं ऐतिहासिक विधियों में अन्तिम विधि ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। अर्थशास्त्र के अध्ययन में गणित के प्रयोग तथा उसके महत्त्व पर भी शुम्पीटर ने बल दिया है।
2. **व्यापार-चक्र का नवप्रवर्तन सिद्धान्त** (Innovation Theory of Business Cycle)—**नवप्रवर्तन की भूमिका**—अमेरिकन अर्थशास्त्री **जोसेफ शुम्पीटर** (Joseph Schumpeter) ने व्यापार-चक्र के नव-प्रवर्तन सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। **शुम्पीटर** के अनुसार आर्थिक विकास प्रक्रिया कभी भी सहज (Smooth) नहीं होती। पूँजीवादी देश की आर्थिक प्रणाली में आर्थिक उच्चावचन एक सामान्य घटना है। पूँजीवादी आर्थिक प्रणाली में समय-समय पर जो नव-प्रवर्तन होते रहते हैं, उन्हीं के कारण आर्थिक उच्चावचन उपस्थित होते हैं जिससे अर्थव्यवस्था एक आर्थिक अवस्था को छोड़कर दूसरी आर्थिक अवस्था की ओर पलायन कर जाती है।

   शुम्पीटर के अनुसार, "नव-प्रवर्तन का अभिप्राय ऐसे नवीन प्रवर्तन से है जिसमें उत्पादन की वर्तमान तकनीकी प्रविधियों में उद्यमियों द्वारा रूपान्तरण कर दिया जाता है।

शुम्पीटर ने नव-प्रवर्तन की श्रेणी में निम्नलिखित अवयवों को सम्मिलित किया है—

(i) किसी नवीन वस्तु का उत्पादन (Production of a New Goods), (ii) उत्पादन की किसी नवीन पद्धति का विकास (The Development of a New Method of Production), (iii) नवीन बाजार का सृजन (Opening of a New Market), (iv) कच्चे माल के नवीन स्रोतों का विकास (Discovery of a New Sources of Raw Material), (v) औद्योगिक प्रबन्ध एवं संगठन का पुनर्गठन (Reconstitution of Organisation & Management of Industry)।

इस प्रकार **शुम्पीटर नव-प्रवर्तन** (Innovation) एवं आविष्कार (Invention) में मौलिक भेद करते हैं। **शुम्पीटर** के अनुसार नवीन उत्पादन तकनीक का विकास, स्थानापन्न, कच्चे माल की खोज आदि नव-प्रवर्तन हैं। **शुम्पीटर** के विचार में नव-प्रवर्तन अचानक (Spontaneous) उपस्थित नहीं होते बल्कि वे उद्यमियों द्वारा क्रियात्मक रूप से विकसित किये जाते हैं। उद्यमी नव-प्रवर्तक (Innovator) होता है। यही कारण है कि **शुम्पीटर** के सिद्धान्त का केन्द्र-बिन्दु उद्यमी ही है।

सिद्धान्त की व्याख्या (Explanation of Theory)—शुम्पीटर यह मानकर चलते हैं कि अर्थव्यवस्था साम्य की स्थिति में है तथा प्रत्येक साधन पूर्ण रूप से नियुक्त है। इस सन्तुलन को आपने **वृत्तीय प्रवाह** (Incular Flow) कहा है जो हर वर्ष एक ही ढंग से अपनी पुनरावृत्ति (Repeat) करता रहता है। शुम्पीटर का मॉडल इस बात से शुरू होता है कि लाभ कमाने के लिए उद्यमी नई वस्तु के रूप में नव-प्रवर्तन करके वृत्तीय प्रवाह को भंग करती है।

TOUCH 'n PASS

व्यापार-चक्र की विभिन्न अवस्थाओं का विश्लेषण
(Analysis of Different Phases of Business Cycle)

व्यापार-चक्र की विभिन्न अवस्थाओं का विश्लेषण निम्न प्रकार है—

(i) **तेजी अथवा समृद्धि** (Boom or Prosperity)—शुम्पीटर की मान्यता के अनुसार चूँकि एक पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पाद के साधनों के नये व अच्छे संयोगों की सम्भावना हमेशा मौजूद होती है इसलिए साहसी इन लाभ सम्भावनाओं का फायदा उठाने के लिए नये प्रयोग अर्थात् नव-प्रवर्तन करते हैं। वे अपनी अधिकांश पूँजी व्यापारी बैंकों से उधार लेकर नये उपक्रम नव-प्रवर्तनों के सहारे खड़े करते हैं। यदि वे अधिक लाभ प्राप्त करने में सफल होते हैं तो और नये उपक्रमी उनका अनुकरण करते हैं। इस निवेश वृद्धि का परिणाम यह होता है कि मौद्रिक आय तथा कीमतें बढ़ने लगती हैं जो आगे चलकर समस्त अर्थव्यवस्था के संचयी विस्तार की दशाएँ उत्पन्न कर देती हैं। शुम्पीटर ने इस 'आर्थिक चेतना' को उद्यमी के नव-प्रवर्तन की **'प्राथमिक लहर'** की संज्ञा दी है।

उपर्युक्त परिस्थिति के पश्चात् आर्थिक प्रगति में **द्वितीय लहर** प्रारम्भ होती है जिसमें पुरानी फर्में अपने उत्पादन में वृद्धि करती हैं क्योंकि अब उपभोग व्यय आय में वृद्धि के साथ-साथ बढ़ने लगता है। व्यापारी वर्ग मूल्य में निरन्तर वृद्धि की सम्भावना करता है जिसके फलस्वरूप परिकाल्पनिक व्यापार (Speculative Business) में वृद्धि होती है। अब बैंक केवल नव-प्रवर्तन सम्बन्धी आर्थिक क्रियाओं के लिए ऋण प्रदान नहीं करते बल्कि वर्तमान विधियों के अन्तर्गत उत्पादन बढ़ाने के लिए भी धन देते हैं। इस प्रकार विनियोजन में और वृद्धि हो जाती है। ऐसी स्थिति में साख स्फीति की **द्वितीयक लहर** (Second Wave) प्रेरित होती है जो नव-प्रवर्तन की प्राथमिक लहर पर छा जाती है। शुम्पीटर ने इसे **समृद्धि अवस्था** (Prosperity Phase) कहा है। प्राथमिक लहर व द्वितीयक लहर को चित्र 1 में प्रदर्शित किया है।

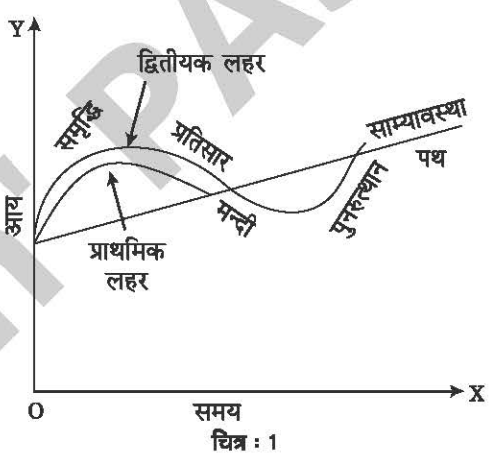

चित्र : 1

(ii) **प्रतिसार की अवस्था** (Recession Stage)—विनियोग वृद्धि एवं नये साहसियों के उत्पादन प्रक्रिया में प्रवेश से बाजार में नयी वस्तुओं तथा फर्मों के माध्यम से प्रतिस्पर्द्धा प्रारम्भ हो जाती है जिसे शुम्पीटर **रचनात्मक विनाश की प्रक्रिया** (Process of Creative Destruction) कहते हैं। नव-प्रवर्तनों के कारण पुराना सन्तुलन नये सन्तुलन में बदल जाता है तथा लाभ घटने से नव-प्रवर्तनों के प्रयोग भी घटने लगते हैं जिनसे मौद्रिक आय एवं कीमतें भी घटती हैं। आय एवं कीमत के ह्रास को शुम्पीटर ने प्रतिसार अवस्था की संज्ञा दी है।

(iii) **मन्दी की अवस्था** (Stage of Depression)—पुरानी वस्तुओं की माँग घट जाती है। उनकी कीमतें गिर जाती हैं। पुरानी फर्में उत्पादन घटा देती हैं और कुछ फर्में तो बन्द हो जाती हैं। जब नव-प्रवर्तन अपने लाभों में से बैंक का कर्जा चुकाना शुरू करते हैं तो मुद्रा की मात्रा घट जाती है और कीमतें गिरने लगती हैं। लाभ कम हो जाते हैं। अनिश्चितता एवं जोखिम बढ़ जाती है। नव-प्रवर्तन का आवेग कम हो जाता है और समाप्त हो जाता है। मन्दी शुरू हो जाती है और 'सन्तुलन के पिछले बिन्दु के आस-पास' पुनर्समायोजन की दु:खद प्रक्रिया शुरू हो जाती है। संक्षेप में अवस्फीति के कारण कीमतें गिरती हैं → उत्पादन घटता है → लाभ कम हो जाता है → प्रतिफल में अनिश्चितता एवं जोखिम बढ़ जाता है → नव-प्रवर्तनों की प्रेरणा समाप्त होने लगती है → साख का ढाँचा भी गड़बड़ा जाता है → मन्दी की भयंकर स्थिति उत्पन्न होती है जिससे अर्थव्यवस्था एक भयंकर दुष्चक्र में फँस जाती है।

(iv) **पुनरुत्थान** (Recovery)—कुछ फर्में एवं साहसी असफल हो जाते हैं तथा अपना कारोबार बन्द करने पर मजबूर हो जाते हैं परन्तु ऐसी स्थिति में प्रेरित विनियोग से कुछ नये प्रवर्तन शुरू किये जाते हैं जिससे पुन: बाजार में चेतना उत्पन्न होने लगती है। शुम्पीटर ने इसे ही **पुनरुत्थान** (Recovery) की अवस्था कहा है। विकास की नयी प्रक्रिया अपने को पूर्व की भाँति ऊपर की तरफ बढ़ाती जाती है जिससे पुन: सन्तुलन, पूर्व सन्तुलन की स्थिति में आ जाता है।

TOUCH 'n' PASS

शुम्पीटर की धारणा थी कि मन्दी काल में अर्थव्यवस्था नवीनताओं से आवश्यक समायोजन करती हुई एक नवीन सन्तुलन की ओर अग्रसर होती है परन्तु जैसे ही यह समायोजन पूरा होता है, अर्थव्यवस्था एक स्थिर प्रवाह बन जाती है। फिर नव-प्रवर्तन की एक नई लहर उत्पन्न होती है तथा यह चक्रीय प्रक्रिया बार-बार दुहरायी जाती है।

उपक्रमी की भूमिका (Role of Entrepreneurs)—शुम्पीटर का मत है कि आर्थिक विकास का कार्य स्वत: नहीं होता बल्कि इस कार्य को विशेष प्रयत्नों, प्रयासों व जोखिमों के साथ शुरू करना पड़ता है। अत: उत्पादन के क्षेत्र में नव-प्रवर्तनों के लिए उपक्रमी वर्ग का होना अनिवार्य है क्योंकि उपर्युक्त प्रत्येक परिवर्तन के फलस्वरूप साधनों के मिश्रण में परिवर्तन आवश्यक हो जाता है और यह उपक्रमी का कार्य है। यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि उपक्रमी न तो वह व्यक्ति है जो नव-प्रवर्तन कल्पित करता है, न ही वह व्यक्ति जो इसके लिए वित्त प्रबन्ध करता है बल्कि वह ऐसा व्यक्ति है जो नव-प्रवर्तन को कार्यरूप देता है। उपक्रमी का शुम्पीटर के विकास सिद्धान्त में बड़ा महत्त्व है। विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में यह उपक्रमी आगे बढ़कर नेतृत्व अपने हाथों में ले लेता है। उत्पादन भी नवीनताओं का सृजन करके विकास की पद्धति को आगे बढ़ाता है। अनुकूल वातावरण सम्भावनाओं को खोजकर उनको प्रयोग में लाने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार उपक्रमी की नव-प्रवर्तन की क्षमता ही आर्थिक व्यवस्था की प्रावैगिकता की जान है। नव-प्रवर्तन का अर्थ केवल आकस्मिक आविष्कारों का उत्पादन क्षेत्र में प्रयोग ही नहीं है, सुदीर्घ अवधि में शनै:-शनै: होने वाली तथा संचित उन्नति से भी इसका अर्थ लगाया जाता है। शुम्पीटर के विकास सिद्धान्त की एक अन्य विशेषता यह है कि वह अपने विकास सिद्धान्त में साहसी की महत्ता बढ़ाने के लिए **'उपभोक्ताओं की सार्वभौमिकता'** (Consumer's Sovereignty) की महत्ता को कम कर देता है क्योंकि वह यह मान लेता है कि उपभोक्ताओं की रुचियों में परिवर्तन उपक्रमी द्वारा ही लाये जाते हैं।

उपक्रमी के प्रोत्साहन स्त्रोत (Sources of Incentives to Entrepreneurs)—उपक्रमी मुख्य रूप से तीन बातों से प्रेरित होता है—

(i) नयी वाणिज्य सल्तनत की स्थापना की लालसा,

(ii) विजयी होने तथा अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने की इच्छा,

(iii) निर्माण की अथवा दूसरों से कार्य कराने की अथवा केवल अपनी शक्ति तथा प्रवीणता के प्रयोग करने की प्रसन्नता। उसकी प्रकृति तथा क्रियाशीलताएँ उसकी सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थिति पर निर्भर करती हैं। अपना आर्थिक कार्य करने के लिए उपक्रमी को दो चीजों की जरूरत होती है—**प्रथम,** नयी वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए आवश्यक तकनीकी ज्ञान की उपलब्धता, **दूसरा,** बैंक साख की सुविधा। **शुम्पीटर** का कहना है कि तकनीकी ज्ञान का एक पर्याप्त भण्डार समाज में हर समय विद्यमान होता है। हाँ, इसे अभी खोला नहीं गया होता और इसके प्रयोग की पहल उद्यमी द्वारा की जाती है। इस प्रकार सार रूप में "विकास की दर समाज में तकनीकी ज्ञान के भण्डार में परिवर्तन का फलन है। तकनीकी परिवर्तनों की दर उद्यमियों के सक्रिय होने के स्तर पर निर्भर करती है और यह सक्रियता स्तर नये उद्यमियों के प्रकट होने तथा साख निर्माण की मात्रा द्वारा निर्धारित होता है।"

सार रूप में—

1. विकास दर समाज में तकनीकी ज्ञान के भण्डार में परिवर्तन का फलन है—
   Gr = f (Ts), Gr = Growth Rate, F = Foundation
   Ts = Change in store of technical knowledge
2. तकनीकी परिवर्तन की दर उद्यमी की सक्रियता का फलन है—
   Tsr = f (en. A) Tsr = Rate of technical change
   f = function
   enA = Activity of entrepreneur
3. उद्यमी का सक्रियता स्तर नये उद्यमी के उद्‌भव एवं साख निर्माण पर निर्भर है।
   शुम्पीटर की यह मान्यता थी कि चालू बचतें, नव-प्रवर्तन योजनाओं के लिए पर्याप्त नहीं होतीं। इसलिए विकास वित्त की पूर्ति बैंकों द्वारा निर्मित साख द्वारा की जानी चाहिए। यद्यपि बैंक साख द्वारा पूँजी संचयन की प्रक्रिया अल्पकाल में स्फीतिक

TOUCH 'n PASS

होती है। किन्तु नव-प्रवर्तन की सफलता के बाद जब नयी मौद्रिक आय उत्पन्न हो जाती है तो ऋणों की वापसी के साथ-साथ स्फीतिक प्रभाव कम होने लगता है। शुम्पीटर की अनिवार्य बचतों को भी पूँजी संचयन का एक प्रभावी स्रोत माना जाता है।

4. **पूँजीवाद तथा समाजवाद** (Capitalism and Socialism)—पूँजीवाद के सम्बन्ध में शुम्पीटर के विचार मार्क्स के मिलते-जुलते हैं। शुम्पीटर के अनुसार, पूँजीवाद अपने अन्दर छिपे हुए विरोधाभासों के कारण दीर्घकाल में स्वयं समाप्त हो जाएगा। उनका विश्वास है कि पूँजीवाद की पृष्ठभूमि एवं उसका आधार कमजोर होता जा रहा है जिसके तीन कारण हैं—
   (i) **साहसी या उपक्रमी का कार्य पुराना पड़ता जा रहा है**—उपक्रमी का प्रमुख कार्य प्राचीन निर्माण पद्धति को बदलकर नव-प्रवर्तन करना है परन्तु आज का यह कार्य विशेषज्ञों, प्रबन्धकों व वैज्ञानिकों के हाथ में चला गया है। फलतः पुराने पूँजीवाद के उपक्रमियों की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार उपक्रमियों का आर्थिक कार्य ही समाप्त हो गया है।
   (ii) **पूँजीवादी समाज का संस्थापक ढाँचा नष्ट होता जा रहा है**—आधुनिक समय में पूँजीवादी ढाँचा ही समाप्त हो रहा है क्योंकि बड़े उद्योगपतियों के मुकाबले में छोटे व्यापारी नहीं पनप सकते। आज के उद्योगों में अंशधारी (Shareholders) प्रबन्ध से दूर होते हैं, प्रबन्धकों को कोई जोखिम नहीं होता। पूरे उद्योग में अपना स्वामित्व दिखाने वाला कोई व्यक्ति नहीं रहता। वह एक मशीन मात्र रह जाती है। संयुक्त परिवार का विघटन भी पूँजीवाद को जर्जर करता है। व्यक्तिगत सम्पत्ति का लोप पूँजीवादी व्यवस्था की समाप्ति है।
   (iii) **पूँजीवाद को मिलने वाला राजनैतिक संरक्षण समाप्त होता जा रहा है**—इसके अतिरिक्त मजदूर आन्दोलन भी पूँजीवाद पर प्रहार कर रहा है।

   शुम्पीटर का अनुमान है कि पूँजीवाद में नव-प्रवर्तन की शक्ति समाप्त हो रही है तथा इसके रहने की बहुत आशा नहीं है। आप मानते हैं कि पूँजीवाद की समाप्ति के बाद में भी समाजवाद आना अवश्यम्भावी है।

5. **लाभ का सिद्धान्त** (Theory of Profit)—शुम्पीटर का लाभ का सिद्धान्त उनके व्यापार-चक्र सिद्धान्त का ही एक भाग है। वे लाभ का प्रधान कारण नव-प्रवर्तन को मानते हैं। उनके अनुसार कुल मूल्य एवं कुल लागत का अन्तर अर्थात् एक बचत (लाभ) है। इस बचत के लिए उपक्रमी नवीन योजनाएँ बनाता है अर्थात् नयी वस्तु बाजार में लाता है। नवीन निर्माण पद्धति निकालता है। नया बाजार खोलता है। कच्चे माल के नये स्रोत खोजता है। इसमें सफलता प्राप्त होने से उपक्रमी को लाभ प्राप्त होने लगता है किन्तु अन्य उद्योगपति भी इसका अनुकरण करने लगते हैं तथा उनकी स्पर्द्धा के कारण वह लाभ समाप्त हो जाता है। फिर से यही क्रम चलता है।

❐

TOUCH 'n PASS

UNIT-VII

सीमान्तवादी
Marginalists

खण्ड-अ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. जेवेन्स का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

Give a brief introduction of Jevons.

उत्तर विषयगत सम्प्रदाय के महान् स्तम्भ का जन्म 1835 ई० में लीवरपूल (England) में हुआ था। 1851 ई० में जेवेन्स ने यूनिवर्सिटी कॉलेज लन्दन में प्रवेश किया। बी०ए० करने के पश्चात् 1854 ई० में इन्होंने ऑस्ट्रेलिया में सिडनी नामक स्थान पर टकसाल में नौकरी कर ली। 1859 ई० तक वे इस पद पर नियुक्त रहे। इंग्लैण्ड वापस लोटने पर उन्होंने पुन: अध्ययन प्रारम्भ किया था तथा 1863 ई० में एम०ए० की उपाधि प्राप्त की। तत्पश्चात् ओवन्स कॉलेज में वे प्राध्यापक हो गए। 1876 ई० में यूनिवर्सिटी कॉलेज लन्दन में प्रोफेसर नियुक्त हो गए। सन् 1882 में पानी में डूबने के कारण इंग्लैण्ड के महान् विचारक तथा अर्थशास्त्री की 47 वर्ष की अल्प आयु में ही असामयिक मृत्यु हो गयी। यदि भाग्य ने जेवेन्स को कुछ और अधिक वर्षों तक जीवित रहने दिया होता है नि:सन्देह उन्होंने अर्थशास्त्र को अपने आर्थिक विचारों से अधिक सुशोभित किया होता।

प्र.2. जेवेन्स के आर्थिक विचारों को संक्षेप में लिखिए।

Write in brief the economic thoughts of Jevons.

उत्तर जेवेन्स के आर्थिक विचारों का अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं—

1. उपभोग, आवश्यकता तथा उपयोगिता सम्बन्धी विचार (Views on Consumption, Wants and Utility),
2. सुख-दु:ख का विचार (Views on Pleasure and Pain),
3. मूल्य का सिद्धान्त (Theory of Value),
4. पूँजी सम्बन्धी सिद्धान्त (Capital Theory),
5. प्रतिष्ठित सिद्धान्तों की आलोचनाएँ (Criticisms of Classical Theory),
6. वितरण व व्यापार का सिद्धान्त (Theory of Distribution and Trades),
7. जेवेन्स का सूर्य-चिन्ह सिद्धान्त (Sun-spot Theory of Jevons)।

प्र.3. वालरस के मूल्य सम्बन्धी विचारों को लिखिए।

Write the views of Walras on values.

उत्तर मूल्य निर्धारण के सम्बन्ध में वालरस ने स्वल्पता (Rarity) शब्द का प्रयोग किया है जिसे उन्होंने अपने पिता अगस्टे वालरस से ग्रहण किया है जिनके अनुसार "जिस किसी भी वस्तु का मूल्य होता है, उसके मूल्य का एकमात्र कारण सीमित मात्रा में उपलब्ध होने का सिद्धान्त ही होता है। उपयोगिता मूल्य का कारण नहीं है, भले ही यह मूल्य के लिए एक आवश्यक दशा कही जा सकती है।" **लियोन वालरस** के अनुसार स्वल्पता अन्तिम सन्तुष्ट इच्छा की तीव्रता है। विनिमय मूल्य इसी **स्वल्पता** के अनुपात में होता है अर्थात् वस्तुओं की स्वल्पता में होने वाला परिवर्तन मूल्य को भी परिवर्तित करता है। सीमान्त उपयोगिता की तुलना में वालरस का स्वल्पता का विवेचन अधिक वास्तविक है। स्वल्पता वस्तुओं की उपयोगिता और पूर्ति पर निर्भर रहती है अत: इस परिभाषा में उन्होंने पूर्ति की सीमाओं पर भी विचार किया है।

TOUCH 'n PASS

प्र.4. आय और पूँजी में अन्तर बताइए।

Give the difference between income and capital.

उत्तर फिशर पहले ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने इस विचार को प्रस्तुत किया कि आय तथा पूँजी को एक ही न समझना चाहिए। फिशर ने पूँजी के अन्तर्गत सभी प्रकार के धन और मानवीय साधनों को सम्मिलित किया है। पूँजी के उपयोग से जो वस्तुओं एवं सेवाओं का प्रवाह होता है, उसे फिशर आय मानते हैं।

प्र.5. फिशर का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

Give a brief introduction of Fisher.

उत्तर फिशर का जन्म 1867 ई० में, अमेरिका में हुआ था। ये आधुनिक अमेरिकी अर्थशास्त्री में अग्रणीय कहे जाते हैं। इनको विद्वानों ने अमेरिका का गणितीय सम्प्रदाय कहकर पुकारा है। उनके द्वारा प्रतिपादित विचारों में गणित की स्पष्ट छाप है। फिशर द्वारा लिखित पुस्तकों में प्रसिद्ध पुस्तकें निम्नलिखित हैं—

1. Mathematical Investigations in the Theory of Value and Prices, 1892.
2. पूँजी और आय का स्वभाव (The Nature of Capital and Income)
3. ब्याज की दर (The Rate of Interest, 1907)
4. अर्थशास्त्र के प्रारम्भिक सिद्धान्त (Elementary Principles of economics, 1912)
5. ब्याज का सिद्धान्त (The Theory of Interest, 1930)।

प्र.6. व्यापार चक्र को समझाइए।

Define business cycle.

उत्तर विक्सेल के विचारानुसार, मौद्रिक व अमौद्रिक कारणों के परिणमस्वरूप व्यापार चक्र का जन्म होता है। व्यापार चक्र के अमौट्रिक कारणों की चर्चा करते हुए विक्सेल ने लिखा है कि जब तकनीकी प्रगति जनसंख्या की वृद्धि के ठीक साथ-साथ नहीं चलती, सभी व्यापार चक्र आरम्भ हो जाते हैं। व्यापार चक्रों का मौद्रिक कारण विक्सेल के विचारानुसार बाजारू ब्याज दर तथा प्राकृतिक ब्याज दर के मध्य असमानता में निहित है। विक्सेल ने सुझाव दिया कि केन्द्रीय बैंक को चाहिए कि बाजारू ब्याज दर को प्राकृतिक ब्याज दर के बराबर बनाये रखे, जिससे कि तेजी अथवा मन्दी की घटना उत्पन्न न होने पाये।

खण्ड-ब लघु उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. पी०एच० विकस्टीड के आर्थिक विचारों वर्णन कीजिए।

Describe the economic thoughts of P.H. Wicksteed.

उत्तर

पी०एच० विकस्टीड
(P.H. Wicksteed)

नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों में पी०एच० विकस्टीड का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनका उदय मार्शल के समय हुआ था। उनकी शिक्षा लन्दन के यूनीवर्सिटी कॉलेज तथा मैन्चेस्टर के न्यू कॉलेज में हुई। अर्थशास्त्र में उनकी रुचि बाद में हुई। उन पर सबसे अधिक प्रभाव ऑस्ट्रियन विचारधारा का पड़ा।

विकस्टीड के प्रमुख ग्रन्थ—विकस्टीड के प्रमुख ग्रन्थ निम्न प्रकार हैं—

1. Our Prayers and Our Politics (1885),
2. The Alphabet of Economic Science (1888),
3. An Essay on the Co-ordination of the Laws of Distribution (1894),
4. The Commonsense of Political Economy (1910),
5. The Scope and Method of Political Economy in the Light of Marginal Principle (Paper) (1914)।

TOUCH 'n' PASS

विकस्टीड के प्रमुख आर्थिक विचार निम्नलिखित हैं—

1. **उपयोगिता का विश्लेषण** (Utility Analysis)—विकस्टीड को इस बात का श्रेय है कि उन्होंने उपयोगिता का सूक्ष्म विश्लेषण किया और अर्थशास्त्र को सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility) शब्द दिया। अपने ग्रन्थ *'The Alphabet of Economic Science'* में उन्होंने इस शब्द का सर्वप्रथम उपयोग किया, बाद में सब ग्रन्थों में इसका प्रचार हो गया। इसके पूर्व इस अर्थ में जेवेन्स द्वारा प्रयुक्त अन्तिम उपयोगिता (Final Utility) शब्द प्रचलित थे। वस्तुत: सीमान्त उपयोगिता विकस्टीड के अर्थशास्त्र का केन्द्र बिन्दु है और इसके द्वारा उन्होंने सब आर्थिक सिद्धान्तों का विश्लेषण किया है।
2. **मूल्य का सिद्धान्त** (Theory of Value)—आपने रिकॉर्डों तथा कार्ल मार्क्स के मूल्य सिद्धान्त (Labour Theory of Value) की आलोचना की है। विकस्टीड का मत है कि किसी वस्तु का मूल्य उस वस्तु में लगे हुए श्रम के ऊपर निर्भर नहीं होता बल्कि स्वयं श्रम का ही मूल्य वस्तु के मूल्य पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए, मूल्य अधिक है इसलिए समाज अधिक श्रम करने को तत्पर रहता है।
3. **पूर्ति विश्लेषण** (Supply Analysis)—विकस्टीड का एक महत्त्वपूर्ण विचार पूर्ति विश्लेषण है। उन्होंने मार्शल के माँग और पूर्ति के सन्तुलन की आलोचना करते हुए लिखा कि पूर्ति तथा माँग में कोई मौलिक अन्तर नहीं है। वस्तुत: मूल्यों में अन्तर होने के कारण ही विक्रेता ही क्रेता और क्रेता ही विक्रेता हो जाते हैं। उन्होंने स्पष्ट किया कि मूल्य निर्धारण में माँग तत्त्व ही प्रधान होता है क्योंकि पूर्ति वक्र ही माँग वक्र उन व्यक्तियों का है जिनके अधिकार में वस्तुएँ थी।
4. **वितरण का सिद्धान्त** (Theory of Distribution)—अपने ग्रन्थ *'Essay on the Co-ordination of the Laws of Distribution'* में विकस्टीड ने वितरण की एक नवीन व्याख्या की है जोकि काफी विख्यात हुई। यह व्याख्या सीमान्त उत्पादकता (Marginal Productivity) के सिद्धान्त पर आधारित है। उनके अनुसार, यदि साधन को उसकी सीमान्त 'उत्पादकता के बराबर पुरस्कार दिया जाता है तो सम्पूर्ण उत्पादन समाप्त हो जाएगा और कुछ भी अतिरेक शेष नहीं बचेगा। इन्होंने इस समस्या को 'उत्पाद समाप्ति की समस्या' (Product Extranstion Problem) बताया। इन्होंने यह सिद्ध करने के लिए कि प्रत्येक साधन की सीमान्त उत्पादकता के बराबर किया गया, भुगतान कुल उत्पाद को पूर्ण रूप से परिसमाप्त कर देता है, स्विट्ज़रलैण्ड के गणतिज्ञ लैनहर्ड यूलर (Leonhard eular) द्वारा बनायी गयी यूलर प्रमेय (Eular's Theorem) कर प्रयोग किया।

प्र.2. कूर्नो के आर्थिक विचारों का उल्लेख कीजिए।
Mention the economic thoughts of Cournot.

उत्तर

कूर्नो के आर्थिक विचार
(Economic Thoughts of Cournot)

यद्यपि कूर्नो **अर्थविज्ञान** के क्षेत्र में गणितीय सूत्रों का प्रयोग करने वाले प्रथम व्यक्ति नहीं थे फिर भी उन्हें गणितीय अर्थशास्त्र का संस्थापक माना जाता है। कूर्नो के आर्थिक कार्यों के निचोड़ की विवेचना करते हुए **राबर्ट लेकाचमेन** कहते हैं कि, उन्होंने नीचे की ओर झुकती हुई माँग-वक्र को परिभाषित किया एवं उसका वर्णन किया, एकाधिकार की दशाओं में लाभ को अधिकतम करने की प्रणाली का विश्लेषण किया, द्वयधिकार (Duopoly) के अन्तर्गत मूल्य-निर्धारण की व्याख्या की, यह सिद्ध किया कि सन्तुलन कीमत उस समय स्थापित होती है जब कुल पूर्ति कुल माँग के बराबर होती है, सही ढंग से बाजार की परिभाषा प्रस्तुत की जिसे हम पूर्ण प्रतियोगिता कहते हैं और जिसे वे असीमित प्रतियोगिता कहते थे और उनकी पुस्तक अनपढ़ी ही रह गयी। इस आधार पर इनके निम्न विचारों को व्यक्त किया जा सकता है—

1. **माँग और पूर्ति के सिद्धान्त में गणित का प्रयोग**—कूर्नो ने प्रतिष्ठित विचारधारा के माँग और पूर्ति सिद्धान्त की आलोचना की। इन्होंने गणितीय सूत्रों के द्वारा यह सिद्ध किया कि यद्यपि माँग पूर्ति मूल्य का निर्धारण करती है, कीमत भी माँग और पूर्ति पर अपना प्रभाव डालती है। इस प्रकार उन्होंने माँग और पूर्ति को नया महत्त्व प्रदान किया। माँग, पूर्ति एवं कीमत-इन तीनों में से बिना किन्हीं दो तत्त्वों को प्रभावित किए, किसी भी एक तत्त्व में परिवर्तन नहीं हो सकता। कूर्नो ने बताया कि माँग और पूर्ति में कीमत के कारण परिवर्तन होता है या माँग और पूर्ति कीमत के कार्य हैं। इसी के अनुसार,

TOUCH 'n PASS

कीमत बढ़ने से माँग कम हो जाती है और कीमत गिर जाने से माँग बढ़ जाती है। माँग और मूल्य का सम्बन्ध प्रदर्शित करने के लिए कूर्नो ने दो-परिणाम वाले रेखाचित्रों (Two-dimensional graphs) का प्रयोग किया है।

2. **स्वतन्त्रता सम्बन्धी विचार**—कूर्नो ने प्रतिष्ठित विचारधारा की पूर्ण रूप से आलोचना नहीं की। कुछ ही सिद्धान्तों की उन्होंने साधारण रूप से आलोचना की। "यद्यपि वे व्यावहारिक रूप से स्वतन्त्रता को आवश्यक मानते थे परन्तु उन्होंने निरपेक्ष रूप से स्वतन्त्र व्यापार का समर्थन नहीं किया। उनका विश्वास था कि निश्चित उद्देश्यों के लिए राजकीय हस्तक्षेप का प्रयोग वांछनीय है। उनके अनुसार आर्थिक कार्यों के लिए राज्य का एक निश्चित क्षेत्र होना चाहिए फिर भी इस सम्बन्ध में उन्होंने अपने समकालीन कुछ फ्रान्सीसी अर्थशास्त्रियों की आलोचना की।
3. **द्वयधिकार** (Duopoly)—कूर्नो के अनुसार एकाधिकारी की आय उस समय अधिकतम होती है जबकि मूल्य उस बिन्दु पर निश्चित किया जाता है जहाँ सीमान्त आय ओर सीमान्त लागत बराबर हों। अपने मूल्य विवेचन में कूर्नो ने द्वयधिकार के अन्तर्गत मूल्य-निर्धारण का विचार भी प्रस्तुत किया। उनके अनुसार यह मूल्य एकाधिकारी मूल्य तथा प्रतियोगी मूल्य के बीच में निश्चित होता है।

   उन्होंने एकाधिकार एवं पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में मूल्य निर्धारित करने वाले तत्त्वों का विश्लेषण किया और बताया कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत कोई भी एक विक्रेता मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकता जबकि एकाधिकारी सामान्य तौर पर ऐसे मूल्य को स्थापित करने का प्रयत्न करता है जिससे उसे अधिकतम लाभ हो।

प्र.3. फिशर के सिद्धान्त की आलोचनाओं का उल्लेख कीजिए।
Mention the criticisms of Fisher's theory.

उत्तर

फिशर के सिद्धान्त की आलोचना
(Criticism of Fisher's Theory)

फिशर के उक्त सिद्धान्त की पर्याप्त आलोचनाएँ की गई हैं, कुछ प्रमुख आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं—

1. **अवास्तविक मान्यताएँ**—यह सिद्धान्त अनेक अवास्तविक मान्यताओं पर आधारित है। स्वयं फिशर ने सिद्धान्त के कथन में 'अन्य बातें समान रहें' शब्दों का प्रयोग किया है।
2. **तत्त्वों का अनुमान**—फिशर के समीकरण में जितने तत्त्व हैं, उनका सही अनुमान लगाना कठिन है। सबसे बड़ी कठिनाई V और V^1 अर्थात् वास्तविक मुद्रा और साख मुद्रा की प्रचलनगति के अनुमान की है। V^1 का अनुमान प्राय: बैंकों की ऋण राशि से लगाया जाता है। किन्तु V का अनुमान लगाने का तो कोई अधिकार ही नहीं है।
3. **आनुपातिक परिवर्तन नहीं होते**—आनुपातिक परिवर्तन की बात भी उचित नहीं है क्योंकि बहुत ही कम परिस्थितियों में सम्भव हो सकता है कि मुद्रा को दुगुना करने से सामान्य स्तर भी दुगुना हो जाए।
4. **मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन का मूल्य पर किस प्रकार प्रभाव पड़ता है**—यह सिद्धान्त इस बात को स्पष्ट नहीं करता कि मुद्रा की मात्रा के परिवर्तन किस प्रकार से मूल्य स्तर को प्रभावित करते हैं।
5. **समय विलम्ब पर ध्यान नहीं देता**—मुद्रा के परिमाण में परिवर्तन का प्रभाव मूल्य स्तर पर तत्काल नहीं पड़ता बल्कि कुछ समय बाद ही दिखाई देता है। इस बीच में अनेक बातें ऐसी हो सकती हैं, जो उक्त परिवर्तन के प्रभाव को नष्ट कर दें। यह सिद्धान्त इस बात पर ध्यान नहीं देता है।
6. **अमौद्रिक घटनाओं का भी प्रभाव पड़ता है**—मूल्य स्तर केवल मुद्रा की मात्रा पर ही निर्भर नहीं करता बल्कि मूल्य स्तर अनेक ऐसे मौद्रिक व अमौद्रिक कारणों पर निर्भर रहता है जो मुद्रा के प्रभाव को स्वयं नष्ट कर सकते हैं।
7. **संचित मुद्रा पर ध्यान नहीं**—कीन्स का मत है कि व्यक्ति चलन अथवा साख मुद्रा की सारी-सारी रकम वस्तुओं व सेवाओं पर व्यय नहीं कर देता बल्कि भावी संकटों से बचने के लिए व्यक्ति हर समय मुद्रा की कुछ राशि संचय करके रखता है। यह संचय की हुई राशि सामान्य मूल्य स्तर पर कोई प्रभाव नहीं डालती। अत: इसे मुद्रा की मात्रा में से कम करना आवश्यक है।

   उपरोक्त दोषों के होते हुए भी इस सिद्धान्त का व्यावहारिक महत्त्व बहुत अधिक है। मूल्य स्तर के परिवर्तनों के यद्यपि बहुत-से कारण होते हैं लेकिन इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण कारण मुद्रा की मात्रा ही है। अत: कीमतों के परिवर्तनों के समझाने के नाते इस सिद्धान्त की कुछ उपयोगिता आवश्यक है।

TOUCH 'n' PASS

खण्ड-स विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्र.1. विक्सेल एवं फिशर के आर्थिक विचारों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
Describe in detail the economic thoughts of Wicksell and Fisher.

उत्तर

विक्सेल के आर्थिक विचार
(Economic Thoughts of Wicksell)

विक्सेल पर जे०एस० मिल की विचारधारा का बहुत प्रभाव पड़ा था। मिल के ही समान विक्सेल भी नव-माल्थसवादी थे। सन् 1873 से लेकर 1895 ई० तक की अवधि में मन्दी तथा मूल्यों के गिरने से विक्सेल के विचारों पर बहुत प्रभाव पड़ा था। विक्सेल ने इस परिस्थिति का पूर्ण अध्ययन किया तथा उसके आधार पर मूल्य, ब्याज एवं मुद्रा का एक संगठित सिद्धान्त प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया था। उन्होंने मूल्यों को चिरकालीन तथा चक्रीय गति का अध्ययन किया तथा साख मुद्रा के महत्त्व पर बल दिया। विक्सेल ने ऑस्ट्रिया सम्प्रदाय के सीमान्त उत्पादकता सम्बन्धी विश्लेषण और लाजेन सम्प्रदाय के सामान्य कीमत सन्तुलन के संश्लेषण को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया था।

विक्सेल के कुछ प्रमुख आर्थिक विचार इस प्रकार हैं—

1. **विक्सेल के सिद्धान्त का केन्द्रीय विचार सीमान्त उत्पादकता विश्लेषण की सहायता से मूल्य एवं वितरण में समन्वय करना था।** सामान्य सीमान्त उत्पादकता को लागू करते समय यह अनुमान लगाया है कि उत्पत्ति के सभी साधनों का उपयोग इस प्रकार किया जाता है कि बड़े पैमाने की उत्पत्ति से बचतों का प्राप्त होना सम्भव नहीं होता। पूँजी व ब्याज के सिद्धान्त विक्सेल की विचारधारा के दो महत्त्वपूर्ण अंग कहे जा सकते हैं। वे पूँजी को भूतकाल में इकट्ठा किया हुआ श्रम व बचाई गई भूमि समझते हैं। समय तत्त्व के महत्त्व को स्वीकार करने के बाद विक्सेल ने समय अवधियों का विश्लेषण किया है। यह मानकर चलते हैं कि पिछले वर्ष में बचाई गई पूँजी चालू वर्ष के उत्पादन में सहायता करती है, इसलिए उस पूँजी के उपयोग से लाभ प्राप्त करने के लिए चालू वर्ष के साधनों में से उतना ही भाग बचाकर रखना चाहिए जिससे कि दूसरे वर्ष में वह पूँजी का कार्य कर सके।

   विक्सेल के विचारानुसार, ब्याज बचतकर्ता के प्रतीक्षा करने की सीमान्त उत्पादकता है। यहाँ पर भी समय का विशेष महत्त्व है। भूतकाल में इकट्ठा किए गए श्रम और भूमि की सीमान्त उत्पादकता तथा चालू वर्ष में उपयोग किए जाने वाले श्रम तथा पूँजी की सीमान्त उत्पादकता के अन्तर को ही ब्याज कहते हैं। ब्याज की दर के सम्बन्ध में उनका मत था कि ब्याज की दर कभी भी शून्य नहीं होगी। क्योंकि उपरोक्त दोनों मात्राओं में कुछ-न-कुछ अन्तर अवश्य बना रहेगा। इसलिए ब्याज कभी भी विलीन नहीं हो सकता। पूँजी के विषय में विक्सेल का कहना है कि जैसे-जैसे ब्याज की दर ऊँची होती जाएगी, वैसे ही पूँजी का संचय भी उसी अनुपात में बढ़ता जाएगा।

2. **विक्सेल बैंक बट्टा दर के द्वारा आर्थिक प्रणाली के नियन्त्रण का समर्थक था।** उसका सिद्धान्त संक्षेप में इस प्रकार है—उनका मत था कि ब्याज की एक प्राकृतिक अथवा स्वभाविक दर होती है। ब्याज की प्राकृतिक दर वह दर है जिस पर बचत और विनियोग एक-दूसरे के बराबर होते हैं। ब्याज की **बाजारू या वास्तविक दर** वह है, जो समय-समय मुद्रा बाजार में मुद्रा की माँग व पूर्ति द्वारा निर्धारित होकर विद्यमान रहती है। बाजार दर की प्रवृत्ति स्वाभाविक या प्राकृतिक दर के आस-पास रहने की होती है। जब वास्तविक ब्याज दर प्राकृतिक दर से कम होगी तो आर्थिक व्यवस्था के लिए स्थिति अच्छी हो जाएगी। विनियोग अधिक होगा और मूल्य बढ़ जाएँगे। लेकिन जब वास्तविक दर स्वाभाविक दर से ऊँची होती है तो विनियोजकों को हानि होगी, क्योंकि व्यवसाय में मन्दी आने लगती है तथा मूल्य गिर जाते हैं। इस प्रकार विक्सेल की सम्मत्ति में आर्थिक व्यवस्था की सामान्य स्थिति वह है, जिसमें आय उस वर्ष व्यय के बराबर हो। अन्य शब्दों में, वह सब आय जो किसी वर्ष में उपभोग नहीं की जाती है, विनियोग कर देनी चाहिए। यदि ऐसा होगा तो मूल्य स्तर स्थायी होगा। वास्तविक परिस्थितियों में विनियोग बचत अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा किए जाते हैं इसलिए बचत विनियोग से अधिक हो सकती है। ऐसी स्थिति में आय घट जाती है, उपभोग घट जाता है और मूल्यों में गिरने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। विक्सेल का विचार था कि केन्द्रीय बैंक अपनी बट्टा दर के द्वारा बाजार दर को नीचा रखने में सफल हो सकता है। इस प्रकार विक्सेल ने मूल्य स्तर के स्थायित्व के लिए मौद्रिक नियन्त्रण पर बल दिया। विक्सेल ने यह सिद्ध किया कि तेजी व

TOUCH 'n' PASS

मन्दी की समस्या को रोकने का सरल उपाय यह है कि बैंकिंग प्रणाली को अपनी ऋण प्रदान करने की क्रियाओं का इस प्रकार समायोजन करना चाहिए कि प्राकृतिक और बाजारू ब्याज दरों के मध्य समानता बनी रहे।

3. **व्यापार चक्र**—विक्सेल के विचारानुसार, मौद्रिक व अमौद्रिक कारणों के परिणामस्वरूप व्यापार चक्र का जन्म होता है। व्यापार चक्र के अमौद्रिक कारणों की चर्चा करते हुए विक्सेल ने लिखा है कि जब तकनीकी प्रगति जनसंख्या की वृद्धि के ठीक साथ-साथ नहीं चलती, सभी व्यापार चक्र आरम्भ हो जाते हैं। व्यापार चक्रों का मौद्रिक कारण विक्सेल के विचारानुसार बाजारू ब्याज दर तथा प्राकृतिक ब्याज दर के मध्य असमानता में निहित है। विक्सेल ने सुझाव दिया कि केन्द्रीय बैंक को चाहिए कि बाजारू ब्याज दर को प्राकृतिक ब्याज दर के बराबर बनाये रखे जिससे कि तेजी अथवा मन्दी की घटना उत्पन्न न होने पाये।
4. **मुद्रा का परिणाम सिद्धान्त**—विक्सेल प्रथम अर्थशास्त्री थे जिन्होंने इस महान् सत्य को स्पष्ट किया कि मुद्रा की मात्रा और सामान्य मूल्य स्तर के बीच कोई प्रत्यक्ष तथा कार्यात्मक सम्बन्ध नहीं है और मुद्रा की मात्रा सामान्य मूल्य स्तर पर केवल वस्तुओं की कीमतों पर वस्तुओं की माँग के द्वारा परोक्ष रूप से प्रभाव डालकर अपना प्रभाव डालती है। यद्यपि प्राचीन मुद्रा का परिमाणिक सिद्धान्त, कि इस मूल निष्कर्ष में, कि मुद्रा की मात्रा में वृद्धि हो जाने पर सामान्य मूल्य स्तर में भी वृद्धि हो जाती है तथा मुद्रा की मात्रा में कमी हो जाने पर सामान्य मूल्य स्तर में कमी हो जाती है, कोई परिवर्तन नहीं किया गया था। परन्तु विक्सेल ने अपने नये अध्ययन द्वारा वर्तमान समस्त माँग सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। विक्सेल का महान योगदान इस क्षेत्र में यह है कि उन्होंने मूल्यों, ब्याज दर तथा मुद्रा के परिमाण के मध्य परस्पर सम्बन्ध स्पष्ट करके मूल्य सिद्धान्त, ब्याज सिद्धान्त तथा मुद्रा सिद्धान्त के मध्य परस्पर सम्बन्ध स्थापित किया, जिसका प्राचीन मुद्रा परिमाण सिद्धान्त में भारी अभाव था।

फिशर के आर्थिक विचार
(Economic Thoughts of Fisher)

फिशर के प्रमुख आर्थिक विचार निम्नलिखित हैं—

1. **मूल्य निर्धारण**—फिशर का मत था कि उपयोगिता मापनीय नहीं है, इसलिए उसने यह धारणा बनायी कि उपभोक्ता अपना उपभोग इस प्रकार करेगा कि मुद्रा की एक इकाई से खरीदी हुई प्रत्येक वस्तु की सीमान्त उपयोगिता बराबर हो। इस प्रकार वस्तु की कीमत उस बिन्दु पर निर्धारित होगी जहाँ सीमान्त उपयोगिता और सीमान्त लागत बराबर होगी। उसने अपने विश्लेषण को इस बात पर आधारित किया है कि हर वस्तु का मूल्य या कीमत अन्य सभी वस्तुओं के मूल्यों व कीमतों पर आधारित होती है।
2. **आय और पूँजी में अन्तर**—फिशर पहले ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने इस विचार को प्रस्तुत किया कि आय तथा पूँजी को एक ही न समझना चाहिए। फिशर ने पूँजी के अन्तर्गत सभी प्रकार के धन और मानवीय साधनों को सम्मिलित किया है। पूँजी के उपयोग से जो वस्तुओं एवं सेवाओं का प्रवाह होता है, उसे फिशर आय मानते हैं।
3. **ब्याज का समय अधिमान या पसन्दगी सिद्धान्त**—बाम बावर्क के ब्याज सिद्धान्त को विकसित करके उसके कई पक्षों पर प्रकाश डाला है। तत्पश्चात् फिशर ने अपना नया सिद्धान्त 'ब्याज का समय' पसन्दगी सिद्धान्त की स्थापना की।

फिशर का ब्याज सिद्धान्त इस मूल्य धारणा पर आधारित है कि व्यक्ति अपनी वर्तमान आवश्यकताओं को भविष्य की अपेक्षा अधिक महत्त्व प्रदान करता है। मनुष्य अपनी आय को वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति पर व्यय करने के लिए आतुर रहता है। तभी तो कहा जाता है कि 'हाथ की चिड़िया झाड़ी की दो चिड़ियों से अच्छी है।' फिशर के मतानुसार, यह आतुरता ही ब्याज को जन्म देती है अर्थात् यदि हम चाहते हैं, मनुष्य वर्तमान में अपनी आय का उपभोग न करके उधार के रूप में दे दे तो उसे कुछ प्रलोभन देना पड़ेगा। यह प्रलोभन ही ब्याज है।

मनुष्य अपनी आय को वर्तमान उपभोग में व्यय करने के लिए कितना आतुर रहता है। यह निम्नलिखित बातों पर निर्भर करता है—

(i) **आय की मात्रा**—यदि आय अधिक होती है तो उसका वर्तमान की आवश्यकताओं को पूरा करने का उतावलापन भी कम होता है परन्तु यदि आय कम है तो व्यक्ति भविष्य के लिए कुछ भी बचाने के लिए इच्छुक नहीं होगा।

(ii) **आय का समयानुसार वितरण**—(अ) यदि समय के साथ-साथ आय भी बढ़ती जाती है तो वर्तमान में व्यय करने की आतुरता अधिक होती है। (ब) यदि समय के साथ-साथ आय घटती जाती है तो भविष्य के लिए बचाने

TOUCH 'n PASS

की इच्छा, अधिक होती है। (स) यदि समय के साथ-साथ आय में कोई परिवर्तन नहीं आता तो व्यय करने की आतुरता मनुष्य की आय, स्वभाव आदि बातों पर निर्भर करेगी।

(iii) **भविष्य में आय मिलने की निश्चितता**—इस बात का प्रभाव भी वर्तमान उपयोग व बचत पर पड़ता है।

(iv) **अन्य घटक**—उपर्युक्त घटकों के अतिरिक्त व्यक्ति का स्वभाव व दूरदर्शित और आत्मनियन्त्रण आदि बातें भी वर्तमान की आवश्यकताओं को सन्तुष्टि एवं बचत को प्रभावित करती हैं।

ब्याज की दर क्या होगी? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए फिशर ने बताया कि समय पसन्दगी जितनी अधिक होगी, ब्याज दर भी उतनी ही ऊँची होगी। इसके विपरीत समय पसन्दगी के कम होने पर ब्याज दर भी कम होगी।

फिशर के ब्याज सिद्धान्त की निम्नलिखित आलोचनाएँ की जाती हैं—

(अ) यह सिद्धान्त पूँजी के केवल पूर्तिपक्ष की ओर ही देखता है। जबकि माँग पक्ष का भी प्रभाव ब्याज की दर पर पड़ता है। अत: यह सिद्धान्त एकपक्षीय है।

(ब) यह कहना कि पूँजी की पूर्ति केवल समय पसन्दगी पर आधारित है, गलत है; क्योंकि समय पसन्दगी के अतिरिक्त यह ब्याज प्रतीक्षा व अन्य बातों पर भी निर्भर करती है।

(स) यह सिद्धान्त मनोवैज्ञानिक कारणों की भी ठीक प्रकार से माप नहीं कर सकता क्योंकि एक व्यक्ति भविष्य की अपेक्षा वर्तमान को कितना अधिक महत्त्व प्रदान करेगा, इसका अनुमान लगाना भी कठिन है।

4. **मुद्रा का परिमाण सिद्धान्त**—फिशर का यह सिद्धान्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। फिशर वह पहले अर्थशास्त्री थे जिन्होंने मुद्रा की मात्रा और मूल्य स्तर को एक वैज्ञानिक रूप प्रदान किया। फिशर ने लिखा, "यदि अन्य बातें समान रहें तो सामान्य मूल्य स्तर प्रत्यक्ष रूप से मुद्रा को पूर्ति के समानुपात में तथा मुद्रा की माँग के विपरीत अनुपात में परिवर्तित होता है।" फिशर ने मुद्रा की माँग, पूर्ति व मूल्य-स्तर के इस सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए निम्न बीजगणितीय समीकरण प्रस्तुत किया है—

$$\frac{MV + M^1V^1}{T} = P \quad \text{अथवा} \quad PT = MV + M^1V^1$$

जहाँ M = प्रचलित मुद्रा की कुल मात्रा (Money) है अर्थात् जितनी मात्रा वास्तविक रूप से चलन में है।

V = मुद्रा की चलनगति (Velocity)

M^1 = साख मुद्रा की मात्रा (Credit Instruments)

V^1 = साख मुद्रा की चलनगति (Velocity of M^1)

T = प्रचलन में कुल वस्तुएँ व सेवाएँ (Transactions)

P = सामान्य मूल्य स्तर (General Price Level)

$$\text{मूल्य या कीमत स्तर} = \frac{\text{कुल वास्तविक मुद्रा} \times \text{चलनगति} + \text{कुल साख मुद्रा} \times \text{चलनगति}}{\text{समस्त व्यापारिक सौदे (अर्थात् वस्तुओं और सेवाओं की इकाइयाँ)}}$$

उपरोक्त समीकरण से स्पष्ट है कि कीमत स्तर निम्न तत्त्वों द्वारा निर्धारित होता है—

(i) प्रचलन में वास्तविक मुद्रा की मात्रा (M)

(ii) वास्तविक मुद्रा की प्रचलन मात्रा (V)

(iii) साख मुद्रा की मात्रा (M^1)

(iv) साख मुद्रा की चलनगति (V^1)

(v) देश में उपलब्ध वस्तुओं और सेवाओं की इकाइयाँ (T)

यह समीकरण यह भी बताता है कि मूल्य स्तर (P) का M, V, M^1 व V^1 से प्रत्यक्ष (सीधा) आनुपातिक सम्बन्ध होता है और T से विपरीत आनुपातिक सम्बन्ध। अत: उपर्युक्त समीकरण के आधार पर प्रो० फिशर का परिमाण सिद्धान्त इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—

"सामान्य मूल्य स्तर (P) चलन मुद्रा की मात्रा (जिसमें धात्विक मुद्रा, कागजी मुद्रा व साख मुद्रा सभी सम्मिलित हैं) से प्रत्यक्ष आनुपातिक रूप में तथा व्यापारिक सौदे से विपरीत आनुपातिक रूप से सम्बन्धत होता है।"

TOUCH 'n PASS

प्र.2. जेवेन्स एवं वालरस के आर्थिक विचारों की विवेचना कीजिए।
Discuss the economic thoughts of Jevons and Walras.

उत्तर

(I) विलियम स्टैनले जेवेन्स
(William Stanley Jevons)

विषयगत सम्प्रदाय के महान् स्तम्भ का जन्म 1835 ई० में लीवरपूल (England) में हुआ था। 1851 ई० में जेवेन्स ने यूनिवर्सिटी कॉलेज लन्दन में प्रवेश किया। बी०ए० करने के पश्चात् 1854 ई० में इन्होंने ऑस्ट्रेलिया में सिडनी नामक स्थान पर टकसाल में नौकरी कर ली। 1859 ई० तक वे इस पद पर नियुक्त रहे। इंग्लैण्ड वापस लौटने पर उन्होंने पुन: अध्ययन प्रारम्भ किया था तथा 1863 ई० में एम०ए० की उपाधि प्राप्त की। तत्पश्चात् ओवन्स कॉलेज में वे प्राध्यापक हो गये। 1876 ई० में यूनिवर्सिटी कॉलेज लन्दन में प्रोफेसर नियुक्त हो गये। सन् 1882 में पानी में डूबने के कारण इंग्लैण्ड के महान् विचारक तथा अर्थशास्त्री की 47 वर्ष की अल्प आयु में ही असामयिक मृत्यु हो गयी। यदि भाग्य ने जेवेन्स को कुछ और अधिक वर्षों तक जीवित रहने दिया होता तो नि:सन्देह उन्होंने अर्थशास्त्र को अपने आर्थिक विचारों से अधिक सुशोभित किया होगा।
अनेक लेखों के अतिरिक्त जेवेन्स ने कई पुस्तकें लिखी हैं जिनमें **'राजनीतिक अर्थव्यवस्था के सिद्धान्त'** (Theory of Political Economy), जिसका प्रकाशन 1871 में हुआ था, उनकी सर्वश्रेष्ठ पुस्तक मानी जाती है। 1911 ई० तक इस पुस्तक के चार संस्करण हो चुके थे। उनके अन्य ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—

1. A Serious Fall in the Value of Gold (1875),
2. The Coal Question (1865),
3. Principles of Science (1874),
4. Money and Mechanism of Exchange (1875),
5. Primer of Political Economy (1881),
6. The State in Relation to Labour (1882),
7. The Principles of Economics (1905),
8. Collection of Essay (1990)।

जेवेन्स के आर्थिक विचार (Economic Thoughts of Jevons)

जेवेन्स के आर्थिक विचारों का अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं—

1. उपभोग, आवश्यकता तथा उपयोगिता सम्बन्धी विचार (Views on Consumption, Need and Utility),
2. सुख-दु:ख का विचार (Views on Pleasure and Pain),
3. मूल्य का सिद्धान्त (Theory of Value),
4. पूँजी सम्बन्धी सिद्धान्त (Capital Theory),
5. प्रतिष्ठित सिद्धान्तों की आलोचनाएँ (Criticisms of Classical Theory),
6. वितरण व व्यापार का सिद्धान्त (Theory of Distribution and Trade),
7. जेवेन्स का सूर्य-सिद्धान्त (Sun-spot Theory of Jevons)।

1. **उपभोग, आवश्यकता तथा उपयोगिता सम्बन्धी विचार** (Views in Consumption, Need and Utility)—ये निम्न प्रकार हैं—

(अ) **उपभोग** (Consumption)—जबकि परम्परावादी अर्थशास्त्रियों ने अपने आर्थिक विश्लेषण में उत्पादन तथा वितरण को महत्त्व प्रदान किया तब **जेवेन्स** ने अपना ध्यान उपभोग पर केन्द्रित रखा। उन्होंने लिखा है, **"अर्थशास्त्र का सम्पूर्ण सिद्धान्त उपभोग के ही सिद्धान्त पर निर्भर है।"** उनकी राय में अर्थशास्त्र की प्रमुख समस्या आराम व आनन्द को अधिकतम करना है।

(ब) **आवश्यकता** (Need)—जेवेन्स ने कहा कि राजनीतिक अर्थशास्त्र का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नियम मनुष्य की इच्छाओं में भिन्नता का नियम है। इस नियम का अभिप्राय यह है कि मनुष्य की आवश्यकताएँ अनन्त है और एक आवश्यकता की सन्तुष्टि के बाद पुन: दूसरी आवश्यकता पैदा हो जाती है। यह अनिश्चित वृद्धि का विचार (Idea of Indefinite Expansibility) है। बैनफील्ड ने भी उक्त विचार का समर्थन किया है।

Touch 'n' Pass

(स) **उपयोगिता** (Utility)—दु:ख को ऋणात्मक मानते हुए उन्होंने कहा कि **उपयोगिता** कोई वास्तविक गुण नहीं है किन्तु एक परिस्थिति है जो मनुष्य के वातावरण से उत्पन्न होती है। **किसी वस्तु की उपयोगिता इस वस्तु का वह अमूर्त गुण है जिसके द्वारा यह हमारी आवश्यकता की पूर्ति करती है।** संक्षेप में, किसी वस्तु की उपयोगिता उस वस्तु का उपभोक्ता को सुख प्रदान करने में अथवा दु:ख को रोकने का गुण होता है। आगे जेवेन्स कहते हैं कि उपयोगिता स्वयं कुछ भी नहीं है। इसका सम्बन्ध मानव की आवश्यकता से होता है। वस्तु की मात्रा बढ़ने के साथ-साथ वह घट जाती है।

कुल उपयोगिता और सीमान्त उपयोगिता में भेद करते हुए जेवेन्स ने बताया कि वस्तु की मात्रा में वृद्धि होने के साथ सीमान्त उपयोगिता में कमी होती जाती है परन्तु कुल उपयोगिता में वृद्धि होती है यद्यपि यह वृद्धि घटती हुई दर से होती है। जेवेन्स के अनुसार वस्तु की कुल उपयोगिता और वस्तु सीमान्त उपयोगिता मापनीय थी। जेवेन्स पहले अंग्रेज अर्थशास्त्री थे जिन्होंने रेखाचित्र द्वारा उपयोगिता ह्रास नियम को समझाया।

2. **सुख-दु:ख का विचार** (Views on Pleasure and Pain)—जेवेन्स अर्थशास्त्र का प्रमुख आधार सुख की आंकाक्षा को ही मानते हैं। जेवेन्स ने किसी कार्य को करने में होने वाले कष्ट या दु:ख और कार्य करने के फलस्वरूप हुई आय द्वारा प्राप्त हुए आनन्द के मध्य सन्तुलन को निम्न चित्र द्वारा समझाया है। चित्र में X अक्ष पर कार्य के घण्टों को प्रदर्शित किया गया है। Y अक्ष, Y पर O बिन्दु से ऊपर आय द्वारा प्राप्त हुए आनन्द तथा O बिन्दु के नीचे कार्य करने में अनुभव होने वाले दु:ख को व्यक्त किया गया है। शुरू के घण्टों में कार्य करने में श्रमिकों को साधारणतया कष्ट का अनुभव होता है परन्तु कुछ घण्टे पश्चात् कार्य का अभ्यास हो जाने से आनन्द का अनुभव होता है चित्र में b व c बिन्दुओं के बीच श्रमिकों को आनन्द अनुभव होता है परन्तु c बिन्दु के पश्चात् अधिक घण्टे कार्य करने से श्रमिक कष्ट या दु:ख का अनुभव करता है। श्रमिक वस्तु आय की उपयोगिता pq रेखा द्वारा दर्शाई गई है। इस रेखा का ऋणात्मक ढाल सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम पर आधारित है। m बिन्दु पर $qm = dm$ अर्थात् आय द्वारा सीमान्त आनन्द, कार्य द्वारा अनुभव सीमान्त दु:ख की मात्रा के समान है। इस प्रकार श्रमिक om घण्टे तक कार्य करेगा क्योंकि ऐसा करने से उसे अधिकतम आनन्द प्राप्त होता है।

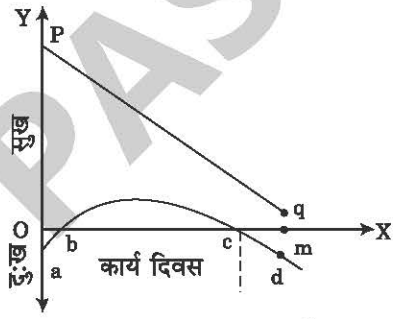

3. **मूल्य का सिद्धान्त** (Theory of Value)—उपयोगिता सम्बन्धी विचारकों के आधार पर जेवेन्स ने गणित की सहायता से वस्तु विनिमय मूल्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। जेवेन्स के विचारानुसार किसी वस्तु का मूल्य पूर्णतया उसकी उपयोगिता द्वारा निर्धारित होता है। उनकी राय में विनिमय का अनुपात निम्नलिखित सम्बन्ध में निर्धारित होता है—

(i) उत्पादन लागत पूर्ति को निर्धारित करती है।

(ii) पूर्ति सीमान्त उपयोगिता को निर्धारित करती है।

सीमान्त उपयोगिता मूल्य को निर्धारित करती है। किसी वस्तु के विनिमय मूल्य के निर्धारण के लिए जेवेन्स ने एक सूत्र का निर्माण किया जो कि अन्तिम उपयोगिता के अनुपात (Ratio of Final Utility) पर आधारित है। यह सूत्र निम्न प्रकार है—

$$\frac{P_1(a-x)}{y} = \frac{y}{x} = \frac{P_2 x}{(b-y)}$$

इस सूत्र को इस प्रकार समझाया जा सकता है—

$$\frac{\text{'अ' के लिए अनाज का सीमान्त तुष्टिगुण}}{\text{'अ' के लिए माँस का सीमान्त तुष्टिगुण}} \times \frac{\text{विनिमय के बाद प्राप्त मात्रा}}{\text{माँस की विनिमय की गई मात्रा}}$$

$$= \frac{\text{माँस की विनिमय की गई मात्रा}}{\text{अनाज की विनिमय की गई मात्रा}}$$

$$= \frac{\text{'ब' के लिए अनाज का सीमान्त तुष्टिगुण} \times \text{अनाज की विनिमय की गई मात्रा}}{\text{'ब' के लिए माँस का सीमान्त तुष्टिगुण} \times \text{विनिमय के बाद प्राप्त मात्रा}}$$

जेवेन्स के मूल्य सिद्धान्त का केन्द्रीय विचार यह है कि किसी वस्तु का मूल्य उस वस्तु की सीमान्त उपयोगिता द्वारा निर्धारित होता है। यदि किसी वस्तु की पूर्ति कम होती है तो वस्तु के दुर्लभ होने के कारण उसकी उपभोग की जाने वाली अन्तिम इकाई की उपयोगिता अधिक होगी तथा इसका मूल्य अधिक होगा।

TOUCH 'n PASS

जेवेन्स ने मूल्य के श्रम लागत सिद्धान्त की आलोचना की। जेवेन्स के अनुसार यह कदापि मूल्य का निर्धारण नहीं करता है यद्यपि यह परोक्ष रूप से वस्तु की पूर्ति में परिवर्तनों द्वारा वस्तु की सीमान्त उपयोगिता में परिवर्तन करके वस्तु के मूल्य पर प्रभाव डाल सकता है। जेवेन्स ने मूल्य के श्रम लागत सिद्धान्त की आलोचना इन आधारों पर की है—**प्रथम,** बहुत-सी मूल्यवान वस्तुएँ ऐसी है जिनकी कोई लागत नहीं होती, इन वस्तुओं की मूल्य निर्धारण की व्याख्या इस सिद्धान्त की सहायता से नहीं की जा सकती। **दूसरे,** व्यावहारिक जीवन में हम देखते हैं कि कोई वस्तु किसी समय पर्याप्त श्रम व्यय करके बनाई जाती है परन्तु कुछ समय बाद सम्भव है कि उसका कोई मूल्य ही न रहे। अत: उन्होंने उपयोगिता के अंश को ही महत्त्व दिया है।

4. **पूँजी सम्बन्धी सिद्धान्त** (Capital Theory)—जेवेन्स का पूँजी सम्बन्धी सिद्धान्त ऑस्ट्रियन शाखा दृष्टिकोण से मिलता-जुलता है। जेवेन्स का मत थ कि पूँजी साहसी कार्य के आरम्भ और अन्त होने के मध्य अवधि को विजय करने में सहायता देती है।

5. **प्रतिष्ठित सिद्धान्तों की आलोचनाएँ** (Criticisms of Classical Theory)—जेवेन्स ने प्रतिष्ठित विचारधारा की आलोचना करते हुए बताया कि उन्होंने अर्थशास्त्र में गणित का प्रयोग न करके महान भूल की थी। गणितीय विचारधारा के अभाव से उनके आर्थिक सिद्धान्त त्रुटिपूर्ण थे।

जेवेन्स रिकॉर्डो का प्रमुख आलोचक रहा है। उसने रिकॉर्डो के श्रम लागत सिद्धान्त को भी गलत बताया था। उसने अनेक ऐसे उदाहरण दिए है जिनसे लगता है कि कभी-कभी उपभोक्ता वस्तु के उत्पादन लागत से कम अथवा अधिक मूल्य देकर भी वस्तु को क्रय कर लेता है। एक स्थान पर रिकॉर्डो की आलोचना करते हुए उसने लिखा है कि "अर्थशास्त्र को सच्चा व्यावहारिक विज्ञान बनाने के लिए यह आवश्यक है कि हमें रिकॉर्डो की गलत मान्यताओं और अन्य मूर्खताओं से सावधान हो जाना चाहिए।"

6. **वितरण व व्यापार का सिद्धान्त** (Theory of Distribution and Trade)—जेवेन्स ने वितरण का कोई व्यापक सिद्धान्त विकसित नहीं किया था। उसने लगान के परम्परावादी सिद्धान्त को बिना किसी विशेष संशोधन के ही दुहराया। उसने मजदूरी के उत्पादकता सिद्धान्त को विकसित किया। इस सम्बन्ध में उसने बताया कि "प्रत्येक श्रमिक ऐसा कार्य खोजता है जिसमें उसकी विशेष क्षमताएँ सबसे अधिक उपयोगिता का उत्पादन कर सकें जिसका माप उस मूल्य द्वारा होता है जो कि लोग उसकी उपज के लिए देने को तत्पर हों। अत: मजदूरी उपज के मूल्य का कारण नहीं वरन् फल है।"

जेवेन्स स्वतन्त्र व्यापार के समर्थक थे। उनका यह विश्वास था कि श्रमिक संघ श्रमिकों की मजदूरी बढ़ाने में सफल नहीं हो सकेंगे, अत: श्रमिकों द्वारा कारखाने खोलने का विचार प्रस्तुत करते हैं।

7. **जेवेन्स का सूर्य-सिद्धान्त** (Sun-spot Theory of Jevons)—जेवेन्स ने अपने प्रसिद्ध सूर्य-चिन्ह सिद्धान्त में व्यापार चक्र को सूर्य में उत्पन्न होने वाले उन चिन्हों से जोड़ा है जो प्रत्येक 10 वर्ष की अवधि के पश्चात् सूर्य में उत्पन्न होते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार जलवायु पर चिन्हों का बहुत प्रभाव पड़ता है जो सूर्य में उत्पन्न होते हैं क्योंकि इन चिन्हों का वर्षा के द्वारा कृषि फसलों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। जब सूर्य पर धब्बे दिखायीं पड़ते हैं तो इससे मानसून अच्छा नहीं रहता जिससे फसलें नष्ट हो जाती है और मानव जाति के लिए मन्दी अथवा अवसाद की दशाएँ उत्पन्न कर देती है। इसके विपरीत, यदि जलवायु (वर्षा) अच्छी हुई तो अधिक अच्छी फसलें उत्पन्न होती है। इससे कृषि उद्योग में सम्पन्नता आती है। अच्छी फसलों के कारण यातायात उद्योग तथा बहुत-से अन्य उद्योगों की सेवाओं की माँग भी बढ़ जाती है। जिसके परिणामस्वरूप सम्पन्नता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जो राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में फैल जाती है। जलवायु में यह परिवर्तन ठीक समय से नियमित रूप से होते हैं जिसके कारण देशों में भी मन्दी व तेजी की दशाएँ समय से और नियमित रूप से फैलती रहती है।

(II) वालरस
(Walras)

वालरस एक फ्रांसीसी अर्थशास्त्री थे जो जेवेन्स तथा मैजर का समकालीन थे। उन्होंने अपनी शिक्षा इंजीनियरिंग व्यवसाय के लिए आरम्भ की थी किन्तु बाद में उसे त्यागकर उन्होंने पत्रकार का व्यवसाय अपनाया। सन् 1870 में उन्होंने लौजेन विश्वविद्यालय में **'पोलिटिकल इकोनोमी'** के प्रोफेसर के पद को ग्रहण किया। शुम्पीटर ने इसको सबसे महान् शुद्ध सिद्धान्तवादी (Pure Theorist) कहा है। इनकी प्रधान पुस्तकें निम्नांकित है—(1) Theory of Exchange (1874), (2) Elements of Pure Economics (1877), (3) Theory of Production (1877), (4) Mathematical Theory of Social Wealth (1883), (5) Studies in Social Economics (1896), (6) Studies in Applied Economics (1898)।

वालरस ने मूल्य तथा उत्पादन सम्बन्धी सिद्धान्तों की प्रेरणा अपने पिता आगस्ट वालरस (Auguste Walras, 1801-1866) से पायी थी जो स्वयं गणितवादी पद्धति के विद्वान थे। इसके अतिरिक्त उन पर कामटे (Comte) की भी प्रभाव था।

TOUCH 'n PASS

वालरस के आर्थिक विचार (Economic Thoughts of Walras)

वालरस के प्रमुख आर्थिक विचारों का अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं—
1. व्यावहारिक अर्थशास्त्र पर जोर, 2. मूल्य सम्बन्धी विचार, 3. सामान्य साम्य का सिद्धान्त, 4. सामाजिक सुधार सम्बन्धी विचार, 5. सामाजिक सम्पत्ति विचार, 6. अन्य विचार।

1. **व्यावहारिक अर्थशास्त्र पर जोर** (Emphasis on Applied Economics)—वालरस के अनुसार अर्थशास्त्र के अध्ययन को तीन भागों में विभाजित करना चाहिए अर्थात् **शुद्ध अर्थशास्त्र, व्यावहारिक अर्थशास्त्र** और **सामाजिक अर्थशास्त्र**। गौसन की भाँति वह भी अर्थशास्त्र को एक विशुद्ध विज्ञान के रूप में विकसित करना चाहता था परन्तु उन्होंने व्यावहारिक अर्थशास्त्र पर जोर दिया था।
   कुछ विद्वान वालरस को गणितीय विचारधारा का जन्मदाता मानते हैं क्योंकि वालरस ने अर्थशास्त्र को एक पूर्ण विज्ञान माना था। उसने परिकलित अर्थशास्त्र से **व्यावहारिक अर्थशास्त्र** को अलग करने का कार्य किया।
2. **मूल्य सम्बन्धी विचार** (Views on Values)—मूल्य निर्धारण के सम्बन्ध में वालरस ने **स्वल्पता** (Rarity) शब्द का प्रयोग किया है जिसे उन्होंने अपने पिता अगस्टे वालरस से ग्रहण किया है जिनके अनुसार "जिस किसी भी वस्तु का मूल्य होता है, उसके मूल्य का एकमात्र कारण सीमित मात्रा में उपलब्ध होने का सिद्धान्त ही होता है। **उपयोगिता मूल्य का कारण नहीं है**, भले ही यह मूल्य के लिए एक आवश्यक दशा कही जा सकती है।" **लियोन वालरस** के अनुसार स्वल्पता अन्तिम सन्तुष्ट इच्छा की तीव्रता है। विनिमय मूल्य इसी स्वल्पता के अनुपात में होता है अर्थात् वस्तुओं की स्वल्पता में होने वाला परिवर्तन मूल्य को भी परिवर्तित करता है। सीमान्त उपयोगिता की तुलना में वालरस का स्वल्पता का विवेचन अधिक वास्तविक है। स्वल्पता वस्तुओं की उपयोगिता और पूर्ति पर निर्भर रहती है अत: इस परिभाषा में उन्होंने पूर्ति की सीमाओं पर भी विचार किया है।
3. **सामान्य साम्य का सिद्धान्त** (Theory of General Equilibrium)—इसका श्रेय वालरस को है। सीमान्त उपयोगिताओं के माध्यम से पूर्ण प्रतियोगिता के बाजार में सामान्य साम्य किस प्रकार स्थापित होगा, यह उन्होंने सुन्दर ढंग से समझाया है। एडम स्मिथ ने भी अपने ग्रन्थ **'राष्ट्रों की सम्पत्ति'** में अर्थव्यवस्था की एक सामान्य इकाई की कल्पना की थी परन्तु उसका कोई प्रमाण उन्होंने नहीं दिया। यह प्रमाण वालरस द्वारा दिया गया है कि सामान्य साम्य (General Equilibrium) भी होता है। **'सामान्य साम्य'** से आशय अर्थव्यवस्था की उस स्थिर अवस्था से है जिसमें सभी आर्थिक क्रियाएँ परस्पर एक-दूसरे पर आश्रित हो जाती है। वालरस ने इसी अवस्था को अपने समीकरणों द्वारा समझाने का प्रयत्न किया है।
   अपने पूर्ववर्तियों की तुलना में वालरस ने साम्य के सिद्धान्त को व्यापक रूप से समझाया है। उसके अनुसार—
   (i) प्रत्येक वस्तु के सन्दर्भ में प्रत्येक व्यक्ति का एक उपयोगिता वक्र होता है।
   (ii) प्रत्येक व्यक्ति अपनी उपयोगिता को विनिमय के द्वारा अधिक करना चाहता है।
   (iii) प्रत्येक व्यक्ति को अधिकतम सन्तुष्टि तभी मिलती है जबकि वस्तु का दिया गया मूल्य उस वस्तु की सीमान्त उपयोगिता के अनुपात में हो।
   (iv) प्रत्येक वस्तु की पूर्ति उसकी माँग के अनुसार होनी चाहिए—जब यह शर्त लागू होती है, तभी वस्तु का मूल्य उत्पादन लागत के बराबर तय होता है।
4. **सामाजिक सुधार सम्बन्धी विचार** (Ideas on Social Reforms)—वालरस ने सामाजिक सुधार सम्बन्धी विचार भी प्रस्तुत किए और इसके लिए **भूमि के राष्ट्रीयकरण** को प्रारम्भिक बिन्दु माना। इनके पिता अगस्टे वालरस ने सामाजिक सम्पत्ति का सिद्धान्त प्रतिपादित करते समय कुछ इसी प्रकार के विचार व्यक्त किए थे, अत: उसके ही विचारों को वालरस ने ग्रहण किया और सम्पत्ति को दो वर्गों में विभाजित किया। **प्रथम वर्ग** में वह सम्पत्ति आती है। जिस पर व्यक्तिगत अधिकार होता है और **दूसरे वर्ग** पर सामूहिक अधिकार होगा। वालरस के अनुसार चूँकि भूमि प्रकृति की देन है, अत: उस पर व्यक्तिगत अधिकार न होकर सामाजिक स्वामित्व होना चाहिए।
5. **सामाजिक सम्पत्ति सम्बन्धी विचार** (Views of Social Property)—वालरस के अनुसार सामाजिक सम्पत्ति उन वस्तुओं में निहित है जो चाहे भौतिक हो या अभौतिक परन्तु जिनमें उपयोगिता होती है और जो परिमाण में सीमित होती है। बाह्य वस्तुओं का मूल्य उनके द्वारा प्रदान की जाने वाली सन्तुष्टि के अनुपात में होता है। वालरस के अनुसार पूर्ति और

TOUCH 'n' PASS

कीमत में कोई प्रत्यक्ष या तात्कालिक सम्बन्ध नहीं होता परन्तु कीमत और माँग में प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है और इसी सम्बन्ध के ऊपर माँग-वक्र निर्भर रहता है। उपयोगिता की तीव्रता के कारण ही माँग वक्र में परिवर्तन होता है। जहाँ दो वस्तुओं का प्रश्न होता है तो माँग वक्र इन दोनों वस्तुओं की उपयोगिता की तीव्रता के सम्बन्ध पर आधारित होता है।

6. **अन्य विचार** (Other Thoughts)—वालरस ने कई महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त प्रस्तुत किए—
   (i) मुद्रा में उनका नकद शेष सिद्धान्त (Cash Balance Theory) प्रसिद्ध है जो कि सामान्य साम्य के सिद्धान्त का ही भाग है।
   (ii) वे न्यायपूर्ण वितरण के पक्षपाती थे।
   (iii) वे मुक्त अर्थव्यवस्था को अच्छा समझते थे परन्तु राज्य के भी कुछ कार्य उनके अनुसार आवश्यक थे। राज्य को मूल्य स्पर्द्धा बनाए रखना चाहिए एवं एकाधिकारों को समाप्त करना चाहिए।
   (iv) शिक्षा पर भी उन्होंने बहुत जोर दिया है।

प्र.3. मेंजर के प्रमुख आर्थिक विचारों का विश्लेषण कीजिए।
Analyse the main economic thoughts of Menger.

उत्तर

कार्ल मेंजर
(Carl Menger)

मेंजर का जन्म सन् 1840 में गैलीशिया में न्यूसांडेज (Neu Sandez in Galicia) नामक स्थान में हुआ। इनकी शिक्षा प्राग, वियना एवं क्रेको में हुई। ग्रेजुएट होने के बाद ये ऑस्ट्रिया की सरकारी नौकरी में शामिल हो गए और इन्होंने बाजार की दशाओं का सर्वेक्षण लिखने का कार्य किया जिससे इन्हें आँकड़ों के अध्ययन का अनुभव हुआ। इसी कारण इन्हें मूल्य के सिद्धात को विकसित करने का प्रोत्साहन मिला। सन् 1873 में ये वियना विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के प्राध्यापक हो गए। इसी बीच ये ऑस्ट्रिया के प्रिंस रुडोल्फ (Prince Rudolph) के निजी शिक्षक भी रहे। सन् 1900 में इन्हें ऑस्ट्रिया के उच्चतर सदन (House of Peers) का आजीवन सदस्य बना दिया गया। अन्त में सन् 1903 में ये विश्वविद्यालय से रिटायर हो गए एवं लेखन तथा शोध कार्य में लग गए।

इनकी प्रमुख पुस्तक *'Foundations of Economic Theory'* सन् 1871 में प्रकाशित हुई। इसके अतिरिक्त इनकी अन्य पुस्तकें *'Enquiries into the Methods of Social Sciences, Particularly Political Economy'* (1883) *'The Errors of Historismus in German Political Economy'* (1884) एवं *'On the Theory of Capital'* (1888) है।

मेंजर के आर्थिक विचार (Economic Thoughts of Menger)

मेंजर के प्रमुख आर्थिक विचारों का अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं—

1. वस्तुओं का सिद्धात (Theory of Goods),
2. अर्थशास्त्र के अध्ययन की विधियाँ (Methods of Study of Economics),
3. विनिमय (Exchange),
4. मुद्रा (Money),
5. मूल्य का सिद्धान्त (Theory of Value),
6. मूल्य की निर्भरता का सिद्धान्त (Theory of Impulation),
7. क्रियात्मक वितरण (Functional Distribution)।

1. **वस्तुओं का सिद्धान्त** (Theory of Goods)—मेंजर ने अपनी पुस्तक *'Fundations of Economic Theory'* के प्रथम अध्याय में वस्तुओं के सिद्धान्त (Theory of Goods) का वर्णन किया है। इस सिद्धान्त की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) **वस्तु की परिभाषा** (Definition of Goods)—मेंजर के अनुसार समस्त आर्थिक क्रियाएँ हमारी भविष्य की आवश्यकताओं की दूरदर्शिता पर आधारित है। **"आर्थिक वस्तुएँ वे वस्तुएँ हैं जिनके लिए हमारी आवश्यकताएँ, उनकी उपलब्ध पूर्ति की अपेक्षा संख्या में अधिक रहती हैं।"** इसका परिणाम यह होता है कि कुछ आवश्यकताएँ असन्तुष्ट रहती हैं। अत: आर्थिक वस्तुओं की आवश्यकताओं को इस क्रम में व्यवस्थित करना चाहिए कि उपलब्ध

TOUCH 'n PASS

साधनों से अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त की जा सकें। इस आधार पर मेंजर यह निष्कर्ष निकालते हैं कि आर्थिक वस्तुओं में चुनाव करना आवश्यक है। वे वस्तुएँ उनमें उपयोगिता होती है और जिस सीमा तक हम उन वस्तुओं को मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के काम में ला सकें, उस सीमा तक वे वस्तुएँ (Goods) कहलाती हैं।

(ii) **वस्तु के लिए आवश्यक दशाएँ** (Essential Conditions for Goods)—किसी भी चीज को वस्तु बनने के लिए उसमें निम्न चार दशाओं का पाया जाना जरूरी है। **प्रथम** तो यह कि उसके लिए मानवीय आवश्यकता होनी चाहिए। **दूसरे**, उस चीज में ऐसे गुण होने चाहिए जिनसे वह उस आवश्यकता की पूर्ति के काम में लायी जा सके। **तीसरे**, यह आवश्यकता-पूर्ति का कारणभूत सम्बन्ध मनुष्यों को ज्ञात होना चाहिए एवं **चौथे**, कोई ऐसी शक्ति होनी चाहिए जो उस चीज का प्रयोग ऐसे ढंग से कर सके कि वह चीज आवश्यकता को पूर्ण कर सके। यदि चीज में इन चारों दशाओं में से किसी एक का भी अभाव है तो वह वस्तु नहीं बन सकती।

(iii) **वस्तु का वर्गीकरण** (Classification of Goods)—मेंजर ने आवश्यकता की सन्तुष्टि के सम्बन्ध के आधार पर वस्तुओं का वर्गीकरण किया है। कुछ ऐसी वस्तुएँ होती है जिनका प्रयोग हम आवश्यकता की पूर्ति के लिए तत्काल कर सकते हैं, जैसे—रोटी। ये **प्रथम कोटि** की वस्तुएँ हैं। कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं जिनका हमारी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के साथ कोई तात्कालिक कारणभूत सम्बन्ध नहीं होता। उनका कार्य ऐसी वस्तुओं को पैदा करना है जो हमारी आवश्यकताओं को पूर्ण करती है। ये **दूसरे** प्रकार की वस्तुएँ है। तीसरी कोटि की वस्तुओं में वे वस्तुएँ आती है जो दूसरी कोटि की वस्तुओं को पैदा करती है। इसके आगे अन्य कोटि की वस्तुएँ भी हो सकती है। उपर्युक्त क्रम में पहली कोटि का उदाहरण रोटी, दूसरी कोटि का उदाहरण आटा, तीसरी कोटि का उदाहरण अनाज और उसके आगे की कोटि में खेतों का उदाहरण दिया जा सकता है। मेंजर के अनुसार यह आवश्यक नहीं है कि वस्तु का आवश्यकता की पूर्ति के साथ सीधा सम्बन्ध हो। आगे वे कहते हैं कि निम्नतर कोटि की वस्तुओं को उत्पन्न करने के लिए, उच्चतर, कोटि की कई वस्तुओं की आवश्यकता होती है। इसके सम्बन्ध में मेंजर ने दो मान्यताएँ प्रस्तुत की है—**प्रथम** तो यह कि उच्चतर कोटि की वस्तुओं का 'वस्तु' होने का गुण केवल उसी दशा में विद्यमान रहता है जबकि हम उनके साथ के लिए आवश्यक अन्य पूरक वस्तुएँ भी उपलब्ध कर सकें। **दूसरे**, यह कि उच्चतर कोटि की वस्तुएँ केवल तभी तक वस्तुएँ कहला सकती है जब तक कि निम्नतर कोटि की वे वस्तुएँ, जिनके उत्पादन में वे सहायक होती है, वस्तु होने का गुण अपने में बनाये रखती है। इसे ही पूरक वस्तुओं (Complementary Goods) का सिद्धान्त कहा जा सकता है।

(iv) **आर्थिक व अनार्थिक वस्तुएँ** (Economic and Non-economic Goods)—कार्ल मेंजर ने आर्थिक (Economic) और अनार्थिक (Non-economic) वस्तुओं में भी भेद किया है। आर्थिक वस्तुएँ वे वस्तुएँ होती है जिनकी पूर्ति आवश्यकताओं की तुलना में अपर्याप्त होती है। अनार्थिक वस्तुएँ वे वस्तुएँ होती है जिनकी पूर्ति आवश्यकता से अधिक होती है। वे कहते हैं कि अनार्थिक वस्तुएँ उपयोगी हो सकती है लेकिन उनका मूल्य नहीं हो सकता। मेंजर के अनुसार किसी भी वस्तु का आर्थिक या अनार्थिक होना उसका विशेष गुण नहीं है वरन् वह तो केवल आवश्यकता और उस वस्तु की उपलब्ध मात्रा के अनुपात पर निर्भर रहता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि यह **अगस्टे वालरस** की स्वल्पता का ही दूसरा रूप है। किसी भी वस्तु की विशेषता में अर्थात् वह आर्थिक है या अनार्थिक, ये तीन बातें या इनमें से कोई भी एक बात परिवर्तन कर सकती है—जनसंख्या में वृद्धि, आवश्यकताओं में वृद्धि और वस्तु का कल्याण के लिए उपयोगी होने का ज्ञान।

2. **अर्थशास्त्र के अध्ययन की विधियाँ** (Methods of Study of Economics)—मेंजर ऐतिहासिक सम्प्रदाय के विचारक **श्मोलर** (Schmoller) के इस कथन से सहमत नहीं थे कि अर्थशास्त्र में केवल आगमन एवं ऐतिहासिक विधियों का ही अध्ययन किया जाना चाहिए। श्मोलर ने यह मत प्रतिपादित किया था कि सांख्यिकीय अध्ययन ही ऐसे स्रोत है जिनके आधार पर अर्थशास्त्रियों के सिद्धान्त आगे बढ़ते है। उन्होंने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की इसलिए आलोचना की क्योंकि उन्होंने ऐतिहासिक सामग्री पर कोई बल नहीं दिया। यद्यपि मेंजर ने यह स्वीकार किया है कि ऐतिहासिक तथ्यों से सिद्धान्तों के निर्माण में सहायता मिलती है परन्तु साथ ही उनका यह भी मत है कि एक सैद्धान्तिक वैज्ञानिक द्वारा, ऐतिहासिक एवं सांख्यिकीय अर्थशास्त्री को भी सहायता मिलती है। दूसरे शब्दों में, **निगमन प्रणाली** (Deductive Method) **आगमन प्रणाली** के लिए सहायक है। इसके आधार पर, मेंजर ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की अमूर्त विधि का समर्थन किया है और उस विधि को सही विधि (Exact Method) निरूपित किया है परन्तु मेंजर ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के उत्पादन लागत के सिद्धान्त के साथ पर मूल्य की

उपयोगिता से सम्बन्धित आत्मगत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। यह ध्यान देने योग्य है कि मेंजर ने अपनी पुस्तक *'Enquiries into the Methods'* में आगमन एवं निगमन दोनों ही विधियों का विवेचन किया है तथा अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए दोनों को ही आवश्यक बताया है। अध्ययन प्रणाली के सम्बन्ध में मेंजर ने यह स्पष्ट किया है कि "ऐतिहासिक सम्प्रदाय के कुछ विचारकों एवं ऑस्ट्रियन सम्प्रदाय के बीच वास्तविक अर्थों में अध्ययन विधि का विवाद नहीं था क्योंकि दोनों ने आगमन एवं निगमन प्रणाली को स्वीकार किया है।" वास्तव में जो विवाद का विषय है जिसे पूर्ण रूप से हल नहीं किया गया है, वह अधिक महत्त्वपूर्ण है, इसका सम्बन्ध उनके अध्ययन के उद्देश्य और उस कार्य-प्रणाली से है जिसे विज्ञान को हल करना है।

3. **विनिमय** (Exchange)—मेंजर ने स्मिथ के विनियम सम्बन्धी विचारों का विरोध किया है। मेंजर के अनुसार मनुष्य केवल वस्तु-विनिमय या मुद्रा-विनिमय के उद्देश्य से ही बाजार में प्रवेश नहीं करता और न ही विनिमय की सम्भावना इस संयोग पर आधारित रहती है कि प्रत्येक व्यक्ति के पास ऐसी वस्तु रहती है जिसका वह दूसरे व्यक्ति के पास की वस्तु की तुलना में कम मूल्यांकन करता है। मेंजर के मतानुसार विनिमय एक ऐसी आर्थिक क्रिया है जिसका उपयोग मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ण संतुष्टि के लिए करता है। उन्होंने विनिमय के लिए निम्न परिस्थितियों को आवश्यक माना है—

(अ) विनिमय करने वाले व्यक्तियों को अपनी वस्तुओं का मूल्य विपरीत दशा में आंकना चाहिए।
(ब) दोनों विनिमय करने वाले व्यक्तियों को विनिमय की परिस्थितियों का ज्ञान होना चाहिए।
(स) व्यक्तियों को अपनी वस्तुओं के विनिमय का अधिकार होना चाहिए।
(द) विनिमय के पश्चात् जो लाभ व्यक्ति को होता है, वह उस त्याग से ज्यादा होना चाहिए जो उसे अपनी वस्तु को त्याग करते समय सहना पड़ता है।

मेंजर ने बताया कि पृथक् वस्तु-विनिमय में विनिमय-दर निर्धारित नहीं हो पाती। प्रतियोगी एवं एकाधिकारी बाजारों की विवेचना करते समय, उन्होंने उन दो नीतियों का अन्तर स्पष्ट किया है जिनका एकाधिकारी प्रयोग कर सकता है जो मात्रा और कीमत हैं। उनके मत में विनिमय की शर्तों का निर्धारण, विनिमय करने वालों की संख्या, वस्तुओं की संख्या और प्रतियोगिता की दशाओं पर निर्भर रहता है।

4. **मुद्रा** (Money)—मेंजर के मुद्रा सम्बन्धी विचारों पर जर्मनी के ऐतिहासिक सम्प्रदाय का प्रभाव पड़ा है। उन्होंने विभिन्न कालों में मुद्रा के रूप में प्रयुक्त किए जाने वाले विभिन्न पदार्थों का उल्लेख किया है। मेंजर ने इस बात पर बल दिया है कि व्यक्तियों के आर्थिक हितों ने ही मुद्रा को जन्म दिया है। "मुद्रा उन सामाजिक खोजों में से एक है जो स्वत: क्रियाओं का परिणाम होती है और पूर्व-नियोजित नहीं होती तथा जिनके बारे में हम पहले से सचेत नहीं रहते और जो राज्य की खोज नहीं होती और न ही संवैधानिक कानूनों की उपज होती है।" मेंजर ने मुद्रा के राज्य सिद्धान्त का विरोध करते हुए यह बताया है कि वैधानिक ग्राह्यता (Legal Tender) मुद्रा की आवश्यक स्थिति नहीं है। उनके अनुसार आन्तरिक एवं बाह्य कारण ही मुद्रा के मूल्य को प्रभावित करते हैं और इस पर अन्तिम प्रभाव मुद्रा की माँग या उसकी चाही जाने वाली मात्रा का पड़ता है। इस सम्बन्ध में मेंजर आत्म-विश्वास एवं आशावान् होकर विचार प्रकट करते हैं कि सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक रूप से मुद्रा के आन्तरिक मूल्य का स्थिर माप (Stable Measure) प्राप्त किया जा सकता है।

मुद्रा की माँग के लिए मेंजर ने दो कारणों—लेन-देन का कारण एवं सावधानी का कारण (Transactions and Precautionary Motives)—को महत्त्वपूर्ण बताया है। मेंजर ने मुद्रा के चलन-वेग (Velocity of Circulation) सिद्धान्त की आलोचना की है। उनके अनुसार, "जब व्यापार अधिक सक्रिय रहता है तो मुद्रा की इकाइयों का चलन-वेग तीव्र गति से नहीं होता परन्तु मुद्रा के जिस अंश को सावधान-प्रेरकर से संगृहीत कर लिया गया था, वह सक्रिय रूप से चलन में आ जाता है।" मुद्रा-प्रसार की समस्या से भी मेंजर परिचित थे। उन्होंने मुद्रा-प्रसार के उन गुणों का विवेचन किया है जिनसे ऋणी व्यक्तियों को लाभ होता है अपेक्षाकृत मुद्रा संकुचन की उस स्थिति के जिसमें साहूकारों को लाभ होता है। मेंजर ने बॉम बावर्क के पूँजी के विचारों की आलोचना की है। उन्होंने उस विचार की भी आलोचना की है जिसमें पूँजी के विरोध में भूमि एवं श्रम को ही उत्पत्ति का मौलिक साधन माना गया है। उन्होंने तर्क दिया है कि अर्थशास्त्रियों को पूँजी एवं ब्याज के उस मौद्रिक विचार पर ही बल देना चाहिए जिसे वे पूर्ण व्यावहारिक मानते हैं।

5. **मूल्य का सिद्धान्त** (Theory of Value)—मेंजर के अनुसार मूल्य उन्हीं कारणों से उत्पन्न होता है जिनके कारण किसी विशेष वस्तु में 'आर्थिक वस्तु' होने के गुण का आधार होता है। मूल्य आवश्यकताओं और वस्तुओं की उपलब्ध मात्रा के पारस्परिक सम्बन्ध से उत्पन्न होता है। मूल्य इस तथ्य के कारण उत्पन्न होता है कि आर्थिक वस्तुएँ कम मात्रा में उपलब्ध रहती हैं, अत: कोई न कोई आवश्यकता असन्तुष्ट रह जाती है या पहले की अपेक्षा कम सन्तुष्ट हो पाती है। हम अपनी आवश्यकताओं को

सन्तुष्ट करने के लिए कुछ वस्तुओं के उपयोग पर निर्भर रहते हैं और इसी उपयोग से मूल्य का महत्त्व प्रकट होता है। इसीलिए **मेंजर** कहते हैं कि "मूल्य मस्तिष्क का एक निर्णय मात्र है। यह किसी वस्तु का गुण या कोई स्वतन्त्र वस्तु है।" यद्यपि मेंजर यह मानते हैं कि मूल्य पर समाज का कुछ प्रभाव पड़ता है फिर भी वे इसे एक स्वतन्त्र तत्त्व मानते हैं जो समाज या राज्य के कानूनों से अलग एवं स्वतन्त्र है। **प्रो० हेने** के अनुसार, "मेंजर के मत में मूल्य, ठोस वस्तुओं या वस्तुओं के समूह का हमारे लिए वह महत्त्व है जो इस तथ्य के कारण प्रकट होता है कि हम अपनी आश्यकताओं की सन्तुष्टि में उनकी उपलब्धि पर अपनी निर्भरता के सम्बन्ध में सचेत है।"

मेंजर ने मूल्य के लागत सिद्धान्त को अस्वीकृत करते हुए यह मत प्रतिपादित किया है कि मूल्य उपयोगिता एवं सापेक्षिक दुर्लभता पर निर्भर रहता है। मूल्य में भिन्नता इस कारण होती है क्योंकि मनुष्य विभिन्न आवश्यकताओं की सन्तुष्टि का अलग-अलग अनुमान लगाते हैं। किसी ठोस (Conerete) वस्तु का मूल्य उससे प्राप्त सबसे कम महत्त्वपूर्ण सन्तुष्टि के बराबर होता है। मेंजर ने अपेन इस कथन को बार-बार दुहराया है कि मूल्य और उसका माप आत्मगत होते हैं और आवश्यकताओं पर निर्भर रहते हैं तथा श्रम की मात्रा एवं पूँजी के व्यय का मूल्य के साथ कोई आवश्यक या सीधा सम्बन्ध नहीं होता। मेंजर की मूल्य निर्धारण की धारणा को उद्धृत करते हुए **प्रो० ग्रे** कहते हैं कि "जब पूर्ति विद्यमान रहती है तो वस्तु के किसी भी भाग का मूल्य उस सबसे कम महत्त्वपूर्ण प्रयोग के द्वारा निर्धारित होता है जिसमें उस अंश का प्रयोग किया जाता है।" मेंजर की मूल्य की विवेचना से यह भी स्पष्ट होता है कि प्रथम श्रेणी की वस्तुओं के मूल्य के निर्धारण में निम्न श्रेणी की वस्तुओं के मूल्य का भी प्रभाव पड़ता है अर्थात् उसने पूरक वस्तुओं के महत्त्व को भी मूल्य निर्धारण में ध्यान में रखा है।

मेंजर ने मूल्य-निर्धारण में सीमान्त (Margin) शब्द का प्रयोग नहीं किया है जिसे **वानन थूनेन** (Von Thunen) ने पहले ही प्रयुक्त कर दिया था। इस शब्द का प्रयोग वीजर ने किया है, जबकि मेंजर ने केवल 'सबसे कम महत्त्वपूर्ण' (Least Important) शब्द का प्रयोग अपने मूल्य-विश्लेषण में किया है।

6. **मूल्य की निर्भरता का सिद्धान्त** (Theory of Imputation)—यह सिद्धान्त भी मेंजर के मूल्य के सिद्धान्त का ही एक अंग है जिसमें उन्होंने यह स्पष्ट किया कि उच्चस्तरीय वस्तुओं का मूल्य की उपयोगिता से क्या सम्बन्ध है। **मेंजर** का कथन है, "उच्चस्तरीय वस्तुओं का मूल्य सदैव बिना अपवाद के उन निम्नस्तरीय वस्तुओं के मूल्य से प्रभावित होता है जिनके उत्पादन के लिए उन्हें प्रयोग में लाया जाता है।"

ध्यान से विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि मूल्य की निर्भरता का सिद्धान्त प्रतिष्ठित लागत सिद्धान्त का ठीक विपरीत नियम है। लागत सिद्धान्त के अनुसार वस्तु में मूल्य इसलिए होता है कि उसके बनाने में अन्य वस्तुओं को काम में लाया गया है परन्तु मेंजर का कथन है कि स्वयं उच्चस्तरीय वस्तुओं (Goods of High Order) का मूल्य निम्नस्तरीय वस्तुओं (Goods of Lower Order) पर निर्भर होता है।

मेंजर का उपर्युक्त सिद्धान्त सन्तोषजनक प्रतीत नहीं होता क्योंकि उच्चस्तरीय वस्तुओं का आज का मूल्य आने वाले कल के निम्नस्तरीय मूल्य के बराबर कैसे होगा, यह स्पष्ट नहीं कर पाये है। उदाहरण के लिए, गेहूँ के उत्पादन के लिए भूमि, खाद, मशीन तथा श्रम सभी चीजों की कीमत गेहूँ की भविष्य की कीमत पर निर्भर किस प्रकार होगी, यह साफ तरीके से नहीं समझाया गया। इस सब वस्तुओं को गेहूँ के मूल्य में से कितना-कितना हिस्सा मिलेगा, इसका भी सन्तोषजनक उत्तर हीं दिया गया। वितरण के अंतर्गत हम उन उत्तरों की जाँच करेंगे।

7. **क्रियात्मक वितरण** (Functional Distribution)—मेंजर ने वितरण का एक नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। उन्होंने विभिन्न वर्गों के बीच वितरण की समस्या को महत्त्व नहीं दिया वरन् उत्पत्ति के विभिन्न साधनों के बीच, उनकी उत्पादक सेवाओं के आधार पर वितरण का विश्लेषण किया है। उन्होंने वितरण का सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त प्रस्तुत किया; यद्यपि वे इसे प्रतिपादित करने वाले पहले विचारक हीं थे क्योंकि इसके पूर्व **गोसेन** एवं **वान थूनेन** ने भी इस सिद्धान्त को प्रस्तुत किया था परन्तु वे इसे पूर्ण विकसित नहीं कर सके और न ही इस सन्दर्भ में अर्थशास्त्रियों को प्रभावित कर सके। मेंजर के वितरण के सिद्धान्त का यह दोष है कि उन्होंने जीवन-निर्वाह व्यय सिद्धान्त पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया है।

मेंजर का मूल्यांकन (Evaluation of Menger)

मेंजर ऑस्ट्रियन समुदाय के अगुआ थे। मेंजर ने कुछ आधारभूत आर्थिक शब्दों व सिद्धान्तों की बड़ी मौलिक ढंग से व्याख्या की है तथा उन्हें कारण और परिणाम के सिद्धान्त से सम्बन्धित किया है परन्तु उन्होंने जो भी विचार व्यक्त किए, उन्हें पूर्ण रूप से मौलिक नहीं कहा जा सकता क्योंकि उन्होंने खुद स्वीकार किया है कि राजनीतिक अर्थविज्ञान में उन्होंने जो भी सुधार किए है, वे प्राय: पूर्ण रूप से जर्मन लेखकों के पूर्व विचारों पर आधारित है।

Touch n Pass

प्र.4. वीजर तथा यूजिन के सिद्धान्त का विश्लेषण कीजिए।
Analyse the thoery of Wieser and Eugen.

उत्तर

फ्रेडरिक वान वीजर
(Friedrich Van Wieser)

वीजर का जन्म सन् 1851 में वियना में हुआ। इनकी शिक्षा वियना में हुई। कुछ समय तक ये सरकारी नौकरी में रहे। इसके बाद दो वर्ष तक इन्होंने बाम बावर्क के साथ ऐतिहासिक सम्प्रदाय के अर्थशास्त्री **रोशर कार्ल नीज** एवं हिल्डेब्राण्ड के पास रहकर अर्थशास्त्र का अध्ययन किया। इसके बाद ये वियना एवं प्राग विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य करते रहे। सन् 1903 में जब मेंजर ने वियना विश्वविद्यालय से अवकाश लिया तो वीजर उनके उत्तराधिकारी बने एवं उन्होंने राजनीतिक अर्थविज्ञान के प्राध्यापक का पद ग्रहण किया। इस पद पर वे 1922 तक रहे। प्रथम विश्वयुद्ध के समय वीजर ऑस्ट्रिया के वाणिज्य मन्त्री भी रहे एवं सन् 1917 में इन्हें ऑस्ट्रिया की संसद का सदस्य मनोनीत किया गया। इस प्रकार वीजर ऑस्ट्रियन सम्प्रदाय के द्वितीय अर्थशास्त्री एवं मेंजर के शिष्य थे। इनकी मृत्यु सन् 1926 में हुई।

इनके प्रमुख ग्रंथ *'On the Origin and Laws of Value'* (1884), *'Natural Value'* (1889) एवं *'Theory of Social Economics'* (1913) है।

वीजर के आर्थिक विचार (Economic Ideas of Wieser)

वीजर के प्रमुख आर्थिक विचारों का अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं—

1. उपयोगिता (Utility),
2. मूल्य का सिद्धान्त (Theory of Value),
3. अवसर लागत का विश्लेषण (Analysis of Opportunity Cost),
4. वितरण का सिद्धान्त (Theory of Distribution),
5. सामाजिक अर्थशास्त्र (Social Economics)।

1. **उपयोगिता** (Utility)—वीजर ने भी अन्य अहंवादी विचारकों के समान सीमान्त उपयोगिता (Grenztutzen) को मान्यता दी और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को प्रधानता देते हुए उपयोगिता ह्रास नियम के आचार पर अपने विचारों को निर्मित किया। पूर्ति घटने और बढ़े से उसकी सीमान्त उपयोगिता में भी वृद्धि और कमी होती है। ऑस्ट्रियन विचारधारा का स्वीकृत सिद्धान्त उन्होंने भी माना था।
2. **मूल्य का सिद्धान्त** (Theory of Value)—वीजर ने अपने मूल्य के सिद्धान्त में यह स्पष्ट किया कि मूल्य आवश्यकता की तीव्रता और वस्तु की आवश्यकता सन्तुष्ट करेन की शक्ति पर निर्भर रहता है। वीजर ने मूल्य के सिद्धान्त को मनोवैज्ञानिक ढंग से हल किया है।

   वीजर ने मेंजर के इस सिद्धान्त को माना कि उच्चस्तरीय वस्तुओं का मूल्य प्राथमिक वस्तु के मूल्य पर निर्भर होता है। यह **मूल्य निर्भरता या आरोपण** (Imputation) का सिद्धान्त है परन्तु वीजर ने इसे काफी संशोधित भी कर दिया है। सुई का मूल्य उससे निर्मित मोजे के मूल्य पर निर्भर होता है परन्तु प्रश्न यह है कि मोजे के कितने भाग के बराबर सुई का मूल्य होगा, इस प्रश्न का सही उत्तर मेंजर नहीं दे पाये थे। इसी का प्रयत्न वीजर ने किया।

   वीजर के विश्लेषण में दो बातों पर ध्यान देना जरूरी है। **प्रथम** तो यह कि यह आरोपण सीमान्त नियम के अनुसार होता है अर्थात् सबसे कम महत्त्वपूर्ण प्रयोग के आधार पर ही नीची श्रेणी की वस्तुओं में मूल्य आरोपित होगा। दूसरी बात पूरक वस्तुओं के विषय में है। मेंजर का कथन था कि **पूरक** (Complementary) वस्तु का मूल्य उस नुकसान के बराबर होता है जो उसके हटा देने से उत्पादन में होता है। **'निषेधात्मक निर्भरता'** (Negative Imputation) कहलाता है। इसके स्थान पर वीजर ने **'धनात्मक निर्भरता'** (Positive Imputation) का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। उन्होंने लिखा है कि 'निर्णायक तत्त्व उपज का वह भाग नहीं है जो साधन को हटाने से कम हो जाता है बल्कि वह भाग है जो साधन प्राप्त होने से उत्पन्न होता है।'' इस प्रकार मेंजर की एक त्रुटि को उन्होंने दूर किया।

   मूल्य के सिद्धान्त से सम्बन्धित एक प्राकृतिक मूल्य (Natural Value) का विचार भी वीजर की देन है। प्राकृतिक मूल्य वह है जो समाज के चरम विकास की दशा में, जब मुद्रा तथा मौद्रिक मूल्य समाप्त हो जाएँगे, उत्पन्न होगा।

TOUCH 'n PASS

3. **अवसर लागत का विश्लेषण** (Analysis of Opportunity Cost)—वीजर ने उत्पादन के दो प्रकार के साधन माने हैं—(अ) **लागत वाले साधन** (Cost Instruments of Production) छोटे हैं। इनकी विशेषता यह होती है कि इसके कई उपयोग हो सकते है, जैसे—मशीन तथा पूँजी आदि। चूँकि लागत वाले साधनों के प्रयोग की विविधता होती है अर्थात् एक प्रयोग में लाने के लिए उन्हें दूसरे प्रयोग से हटना होता है, अस्तु, उनमें अवसर लागत (Opportunity Cost) होती है।

   (ब) **विशिष्ट साधन** (Specific Instruments of Production) जो केवल एक ही उपयोग में आ सकते है, जैसे—भूमि। चूँकि विशिष्ट साधन एक ही प्रयोग में आता है, अत: उसमें अवसर लागत नहीं होती। वह प्रकृति का मुफ्त उपहार है।

   वीजर का यह विश्लेषण आधुनिक लगान सिद्धान्त का आधार है।

4. **वितरण का सिद्धान्त** (Theory of Distribution)—वीजर ने मूल्यारोपण को भूमि, श्रम एवं पूँजी के मूल्य-निर्धारण पर भी लागू किया है और इसी के आधार पर लगान, मजदूरी एवं ब्याज का प्रतिपादन किया है। मूल्य के उक्त सिद्धान्त के अनुसार, "सम्मिलित उपज का कुछ मूल्य उसके उत्पादन में लगने वाले किसी भी साधन में उस समय आरोपित होता है जब उसकी पूर्ति माँग की तुलना में सीमित हो।" यद्यपि वीजर के मूल्यारोपण के विवेचन में स्पष्टता का अभाव है, फिर भी उनका यह विश्लेषण कि विशेष साधन का पुरस्कार कैसे तय होता है, महत्त्वपूर्ण है। जैसे उन्होंने लगान के सिद्धान्त को विभेदक मूल्यारोपण (Differential Imputation) का एक सार्वभौमिक सिद्धात माना है और इसी सिद्धान्त को श्रम, पूँजी एवं भूमि पर भी लागू किया है। लगान, भूमि, मशीन और मजदूर आदि की अधिक उत्पादकता के कारण होता है। उन्होंने लिखा, "जितनी अधिक उपजाऊ जमीन होगी अथवा जितनी माँग के क्षेत्र के निकट होगी, जितना अधिक कुशल मजदूर होगा तथा जितनी अधिक उत्पादक मशीन होगी, उतना ही उनको अधिक पुरस्कार मिलता है। इसका कारण यह है कि अपनी श्रेष्ठता के परिणामस्वरूप वे अधिक उत्पादन करते हैं और यही उनके अधिक मूल्य का कारण है।" उन्होंने मजदूरी को भी इसी प्रकार से बताया है। जीवन निर्वाह के सिद्धान्त की उन्होंने निन्दा की है।

5. **सामाजिक अर्थशास्त्र** (Social Economics)—वीजर की पुस्तक *'Social Economics'* (1913) अर्थशास्त्र में एक उच्चकोटि की उपलब्धि है जिसमें उन्होंने आधुनिक आर्थिक समाज के विकास के ऐतिहासिक एवं सामाजिक विश्लेषण के सम्बन्ध में आर्थिक विश्लेषण किया है। उनकी यह कृति विश्व की प्रसिद्ध पुस्तकों में से एक है। मुख्य रूप से उन्होंने इस पुस्तक में विभिन्न आर्थिक क्रियाओं तथा अर्थव्यवस्थाओं की व्याख्या की है।

   वीजर के **सामाजिक अर्थशास्त्र** के विश्लेषण का अध्ययन निम्न तीन शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है—(अ) उनका आर्थिक गणना का विश्लेषण तथा विनिमय अर्थव्यवस्था, मिश्रित एवं समाजवादी अर्थव्यवस्था में राज्य की भूमिका, (ब) उनका पूँजीवाद का विश्लेषण, (स) मिश्रित अर्थव्यवस्था की रूपरेखा।

   (अ) वीजर ने समाज के विभिन्न रूपों में आर्थिक गणना का जो विवेचन किया है, वह आंग्ल कल्याणकारी अर्थशास्त्र के समकक्ष ऑस्ट्रियन विचारधारा का विवेचन है। यह विभिन्न प्रकार की आर्थिक प्रणालियों का तुलनात्मक अध्ययन है जिनमें सम्पत्ति के अधिकारों एवं आर्थिक निर्णयों में भेद रहता है। प्रत्येक निजी व्यक्ति अपनी आर्थिक समस्या का आदर्श हल निकालने के लिए अपनी उपयोगिता को अधिकतम करना चाहता है। विनिमय-अर्थव्यवस्था विनिमय-मूल्यों को अधिकतम करना चाहती है एवं राज्य सामाजिक उपयोगिता को अधिकतम करना चाहता है। इस प्रक्रिया में, निजी उद्यमी का, विनिमय मूल्य को अधिकतम करने में, राज्य के उद्देश्य से संघर्ष होता है। वीजर का मत है कि किसी भी अर्थव्यवस्था में उपयोगिता वितरण (Allocation) को अधिकतम करने का लक्षण समान रूप से विद्यमान रहता है, इसलिए समाजवादी या पूँजीवादी व्यवस्था में इससे सम्बन्धित नियमों से समानता रहनी चाहिए। उनके अनुसार, ह्रासमान उपयोगिता के कारण, आर्थिक मूल्यों के निर्धारण में आरोही कर प्रणाली (Progressive Taxation) का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनका मत है कि वितरण की समस्या में श्रम मूल्य सिद्धान्त कोई हल प्रस्तुत नहीं करता।

   आगे वे कहते हैं कि राज्य जिन सामाजिक मूल्यों को अधिकतम करना चाहता है, वे अस्पष्ट रहते हैं एवं उनकी गणना नहीं की जा सकती। पर सामाजिक नीतियों के निर्धारण में विनिमय मूल्यों को भी, जिनकी गणना सम्भव है, प्रमाण (Criteria) नहीं माना जा सकता। साधनों के उचित वितरण एवं आर्थिक गणना सम्भव बनाने के लिए

TOUCH 'n' PASS

वीजर ने एक विनिमयशील अर्थव्यवस्था में स्वतन्त्र बाजार के कार्यों पर बल दिया है। किसी भी समाज के साधनों के वितरण में जिन सामाजिक विचारों को स्थान दिया जाना चाहिए, वीजर के अनुसार वे है—वितरण में औचित्य, शिक्षा, सुरक्षा इत्यादि।

(ब) **पूँजीवाद का विश्लेषण**—"वीजर ने प्रमुख रूप से पूँजीवाद के अन्तर्गत होने वाली प्रतियोगिता को लाभदायक होने की अपेक्षा हानिकारक बताया है। उनके मत में "जो परम्परागत औचित्य का विचार है, वही सतत् होने वाले कीमतों के संघर्ष को रोकता है।" उनके अनुसार अत्यधिक प्रतियोगिता के कारण ही आर्थिक संकट पैदा होता है। वीजर का मत है कि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने बड़े पैमाने पर होने वाली प्रतियोगिता के प्रतिकूल प्रभावों पर सही ढंग से विचार नहीं किया। अत्यधिक प्रतियोगिता से अति-उत्पादन एवं बेरोजगारी को प्रोत्साहन मिलता है। वीजर ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के प्रतियोगिता के समर्थन के विचार का विरोध किया और इस सन्दर्भ में वे ऐतिहासिक विचारधारा के अति निकट है। उनके ही शब्दों में, "प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का विचार था कि अहस्तक्षेप का सिद्धान्त सब कालों में लागू होता है परन्तु अब यह अस्वीकृत हो चुका है। राज्य द्वारा संरक्षण का सिद्धान्त आधुनिक आर्थिक नीति का सबसे महत्त्वपूर्ण सैद्धान्तिक परिणाम है जिसे स्वीकार कर लिया गया है। इस विचार की स्थापना करने एवं प्रतिष्ठित विचारधारा के दृढ़ सिद्धान्त का खण्डन करने का श्रेय जर्मन अर्थशास्त्रियों को है।" वीजर ने अकारण ही एकाधिकार का विरोध करने की भी आलोचना की। उनके अनुसार प्रतिष्ठित विचारकों का बिना किसी शर्त के प्रतियोगिता का समर्थन और एकाधिकार का निरपेक्ष रूप से विरोध वर्तमान संस्थाओं के लिए उचित नहीं है।

वीजर ने प्रतियोगिता, पूँजीवाद की आर्थिक कमजोरी के स्थान पर उसकी सामाजिक बुराइयों की ओर ध्यान केन्द्रित किया है। उन्होंने पूँजीवाद के तीन दोषों का वर्णन किया है। **प्रथम**, इससे सम्पत्ति के वितरण में असमानता पैदा होती है। **द्वितीय**, पूँजीवाद के कारण, ऊँची मौद्रिक मजदूरी से आकर्षित होकर मजदूर शहर के नये औद्योगिक क्षेत्र में आकर बसते हैं और उनके काफी संख्या में एकत्रित होने से कई सामाजिक बुराइयों को पनपने का अवसर मिलता है। **तृतीय**, पूँजीवाद ने मालिक और मजदूरों के बीच उचित सम्बन्ध स्थापित नहीं किए है। इस सन्दर्भ में उन्होंने मजदूर संघों (Trade Unions) का समर्थन किया है क्योंकि उनका विश्वास था कि मजदूर संघ उद्यमियों को श्रम के प्रतियोगी मूल्य का भुगतान करने के लिए तैयार कर सकते हैं।

(स) **मिश्रित अर्थव्यवस्था की रूपरेखा**—वीजर मिश्रित अर्थव्यवस्था के पक्ष में थे जिसका प्रेरक तत्त्व, प्रतियोगिता की भावना होगी। यद्यपि उन्होंने पूँजीवाद के अन्तर्गत प्रतियोगिता की आलोचना की है फिर भी उनका विश्वास था कि किसी भी अर्थव्यवस्था में, बिना ज्यादा हानि पहुँचाए, प्रतियोगिता के बिना काम नहीं चल सकता। उनके अनुसार, केवल प्रतियोगी, विकेन्द्रित प्रणाली ही अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक सामंजस्य एवं प्रलोभन (Incentive) प्रदान करती है। वे यह मानते हैं कि समाजवादी व्यवस्था वितरण के प्रश्न को हल करती है लेकिन इसके साथ ही हम इस प्रश्न की अवहेलना नहीं कर सकते कि इसका उत्पादन पर क्या प्रभाव पड़ता है। वे कहते हैं कि केवल विनिमय अर्थव्यवस्था में ही आर्थिक शक्तियों का दुरुपयोग नहीं होता वरन् समाजवादी व्यवस्था में भी स्वेच्छाचारिता (Despotism) पनप सकती है। वीजर ने केवल संक्षेप में ही सामान्य निर्देशन दिए है जिसके अनुसार स्वतन्त्र व्यवस्था एवं राज्य-नियन्त्रण में सन्तुलन पैदा किया जा सकता है। यही मिश्रित अर्थव्यवस्था का पथ है।

उन्होंने ग्रामीण और शहरी लगान एवं सट्टे तथा कम्पनी के लाभ पर कर लगाने का समर्थन किया है। इसके साथ ही उन्होंने पूर्ण समाजीकरण तथा उद्यमियों का पूर्ण अधिकार—इन दोनों के बीच के रास्ते को चुना है। वे एकाधिकार को नियन्त्रित करने के पक्ष में थे। लिस्ट के समान वीजर ने भी राष्ट्र की उत्पादक शक्तियों को विकसित करेन के लिए संरक्षण की नीति का समर्थन किया।

यूजिन वान बॉम बावर्क
(Eugen Von Bohm Bawerk)

ऑस्ट्रियन सम्प्रदाय के तीसरे लेखक बॉम बावर्क का जन्म सन् 1851 में **मोराविया के ब्रुन** (Brun in Moravia) नामक स्थान में हुआ था। इन्होंने वियना में शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद इन्होंने कुछ समय तक ऑस्ट्रियन सरकार के वित्त विभाग में नौकरी की। इसके पश्चात् ये बौद्धिक जगत् में लौट आये और वियना में अर्थशास्त्र के प्राध्यापक बन गए। 1890 में ये वित्त विभाग में मन्त्री नियुक्त किए गए और 1909 तक सरकारी नौकरी में रहे और उसके बाद पुन: वियना में प्राध्यापक के पद पर चले गए।

बॉम बावर्क की प्रमुख पुस्तकें *'History and Critique of Theories of Interest'* (1884), *'The Positive Theory of Capital'* (1889) एवं *'Outlines of the Theory of Commodity Value' (1886)* है। प्रथम पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद *'Capital and Interest'* के नाम से हुआ।

बॉम बावर्क के आर्थिक विचार (Economic Thoughts of Bawerk)

बॉम बावर्क के आर्थिक विचारों का अध्ययन हम निम्नलिखित दो शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं—

1. मूल्य निर्धारण का सीमान्त युग्मों का सिद्धान्त एवं, 2. ब्याज का सिद्धान्त।

1. **मूल्य-निर्धारण का सीमान्त युग्मों का सिद्धान्त** (Marginal Pairs Theory of Value)—मूल्य निर्धरण का जो व्यक्तिपरक या आत्मगत (Subjective) सिद्धान्त मेंजर ने प्रस्तुत किया था, **बॉम बावर्क** ने भी उसे ही अपनाया परन्तु उन्होंने इसी आधार पर अपना सीमान्त युग्मों का सिद्धान्त प्रतिपादित किया।

बॉम बावर्क के अनुसार व्यक्तिपरक मूल्य निम्नलिखित दो प्रकार के हो सकते हैं—

(i) **व्यक्तिपरक उपयोग मूल्य** (Subjective Use Value)—यह वस्तुओं की पूर्ति और सीमान्त उपयोगिता पर निर्भर होता है। उन्होंने लिखा है, "किसी वस्तु का मूल्य उस वास्तविक आवश्यकता के महत्त्व से अथवा उस बढ़ाई गयी आवश्यकता के महत्त्व से जो कि ऐसी वस्तुओं की पूर्ति द्वारा सन्तुष्ट की जाने वाली आवश्यकताओं में कम-से-कम महत्त्व रखती है, निर्धारित होता है।"

(ii) **व्यक्तिपरक विनिमय मूल्य** (Subjective Exchange Value)—"यह वह महत्त्व है जो एक वस्तु किसी मनुष्य के कल्याण की दृष्टि से अन्य वस्तुएँ प्राप्त कर सकने की अपनी क्षमता द्वारा प्राप्त कर लेती है।"

उपर्युक्त दोनों मूल्यों के अतिरिक्त **बॉम बावर्क** के अनुसार **एक वस्तुपरक मूल्य** (Objective Value) भी होता है जिसका आधार उपयोगिता ही है। यह मूल्य दो सीमाओं के बीच में रहता है। एक ओर तो वस्तु के खरीदने वाले का मूल्यांकन इसकी उच्चतम सीमा है और दूसरी ओर वस्तु को बेचने वाले का मूल्यांकन इसकी निम्नतम सीमा होती है।

परन्तु समस्या यह है कि विभिन्न खरीददारों की और विक्रेताओं की उच्चतम एवं निम्नतम सीमाएँ पृथक्-पृथक् हो सकती है, तब प्रश्न यह उठता है कि ऐसी स्थिति में बाजार में मूल्य का निर्धारण किस प्रकार होगा।

बॉम बावर्क ने इस प्रश्नों का उत्तर निम्न प्रकार से देने का प्रयास किया है—

(i) यदि किसी वस्तु के क्रेताओं की संख्या अधिक होने के कारण उनमें स्पर्द्धा होती है तो स्पष्टत: वस्तु के मूल्य का निर्धारण सबसे अधिक मूल्य देने वाले व्यक्ति की सीमा और उससे कम मूल्य देने वाले व्यक्ति की (अर्थात् उच्चतम एवं निम्नतम) सीमा के बीच कहीं निर्धारित होगा। इस प्रकार की प्रक्रिया **नीलामी** द्वारा वस्तु बेचने में की जाती है।

(ii) यदि क्रेता और विक्रेता दोनों में ही प्रतियोगिता होती है (जैसा कि पूर्ण प्रतियोगिता में होता है) तो ऐसी स्थिति में मूल्य का निर्धारण बॉम बावर्क ने एक उदाहरण द्वारा समझाया है।

मान लीजिए, बाजार में समान घोड़े बेचने के लिए आये हैं और बाजार में घोड़े खरीदने वाले दस व्यक्ति हैं और जबकि घोड़े बेचने वाले आठ ही व्यक्ति है। यह दोनों तरफ की स्पर्द्धा का उदाहरण है। ऐसी स्थिति में सभी क्रेता और विक्रेता अपने-अपने दृष्टिकोण से घोड़े का मूल्यांकन करेंगे। इस प्रकार की परिस्थिति में घोड़े का निर्धारण जिस प्रकार से होगा, उसे बॉम बावर्क ने मूल्य निर्धारण के सीमान्त युग्मों का सिद्धान्त कहा है। निम्न सारणी से यह स्पष्ट हो जाता है—

क्रेता		विक्रेता	
नाम	मूल्य जो वे दे सकते हैं (₹)	नाम	मूल्य जो वे ले सकते हैं (₹)
A_1	3,000	B_1	1,000
A_2	2,800	B_2	1,100
A_3	2,600	B_3	1,500
A_4	2,400	B_4	1,700
A_5	2,200	B_5	2,000
A_6	2,100	B_6	2,150

TOUCH 'n' PASS

A_7	2,000	B_7	2,500
A_8	1,800	B_8	2,600
A_9	1,700		
A_{10}	1,500		

उपर्युक्त सारणी में—

(i) A_1 क्रेता घोड़े खरीदने के लिए सबसे अधिक रुपये देने को तत्पर है फलत: सभी विक्रेता उसी को माल बेचने को तत्पर होंगे।

(ii) B_1 विक्रेता सबसे कम मूल्य पर अपने घोड़े को बेचने को तैयार है फलत: सभी व्यक्ति उसी से घोड़ा खरीदना चाहेंगे।

(iii) A_5 तथा B_5 ही सौदे कर पाएँगे। A_6 तथा B_6 के सौदे न हो सकेंगे; कारण स्पष्ट है—B_5 तक के विक्रेता सबसे पहले माल बेच देंगे। B_6 ₹ 2,150 में घोड़ा बेचने को तैयार है परन्तु इस मूल्य पर कोई लेने को तैयार नहीं है। A_6 ₹ 2,100 में घोड़ा खरीदने को तैयार है परन्तु इस मूल्य पर कोई बेचने को तैयार नहीं है।

(iv) यही दोनों सीमान्त युगल (Marginal Pairs) है। मूल्य इसी सीमान्त युगलों के व्यक्तिगत मूल्यांकन के बीच कहीं निर्धारित होता है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर सीमान्त मूल्य सिद्धान्त के आधार पर दो निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—

प्रथम तो यह कि प्रत्येक मूल्य सीमान्त मूल्य (Marginal Price) ही होता है।

द्वितीय, यह कि बाजार मूल्य भी व्यक्ति पर निर्भर होता है, वस्तु पर नहीं।

संक्षेप में, इस सिद्धान्त के अनुसार, सीमान्त युगलों में दो 'अन्तिम सफल क्रेता तथा विक्रेता युगल' तथा 'अन्तिम असफल क्रेता और विक्रेता का युगल' होता है (Last Ins and Last Outs) मूल्य इन दोनों के बीच निर्धारित होता है।

2. **ब्याज का सिद्धान्त** (Theory of Interest)—इनका ब्याज का सिद्धान्त अर्थशास्त्र में 'Agio or Time Preference Theory' के नाम से प्रसिद्ध है। बावर्क ने यह प्रश्न उठाया कि ब्याज क्यों दिया जाता है—इस प्रश्न के उत्तर में ही अनेक ब्याज के सिद्धान्त बने हैं।

ब्याज क्यों दिया जाता है?—बॉम बावर्क ने इस समस्या को मनोवैज्ञानिक ढंग से सुलझाया। यह उस तथ्य पर आधारित है कि हम वर्तमान की अपेक्षा, भविष्य का मूल्य कुछ कम करके देखते रहते हैं। इसके उन्होंने तीन कारण प्रस्तुत किए जो इस प्रकार हैं—

(अ) **पहला** कारण यह है कि हम यह समझते हैं कि भविष्य में हमारी स्थिति वर्तमान की अपेक्षा अच्छी हो जाएँगी। इसलिए समान राशि का सीमान्त मूल्य आज उसकी अपेक्षा कहीं अधिक होता है जितना कि उसी राशि का मूल्य भविष्यकालीन अपेक्षाकृत समृद्ध दिनों में होगा। यह बात उन सब लोगों पर लागू होती है जो परेशानियों में फँसे रहते हैं और यह आशा करते हैं कि भविष्य में उनकी आपत्तियाँ समाप्त हो जाएगी। **प्रो० ग्रे** के अनुसार यह कारण इस तथ्य का परिणाम है कि आशा, जो मानव हृदय में अनन्त काल से विद्यमान है, हमें यह सोचने को प्रोत्साहित करती है कि भविष्य का समय अपेक्षाकृत कम खराब होगा।

(ब) **दूसरा** कारण यह है कि हम अपनी भविष्य की आवश्यकताओं का अविवेकपूर्ण ढंग से कम-आकलन (Under-estimate) कर लेते हैं। इसके तीन कारण होते हैं—इच्छा की कमजोरी, गलत आकलन करने की प्रवृत्ति और भविष्य को अनिश्चित मानकर उसकी परवाह न करना। **बॉम बावर्क** के अनुसार, "हम भविष्य की वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिता को कुछ घटे हुए रूप में इस प्रकार देखते हैं जैसे वह हमें साफ दिखाई पड़ रही हो।"

(स) **तीसरा** कारण विवादास्पद है जिसका सम्बन्ध चक्करदार अधिक समय लेने वाली उत्पादन की उस विधि से है जिसके कारण भविष्य की वस्तुओं की तुलना में वर्तमान की वस्तुओं में तकनीकी श्रेष्ठता होती है। विवेकपूर्ण ढंग से चुनी गई पूँजीवादी प्रक्रिया द्वारा सीधी, साधनहीन उत्पादन प्रणाली की अपेक्षा अधिक उत्पादन किया जा सकता है। उत्पादन की लम्बी पद्धतियों के फलस्वरूप अधिक माल तैयार होता है, इसलिए भविष्य की वस्तुओं की तुलना में तकनीकी दृष्टि से वर्तमान की वस्तुएँ अधिक ग्राह्य होती हैं क्योंकि उनके कारण पूँजीपति को उत्पादन की चक्करदार विधि (Round about Method) का लाभ उठाने का अवसर मिलता है।

इनके अनुसार उत्पादन की चक्करदार विधि अधिक उतपादक होती है और उसमें पूँजी की आवश्यकता होती है लेकिन पूँजी के लिए समय की आवश्यकता होती है जिसमें मध्यमवर्गीय वस्तुओं, जो पूँजी का निर्माण करती हैं, को उपभोग वस्तुओं में रूपान्तरित किया जा सके। पूँजी के निर्माण का अर्थ सदैव होता है वर्तमान उपभोग को स्थगित करना। अत: इसी समय विलम्ब के कारण

TOUCH 'n PASS

ब्याज का उदय होता है। यहाँ यह जानना भी जरूरी है कि उत्पादन प्रणाली को लम्बी एवं चक्करदार बनाने के लिए बचत की आवश्यकता होती है।

उपर्युक्त तीन कारणों के द्वारा बॉम बावर्क ने यह स्पष्ट किया कि बचत को प्रोत्साहित करने के लिए ब्याज का भुगतान किया जाना जरूरी है।

ब्याज दर का निर्धारण—इस विषय में आपने कहा कि ब्याज की दर का साम्य निम्न तीन बातों पर निर्भर होता है—

(अ) **जीवन निर्वाह की राशि** (Subsistence Fund)—अर्थात् पूरे बाजार में वह धन जो मजदूरों को दिया जाता है, इसके बढ़ने से ब्याज कम होता है।

(ब) **कार्य करने वाले मजदूरों की संख्या**—जिनके बढ़ने से ब्याज बढ़ता है।

(स) **उत्पादन तथा वैज्ञानिक क्षमता**—जिसके बढ़ने से ब्याज बढ़ता है।

सीमान्तवादी सम्प्रदाय के प्रमुख योगदान
(Main Contribution of Marginalist School)

सीमान्तवादी सम्प्रदाय ने न केवल विशुद्ध आर्थिक सिद्धान्त के क्षेत्र में वरन् विश्लेषण की विधि एवं विश्लेषण के साधनों (Tools) के क्षेत्र में भी सराहनीय योगदान दिया। संक्षेप में, इस सम्प्रदाय के प्रमुख योगदान निम्नलिखित हैं—

1. उन्होंने आर्थिक विश्लेषण के लिए सीमान्त शब्द को विकसित किया, पूँजी तथा ब्याज का सिद्धान्त प्रतिपादित किया तथा विश्लेषण में निगमन विधि को आगे बढ़ाया।
2. जहाँ तक उनकी विश्लेषण तकनीक का सम्बन्ध है, वे इस क्षेत्र में प्रथम अर्थशास्त्री नहीं थे परन्तु उन्होंने पुराने विचारों का संश्लेषण किया, उन्हें प्रयोग के क्षेत्र में लाये तथा उन्हें विश्लेषण की पूर्ण प्रणाली के रूप में विकसित किया।
3. सीमान्तवादी सम्प्रदाय के साथ उपयोगिता विश्लेषण का विकास हुआ तथा माँग व उपभोग को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ।
4. उन्होंने अपने मूल्य के सिद्धान्त का विस्तार करके उसे उत्पत्ति में साधनों और उनके बीच में आय के वितरण पर भी लागू किया।
5. सीमान्तवादी विचारकों के लिए वितरण के सिद्धान्त का अर्थ राष्ट्रीय आय का विभिन्न सामाजिक वर्गों में वितरण से नहीं था वरन् उन्होंने इसे एक नये अर्थ में लिया। उनके लिए वितरण का अर्थ था उत्पत्ति के साधनों के बीच में उनकी माँग के आधार पर आय का वितरण—वह माँग जो उनके द्वारा निर्मित मूल्य से पैदा होती है।

प्र.5. गोसेन के आर्थिक विचारों की व्याख्या कीजिए।
Explain the economic thoughts of Gossen.

उत्तर

गोसेन के आर्थिक विचार
(Economic Thoughts of Gossen)

आर्थिक विज्ञान के क्षेत्र में **गोसेन** का मुख्य योगदान यह है कि उन्होंने सीमान्त उपयोगिता सिद्धान्त को प्रस्तुत किया और बताया कि मूल्य (Value) और कीमत (Price) के क्षेत्र में उसका किस प्रकार का प्रयोग होता है। उनके आर्थिक विचारों की विवेचना निम्न प्रकार से की जा सकती हैं—

1. **सीमान्त उपयोगिता सिद्धान्त**—गोसेन का दृष्टिकोण उपयोगितावादी है। उनके अनुसार प्रत्येक मनुष्य का उद्देश्य अपने जीवन के आनन्द को बढ़ाकर अधिकतम सीमा तक ले जाना है। परन्तु उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि बिना सोचे-समझे आनन्दोपभोग की विपरीत प्रकार की अनुभूति भी उत्पन्न हो सकती है। इसलिए यह महत्त्वपूर्ण है कि मनुष्य को अपनी गतिविधियों का संचालन इस ढंग से संचालित करना चाहिए कि उसे अधिकतम उपयोगिता प्राप्त हो सके। गोसेन के अनुसार, "जैसे-जैसे किसी वस्तु की अधिक इकाइयों का उपभोग किया जाता है तो उनसे प्राप्त होने वाली उपयोगिता गिरती जाती है और जब तटस्थता का बिन्दु प्राप्त हो जाता है तो सन्तुष्ट अधिकतम हो जाती है। इस बिन्दु पर विभिन्न वस्तुओं से प्राप्त आनन्द की तीव्रता समान रहती है।"

   इन्हीं विचारों को स्पष्ट करते हुए **प्रो० ग्रे** कहते हैं कि आनन्दोपभोग की दो स्पष्ट विशेषताएँ हैं। **प्रथम** तो यह कि किसी भी आनन्दोपभोग की तीव्रता क्रमशः तब तक घटती जाती है जब तक कि पूर्ण सन्तुष्टि की अवस्था आने पर वह बिल्कुल समाप्त नहीं हो जाती और **दूसरी** विशेषता यह कि एक ही आनन्दोपभोग को दुहराने से उसकी तीव्रता कम होती जाती है और उसकी अवधि भी अपेक्षाकृत अल्प होती है।

TOUCH 'n' PASS

सीमान्त उपयोगिता के अपने विश्लेषण के आधार पर गोसेन ने तीन आधारभूत सिद्धान्त प्रस्तुत किए हैं जो इस प्रकार हैं—

(i) प्रत्येक सन्तुष्टि के उपभोग का एक ढंग होता है जो उस पुनरावृत्ति (Frequency) पर निर्भर रहता है जिसके अनुसार मनुष्य की सन्तुष्टि अधिकतम हो जाती है। यह अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो जाने पर उपभोग जारी रखने से कुल सन्तुष्टि गिरने लगती है।

(ii) यहाँ गोसेन ने सम सीमान्त उपयोगिता नियम का चित्रण किया है। जब उपभोग में चुनाव का अवसर है लेकिन समस्त वस्तुओं से पूर्ण सन्तुष्टि के लिए, पर्याप्त समय नहीं है तो अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए यह जरूरी है कि सब वस्तुओं का थोड़ा-थोड़ा उपभोग इस प्रकार किया जाए कि प्रत्येक प्रकार के उपभोग से होने वाली सन्तुष्टि समान ही रहे।

(iii) जब किसी नए प्रकार के आनन्दोपभोग का आविष्कार कर लिया जाता है या विद्यमान आनन्दोपभोग में विस्तार हो जाता है तो सन्तुष्टि के कुल योग में वृद्धि हो जाती है।

2. **मूल्य का सिद्धान्त**—गोसेन का मूल्य सिद्धान्त असमान सन्तुष्टि के साथ जुड़ा हुआ है। उनके मतानुसार विभिन्न प्रकार के मूल्य सिद्धान्त प्रतिपादित किये जाने से आर्थिक विचारों में भ्रम उत्पन्न हो गया है। वे कहते हैं कि निरपेक्ष मूल्य की धारणा बिल्कुल काल्पनिक है। उनके अनुसार, "मूल्य की अधिकता या कमी सन्तुष्टि की उस मात्रा द्वारा नापी जाती है जो उस वस्तु से हमें प्राप्त होती है।" इसी आधार पर वे इस सीमान्तवादी सिद्धान्त की स्थापना करते हैं कि "उपभोग की जाने वाली वस्तु के अलग-अलग अणुओं का मूल्य एक-दूसरे से बहुत निम्न होता है। प्रथम अणु का मूल्य सबसे अधिक होता है, उसके बाद आने वाले प्रत्येक अणु का मूल्य कम होता जाता है और अन्त में मूल्यहीनता की स्थिति आ जाती है।"
इसके अतिरिक्त, अपने मूल्य के विश्लेषण में गोसेन ने वस्तुओं को तीन भागों में वर्गीकृत किया है। प्रथम, उपभोग वस्तुएँ जिसमें सन्तुष्टि प्रदान करने के सारे गुण होते हैं। दूसरे प्रकार में वे वस्तुएँ आती हैं जिनमें पूर्ण सन्तुष्टि के गुणों का अभाव रहता है। ऐसी वस्तुएँ पूरक वस्तुएँ होती हैं जैसे—घोड़ा-गाड़ी और हुक्का तथा तम्बाकू। तीसरे वर्ग में उत्पादन वस्तुएँ आती हैं जिनका उद्देश्य उपभोग वस्तुओं का निर्माण करना है। दूसरे एवं तीसरे वर्ग की वस्तुओं का मूल्य किस प्रकार निर्धारित होता है इसकी भी विवेचना गोसेन ने की है। वे कहते हैं कि पूरक वस्तुओं का मूल्य इसलिए लगाया जाता है क्योंकि वे किसी-न-किसी प्रकार सन्तुष्टि प्राप्त करने के लिए रास्ता तैयार करने में सहायक होती हैं। इन पूरक वस्तुओं का संयुक्त मूल्य उस सन्तुष्टि द्वारा जाना जा सकता है जो उनके संयुक्त प्रयोग से प्राप्त होती है। तीसरे वर्ग की वस्तुओं का मूल्य केवल उस सीमा तक लगाया जा सकता है जहाँ तक वे उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में सहायक होती हैं।
गोसेन की मूल्य की विवेचना में उन विचारों का पूर्वाभास मिलता है जो आगे चलकर मेन्जर (Menger) ने प्रस्तुत किए और वस्तुओं के वर्गीकरण तथा उनके मूल्य के विश्लेषण में तो गोसेन को वीजर (Wieser) का फरिश्ता कहा जा सकता है।

3. **भूमि पर सामाजिक नियन्त्रण**—गोसेन का विचार था कि व्यक्तिगत प्रसन्नता के स्थान पर, समस्त व्यक्तियों की प्रसन्नता में वृद्धि की जानी चाहिए क्योंकि किसी एक व्यति को अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त होने पर, सामाजिक सन्तुष्टि के अधिकतम होने की गारण्आी नहीं दी जा सकती। इस मार्ग में उन्होंने दो कठिनाइयों का संकेत किया। **प्रथम,** पूँजी की कमी तथा दूसरे, राज्य में व्यक्तिगत सम्पत्ति का विद्यमान होना। उनके अनुसार पूँजी की कमी को दूर करने के लिए राज्य को विशाल बैंक की स्थापना कर, लोगों को आवश्यकतानुसार पूँजी उधार देनी चाहिए। दूसरी कठिनाई को दूर करने के लिए, समस्त भूमि पर समाज का नियन्त्रण होना चाहिए जिससे स्वतन्त्रतापूर्वक भूमि का प्रयोग किया जा सके और उत्पादन अधिकतम किया जा सके।

❐

- यद्यपि इस पुस्तक को यथासम्भव शुद्ध एवं त्रुटिरहित प्रस्तुत करने का भरसक प्रयास किया गया है, तथापि इसमें कोई कमी अथवा त्रुटि अनिच्छाकृत ढंग से रह गई हो तो उससे कारित क्षति अथवा सन्ताप के लिए लेखक, प्रकाशक तथा मुद्रक का कोई दायित्व नहीं होगा। सभी विवादित मामलों का न्यायक्षेत्र मेरठ न्यायालय के अधीन होगा।
- इस पुस्तक में समाहित सम्पूर्ण पाठ्य-सामग्री (रेखा व छायाचित्रों सहित) के सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन हैं। अतः कोई भी व्यक्ति इस पुस्तक का नाम, टाइटिल-डिजाइन तथा पाठ्य-सामग्री आदि को आंशिक या पूर्ण रूप से तोड़-मरोड़कर प्रकाशित करने का प्रयास न करें, अन्यथा कानूनी तौर पर हर्जे-खर्चे व हानि के जिम्मेदार होंगे।
- इस पुस्तक में रह गई तथ्यात्मक त्रुटियों तथा अन्य किसी भी कमी के लिए विद्वत् पाठकगण से भूल-सुधार/सुझाव एवं टिप्पणियाँ सादर आमन्त्रित हैं। प्राप्त सुझावों अथवा त्रुटियों का समायोजन आगामी संस्करण में कर दिया जाएगा। किसी भी प्रकार के भूल-सुधार/सुझाव आप info@vidyauniversitypress.com पर भी ई-मेल कर सकते हैं। 1022

मॉडल पेपर

आर्थिक विचारों का इतिहास

B.A.-II (SEM-III) [पूर्णांक : 75

नोट—सभी खण्डों को निर्देशानुसार हल कीजिए।

खण्ड-अ : अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

***निर्देश**—सभी **पाँच** प्रश्नों के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न **3 अंक** का है। अधिकतम 75 शब्दों में अतिलघु उत्तर अपेक्षित है।* **(3 × 5 = 15)**

1. कौटिल्य के आर्थिक विचार क्या हैं?
2. प्लेटो ने अरस्तू को कैसे प्रभावित किया?
3. स्मिथ पर प्रकृतिवादियों का क्या प्रभाव पड़ा?
4. पीगू के अनुसार अर्थशास्त्र का क्या अर्थ है?
5. इरविंग फिशर का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

खण्ड-ब : लघु उत्तरीय प्रश्न

***निर्देश**—निम्नलिखित तीन प्रश्नों में से किन्हीं **दो** प्रश्नों के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न **7.5 अंक** का है। अधिकतम 200 शब्दों में लघु उत्तर अपेक्षित है।* **(7.5 × 2 = 15)**

6. अरस्तू के विचारों का मूल्यांकन कीजिए।
7. एडम स्मिथ एवं वाणिज्यवादियों के विचारों में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
8. मार्शल का जीवन परिचय दीजिए तथा मार्शल के विचारों को प्रभावित करने वाले कारकों का उल्लेख कीजिए।

खण्ड-स : विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

***निर्देश**—निम्नलिखित पाँच प्रश्नों में से किन्हीं **तीन** प्रश्नों के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न **15 अंक** का है। अधिकतम 500-800 शब्दों में विस्तृत उत्तर अपेक्षित है।* **(15 × 3 = 45)**

9. अमर्त्य सेन के आर्थिक विचारों का वर्णन कीजिए।
10. आर्थिक सारणी के महत्त्व एवं दोष का उल्लेख कीजिए। प्रकृतिवाद के व्यावहारिक पहलूओं पर भी प्रकाश डालिए।
11. माल्थस के आर्थिक विचारों का वर्णन कीजिए। अर्थशास्त्र में माल्थस के योगदान का भी उल्लेख कीजिए।
12. मार्शल के उपभोग, उत्पादन एवं विनिमय सम्बन्धी विचारों का वर्णन कीजिए।
13. वीजर तथा यूजिन के सिद्धान्त का विश्लेषण कीजिए।

❑

TOUCH 'n' PASS